पुस्तक—वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित २० वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा १० पैसे के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

गंगा-पुस्तकमाला का पचीसवाँ पुष्प
हठयोग
20.2,12(2)
22522
प्रसिद्धनारायणसिंह
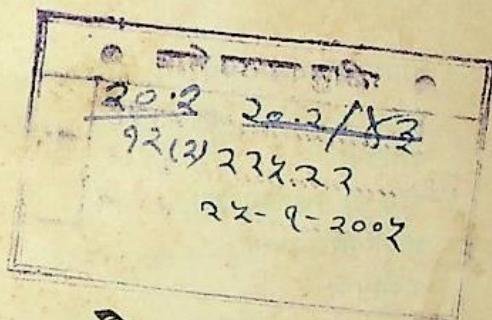
हठयोग

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

कुछ आध्यात्मिक ग्रंथ

सीधे पंडित (अपूर्व उपन्यास) ... ... १।), सजिल्द २)
संसार-रहस्य अथवा अधःपतन (आध्यात्मिक उपन्यास) १।), स० २)
राजयोग अर्थात् मानसिक विकास (Mental Developement १।), सजिल्द २)
योगशास्त्रांतर्गत धर्म (Advanced course in yogi Philosophy) ॥)
योगत्रयी ... ... ॥), सजिल्द १)
योग की कुछ विभूतियाँ ... ... ॥), ,, १)
जीवन-मरण-रहस्य... ... ... ।=)
प्राणायाम ... ... ॥=), सजिल्द १।=)

आध्यात्म-विषयक अन्य लेखकों की पुस्तकें

हृदय-तरंग (जेम्स एलेन) ... ... ।)
किशोरावस्था ... ... १)
भिखारी से भगवान् (जेम्स एलेन) ... १॥)
मनोविज्ञान ... ... ॥), सजिल्द १)
जीवन का सद्व्यय ... ... १), ,, १॥)
कर्मयोग ... ... ॥), ,, १)
सुख तथा सफलता ... ... ।)

मिलने का पता—

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का पच्चीसवाँ पुष्प

हठयोग

अर्थात्

शारीरिक कल्याण

(योगी रामाचारक-लिखित 'हठयोग'-नामक
अँगरेज़ी ग्रंथ का हिंदी-रूपांतर)

अनुवादक
ठा० प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १।।।=)] संवत् १९८५ [सादी १।=)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

समर्पण

अवध के ताल्लुकेदारों में आदर्श व्यक्ति,

बैसकुलालंकरण,

श्रद्धास्पद श्रीमान्

राजा सूर्यबक्ससिंह साहब

कसमंडाधिपति के कर-कमलों में ।

श्रीमन्,

भगवती सरस्वती और लक्ष्मी की लोकोत्तर विभूति से संपन्न हो श्रीमान् जिस देश की हितचिंता में अहर्निश लीन रहते हैं और अपनी जिस आदरणीया मातृभाषा हिंदी के साहित्य-भांडार की वृद्धि में तन, मन, धन से लगे रहते हैं, उसी भांडार की पूर्ति के यत्नस्वरूप और उसी देश के कल्याण-साधन के प्राचीन एवं आदर्श योगनिधि के एक अंश इस पुस्तक को श्रीमान् की सेवा में हार्दिक श्रद्धा और आदर से समर्पण करता हूँ ।

श्रीमान् का कृपाभाजन,

प्रसिद्धनारायण

भूमिका

योगी रामाचारकजी की "साइंस ऑफ ब्रेथ" का जो मैंने अनुवाद किया, उसकी हस्तलिखित कापी हमारे कई मित्रों के हाथ में पहुँची। उसे पढ़कर लोगों ने इतनी प्रसन्नता प्रकट की कि इस हठयोग के अनुवाद करने का भी मुझे उत्साह हो गया। इसके अतिरिक्त अनेक उत्साही मित्रों ने इन क्रियाओं का अभ्यास भी प्रारंभ कर दिया। जिन-जिन लोंगो ने जी लगाकर इसका अभ्यास किया, वे तो इसके गुणों पर ऐसे मुग्ध हो गए और कहने लगे कि भारतवर्ष के योगियों की जो विद्या अब तक पहाड़ों की कंदराओं में छिपी थी, वह अब सर्वसाधारण में प्रचलित होगी और देश का असीम उपकार होगा। इन वाक्यों को सुन-सुनकर मैं विचार करने लगा कि जब केवल श्वास-क्रियाओं ही का प्रभाव लोगों को इतना उत्साहित कर रहा है, तो उन क्रियाओं के साथ यदि खान, पान, रहन, सहन इत्यादि सभी बातों में हठयोग के नियमों का अनुसरण होने लगेगा, तो और भी कितना लाभ होगा। इसी विचार से योगी रामाचारकजी के हठयोग-नामक ग्रंथ का भी मैंने अनुवाद कर दिया।

योगी रामाचारकजी प्रत्येक विषय को अपनी किताबों में इस रीति से समझाते हैं कि शिष्यों के लिये कोई कठिनाई ही नहीं रह जाती। बहुत दिनों से यह सुनते आते थे कि बिना साक्षात् गुरु के कोई साधन सिद्ध नहीं हो सकता; पर योगी रामाचारकजी के उपदेश, बिना साक्षात् गुरु के भी, साक्षात् गुरु के-से काम देते हैं। इसलिये मैंने उन्हीं के लेखों का ठीक-ठीक अनुवाद करने का यत्न किया है; अपनी ओर से कुछ भी घटाने-बढ़ाने की चेष्टा नहीं की। हाँ, ऐसी जगहों पर अवश्य कुछ परिवर्तन कर दिए गए हैं, जहाँ उन्होंने अपने अमेरिका-निवासी शिष्यों को संबोधन करके कहा है, वहाँ मैंने अपने भारतीय भाइयों को संबोधन कर दिया है।

योगशास्त्र के पुराने ग्रंथों, जैसे पातंजल-योगशास्त्र और शिव-संहिता आदि के देखने से ज्ञात होता है कि पुराने ग्रंथ इतने बड़े नहीं हैं, जितना बड़ा कि यह ग्रंथ है। इसमें बातें भी बहुत-सी नई-नई हैं, जो उन पुराने ग्रंथों में नहीं मिलतीं। हमारे देश के लकीर के फ़कीर लोग यह शंका कर सकते हैं कि इस किताब में तो बहुत-सी नई बातें आ गई हैं और पुरानी बातें भी नए ढंग से कही गई हैं, इसलिये इस शिक्षा का अनुसरण करने से तो हम नवग्राही हो जायँगे और हमारा सनातनधर्म ही बिगड़ जायगा। ऐसे सनातनियों से हमारा यह निवेदन है कि पतंजलि और शिवजी का ज़माना दूसरा था। उस ज़माने में ऊँची-सी-ऊँची शिक्षा बहुत संक्षेप में, सूत्र रूप में, दी जाती थी। वही तरीक़ा गुरु और शिष्य दोनों के अनुकूल था। पर अब तो यदि सही-से-सही सिद्धांत को आप संक्षेप में सूत्र रूप से कहेंगे, तो कोई सुनेगा ही नहीं। अब सूत्रकाल नहीं है। अब साइंस-काल है। एक ही बात को कई प्रकार से समझाइए, इतना समझाइए कि सुननेवालों के मन में कोई संदेह न रह जाय, तभी आपका समझाना समझाना है। इसी को साइंस या विज्ञान कहते हैं। इसमें ग्रंथ बड़े हो ही जाते हैं। इस योगशास्त्र के सिद्धांत तो वही सनातन के हैं, पर कहने का ढंग नया है; इसलिये इसका अनुसरण करने से सनातनधर्म किसी प्रकार नहीं बिगड़ सकता, इस बात से निश्चिन्त रहना चाहिए। दूसरी यह बात कि इसमें पुराने ग्रंथों की अपेक्षा बातें अधिक कही गई हैं, इसको मैं मानता हूँ कि यह बात बहुत ठीक है और इसका भी प्रबल और आवश्यक कारण है।

यह कारण तब समझ में आवेगा, जब पहले आप यह समझ लेंगे कि योग की साधन-प्रणाली क्या है। योगशास्त्र पहले अपने शिष्यों को प्रकृति के मार्ग पर लाता है, फिर उनकी शक्तियों को

जगाता है। एक मनुष्य है, जो राह छोड़कर थोड़ी ही दूर कुराह पर गया है; उसके लिये फिर से राह पर लाने के लिये थोड़ी ही बातें कहनी पड़ती हैं; परंतु दूसरा मनुष्य, जो असली राह छोड़कर बहुत दूर भटक गया है, उसके लिये ज़रूर बहुत भटकी हुई बातों को समझाकर ठीक मार्ग पर लाना होगा। पहले ज़माने के मनुष्य प्रकृति के मार्ग से बहुत दूर नहीं भटके थे; इसलिये थोड़े ही में कह-कर उनको ठीक मार्ग पर लाते थे और उनकी शक्तियों को जगाते थे। अब के मनुष्य भटककर प्राकृतिक मार्ग से बहुत दूर हट गए हैं और मनमानी राह पकड़कर गुमराह हो रहे हैं; इसलिये भटके हुए दूर के मार्गों का दोष दिखलाना आवश्यक हो गया; तभी मनुष्य भटके मार्ग को छोड़कर असली मार्ग पर आवेंगे। इसलिये इसमें नई-नई भूलों और भ्रमों को दूर करने के लिये नई-नई बातें कहनी पड़ीं।

मेरे अनुभव में यह बात आई है, और मेरे साधक मित्रों ने भी इस बात का समर्थन और अनुमोदन किया है कि योगशास्त्र की पुस्तकों को केवल एक ही बार, चाहे कितना ही ध्यानपूर्वक हो, अध्ययन करने से काम नहीं चलता। एक बार थोड़ा-थोड़ा पढ़कर अभ्यास शुरू कीजिए। ग्रंथ समाप्त हो जाने पर कुछ दिन के लिये इसका पढ़ना छोड़ दीजिए, पर अभ्यास करते जाइए। कुछ दिन के बाद फिर ध्यान से पढ़िए। इस प्रकार आपको नई बातें मालूम होती जायँगी, जो पहले अध्ययन में आपके ख़्याल पर नहीं थीं। एक तो अभ्यास करने से आपके मन में नए-नए प्रश्न उठेंगे, दूसरे एक ही बार में मन सब बातों को ग्रहण नहीं कर सकता; इसलिये थोड़ा-थोड़ा अंतर देकर इसे बार-बार पढ़ते रहना चाहिए, तब बड़ा लाभ होता है।

योग की क्रियाओं के करने से शरीर के अंग-प्रत्यंग जग उठते हैं। अवयव-अवयव, रेशे-रेशे, कण-कण में शारीरिक क्रियाएँ अच्छी तरह से होने लगती हैं। निर्बल अंगों में बल आने लगता है, निष्क्रिय

अवयव क्रिया करने लगते हैं, शरीर में, जहाँ-जहाँ त्रुटियाँ हैं, उनके दूर करने का प्रयत्न होने लगता है। वेदनाहीन अंगों में वेदना जग उठती है। शरीर में ऐसी भी त्रुटियाँ हैं, जिनकी आपको ख़बर तक नहीं है; क्योंकि वहाँ के अवयव वेदनाहीन हो गए हैं। पर जब सर्वत्र क्रिया जारी हो जाती है, तो वेदनाओं के जग जाने से त्रुटियाँ प्रकट हो जाती हैं। इसको बहुत-से लोग रोग समझ लेते हैं। हमारे मित्र साधकों में से कोई कहता है कि मेरी छाती में मीठी-मीठी पीड़ा-सी हो रही है, कोई कहता है, अँतड़ियों में कुछ अव्यवस्थिति-सी मालूम होती है इत्यादि-इत्यादि। इन बातों से डरना न चाहिए; किंतु प्रसन्न होना चाहिए कि क्रिया जारी हो गई और सफ़ाई होने लगी। सबसे पहले फेफड़ों की सफ़ाई होती है। किसी-किसी को कुछ थोड़ी वेदना होती है, ज़ुकाम तो अक्सर लोगों को हो जाता है और ख़ूब कफ़ जाता है। निश्चिंत रहिए, कोई बीमारी प्रबल वेग से कभी न उभरेगी, किंतु धीरे-धीरे उभड़कर हमेशा के लिये दूर हो जायगी। अतएव इन सब बातों से निर्भय रहना चाहिए और अपने अभ्यास को कभी न छोड़ना चाहिए। जिस मकान की सफ़ाई के लिये आप झाड़ू देने लगेंगे, उसमें गर्द अवश्य उड़ेगी; तो क्या गर्द उड़ने के डर से आप झाड़ू देना छोड़ देंगे? एक बार गर्द उड़कर फिर दिन-भर के लिये तो मकान साफ़ और सुथरा हो जायगा और यदि फिर आप कूड़ा-करकट न आने देंगे, तो हमेशा के लिये साफ़ रहेगा।

इस किताब में कई जगहों पर तौल दी हुई है; वह अँगरेज़ी तौल है। उसके समझने के लिये हम नीचे तालिका दिए देते हैं—

६० बूँदों का	१ ड्राम।
८ ड्राम का	१ औंस।
२० औंस का	१ पाइंट।
२ पाइंट का	१ कार्ट।
४ कार्ट का	१ गैलन।

हम आशा करते हैं कि हमारे देश-वासी अपने पुराने भूले हुए इस योगमार्ग का अनुसरण करके लाभ उठावेंगे।

जिस प्रकार जापान और योरोपियन देशों में शिक्षा-दीक्षा दी जाती है, उसी प्रकार हमारे इस बूढ़े भारतवर्ष में भी दी जाती है। पर इसी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव जितना योरोपियन देशों में पड़ता है, हमारे देश में उतना प्रभाव नहीं पड़ता। कहाँ तो एक सूत्र के उपदेश से हमारा देश इतना ज्ञान ग्रहण करता था कि जितना अन्य देश पोथियों-की-पोथियों से भी नहीं ग्रहण कर पाते थे। अब वही हमारा देश है कि जिन किताबों को पढ़कर एक योरोपियन, अमेरिकन व जापानी क्रिया-निपुण और व्यवसायी होकर बड़े-बड़े व्यवसाय करके अपने को और अपने देश को सब भाँति से संपन्न बनाता है, उन्हीं किताबों को पढ़कर हम मुहर्रिरी ढूँढ़ा करते हैं। कारण क्या है? हममें न तो जीवट है न शक्ति। योगशास्त्र उसी जीवट और शक्ति को प्राप्त करने का मार्ग बतलाता है। जब जापानी लोग जिजित्सु-नामक श्वास-क्रिया करके छोटे और थोड़े होने पर भी बड़े और असंख्य रूसियों पर विजयी हो गए, तो क्या हम अपने प्राणायाम के बल से प्रबल शक्ति नहीं प्राप्त कर सकते? अभ्यास कीजिए और धैर्य रखिए, सब कुछ हो जायगा; विना परिश्रम और धैर्य के कुछ न होगा। हम आशा करते हैं कि हमारे देश-बंधु इस अभ्यास को करके मनमाना लाभ उठावेंगे।

मेरे प्रिय मित्र श्रीयुत पंडित कात्यायनीदत्तजी त्रिवेदी ने अपने अमूल्य समय का एक बड़ा भाग इसके प्रूफ़-संशोधन में व्यय किया है, अतः मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

राज कुर्री सुदौली
ज़िला रायबरेली,
६-६-१६१७

प्रसिद्धनारायणसिंह

हठयोग

पहला अध्याय

हठयोग क्या है?

योग-विज्ञान कई शाखाओं में विभक्त है। उसके विख्यात और प्रधान भाग ये हैं—(१) हठयोग, (२) राजयोग, (३) कर्मयोग और (४) ज्ञानयोग। यह पुस्तक पहले ही भाग का वर्णन करती है। इस समय हम दूसरे भागों के वर्णन करने का यत्न न करेंगे; यद्यपि योग के इन समस्त बड़े भागों पर अवश्य कुछ अन्य ग्रंथों में कहना ही पड़ेगा।

हठयोग योगशास्त्र की वह शाखा है जो कि पार्थिव शरीर—उसकी रक्षा— उसकी भलाई—उसके स्वास्थ्य और उन कुल बातों का जो शरीर को उसकी प्राकृतिक और असली दशा में रखते हैं, वर्णन करता है। यह जीवन को स्वाभाविक रीति से जीने का मार्ग बतलाता है और पुकार-पुकार कहता है, जिस पुकार को बहुत-से पाश्चात्य लोग भी ले उठे हैं कि "प्रकृति के मार्ग पर वापस आओ"; अंतर केवल इतना ही है कि योगी को 'वापस' नहीं आना है; क्योंकि वह तो सर्वदा प्रकृति और उसके पथ का निकटस्थ अनुयायी रहा है, और बाह्य पदार्थों की ओर अंधाधुंध दौड़ से चकाचौंध में पड़कर कभी वैसा मूर्ख नहीं बना है, जैसा कि आधुनिक सभ्यता में पड़े

हुए मनुष्य ने मूर्ख बनकर इस बात को बिलकुल ही भुला दिया है कि ऐसी भी कोई चीज़ वर्तमान है, जिसे प्रकृति कहते हैं। दुनिया के प्रचलित ठाट और सामाजिक हौसलों की पहुँच ही योगी के ज्ञान तक न हो सकी। वह इन बातों पर हँसता है और इन्हें लड़कों का खेल समझता है। वह प्रकृति की गोद से बहका हुआ नहीं है; किंतु वह उस प्रकृति माता के क्रोड़ में सटा रहता है, जिसने उसकी सर्वदा पुष्टि, तुष्टि, सुख और रक्षा की है। हठयोग आदि में प्रकृति, मध्य में प्रकृति और अंत में प्रकृति है। जब तुम्हारे सामने कोई तरीक़ा, तरकीब अथवा नई रीति इत्यादि आवे तो उसे इसी कसौटी पर कसो कि "प्राकृतिक मार्ग क्या है" और सर्वदा उसी को पसंद करो, जो प्रकृति के अनुकूलतम हो। जब हमारे किसी शिष्य का ध्यान स्वास्थ्य की बहुत-सी नई रीतियों, मनगढ़ंत उपायों, तरीक़ों, तदबीरों और ख़्यालों की ओर आकर्षित हो, जिनसे कि पश्चिमी संसार भरा जा रहा है, तब यही परीक्षा बहुत लाभदायक होगी। उदाहरण के लिये यदि यह विचार उनके सामने आवे और इस पर उन्हें विश्वास करने के लिये कहा जाय कि "पृथ्वी का स्पर्श करने से मनुष्य के देह की आकर्षण-शक्ति घट जाती है, इसलिये मनुष्य को रबर के तल्लेवाले जूतों को पहनना चाहिए और ऐसी चारपाइयों पर सोना चाहिए, जिनके पायों के निचले भाग में काँच जड़े हों, जिससे प्रकृति (पृथ्वी माता) उस आकर्षण-शक्ति को खींच न ले, जिसे उसने इन्हें दिया है", तब हमारे शिष्यों को अपने मन-ही-मन यह प्रश्न करना चाहिए कि "इस विषय में प्रकृति क्या कहती है?" प्रकृति क्या कहती है, इसको जानने के लिये यह विचारना चाहिए कि क्या प्रकृति के ध्यान में रबर के तल्ले बनाना और पहनना तथा काँचवाले पायों का इस्तेमाल था या नहीं। शिष्य को यह देखना चाहिए कि बलवान् मनुष्य, जो शक्ति से भरे हैं, इन बातों को करते हैं कि नहीं? इतिहास में जो बहुत बड़ा-बड़ा मानव-समुदाय हो गया

है, वह ऐसा करता था कि नहीं ? घास के चमन में लेटने से कुछ चीणता मालूम होती है कि नहीं ? और, पृथ्वी माता की छाती पर लेट जाने के लिये स्वाभाविक इच्छा होती है कि उससे नफ़रत करने को जी चाहता है ? लड़कपन में नंगे पाँव भागने की इच्छा होती है कि नहीं ? और नंगे पाँव, विना जूते के, टहलने में पाँवों को ताज़गी मिलती है कि नहीं ? रबर के तल्लों में आकर्षण पर प्रभाव डालने की क्या विशेषता है ? इत्यादि । हमने इस बात को केवल उदाहरण के लिये दिया है, इस अभिप्राय से नहीं कि रबर के तल्लों और काँच के पायों के गुण-दोष पर बहस की जाय । थोड़ा ही ध्यान देने से मनुष्य को मालूम हो जायगा कि प्रकृति के उत्तर यही दिखलाते हैं कि बहुत-सी शक्ति इसी पृथ्वी से हमें मिलती है । पृथ्वी शक्ति से भरी हुई एक शक्ति-भंडार है, और सर्वदा अपनी शक्ति मनुष्य को देने के लिये उत्सुक रहती है; न कि वह शक्ति-हीन और शक्ति की भूखी होकर अपने बच्चे—मनुष्य—ही से शक्ति छीनने के लिये उतारू है । थोड़े ही दिनों में ये नए पैग़ंबर लोग कहने लगेंगे कि हवा प्राण देने के स्थान में प्राण को मनुष्य-देह से खींचती है ।

निदान ऐसी प्रत्येक बात में सर्वदा उसी प्रकृति की कसौटी का प्रयोग करो—और यदि कोई बात प्रकृति के अनुसार न हो, उसे त्याग दो—क़ायदा तो साफ़ है । प्रकृति अपने कार्य को ख़ूब जानती है—वह तुम्हारी हितू है, न कि वैरी ।

योग की अन्य शाखाओं पर बहुत बड़ी-बड़ी और बहुमूल्य किताबें लिखी गई हैं ; परंतु हठयोग का तो नाम ही देकर योग के लेखकों ने समाप्त कर दिया है । इसका बड़ा कारण यह है कि हमारे देश में भीख माँगनेवाली नीच श्रेणी के ऐसे गरोह-के-गरोह हैं, जो अपने को हठयोगी कहते हैं, परंतु योग के तत्त्व का उन्हें लेश-मात्र भी ज्ञान नहीं है । इन मनुष्यों को कुछ थोड़े अभ्यास से अपने शरीर के अनधिकृत

अवयवों पर कुछ अधिकार प्राप्त हो गया है (यह बात सब किसी के लिये, जो इस विषय का अभ्यास करें, संभव है) और उस अधिकार से उन्हें ऐसी सामर्थ्य हो गई है कि अपने शरीर पर वे कुछ असाधारण तमाशे कर लेते हैं और उन्हें दूसरों को पैसे के लालच से दिखाया करते हैं। इनकी करतूतों में से कुछ तो बहुत ही आश्चर्यजनक होती हैं। कोई-कोई तो अपनी अँतड़ियों और गले की अधःगामिनी क्रिया को उलटकर ऊर्द्ध्वगामिनी बना देते हैं, जिससे मलाशय की वस्तुओं को गले की राह मुँह से निकालते हैं। यह बात डॉक्टरों के लिये तो आश्चर्यजनक है; पर साधारण मनुष्यों के लिये घृणाजनक के सिवा और कुछ नहीं। इन लोगों की और भी ऐसी-ही-ऐसी करतूतें हैं, जिनसे पुरुष अथवा स्त्री की स्वास्थ्य-विषयक अभिलाषाओं को तनिक भी सफलता होने की संभावना नहीं है। ऐसे ही इनके दूसरे भाई एक और होते हैं, जो योगी का नाम धारण किए हैं और जो मज़हबी कारणों से नहाते तक नहीं, या अपनी भुजा उठाए रहते हैं, जिससे वह सूख जाती है, या इसी प्रकार की और क्रियाएँ करते हैं जिनसे लोग उन्हें महात्मा समझें और मुफ़्त में भोजन इत्यादि दें। ये लोग या तो पक्के ठग हैं, या धोखे में पड़े हुए सनकी आदमी।

इन मनुष्यों पर, जिनका हम ऊपर वर्णन कर आए हैं, सच्चे योगी लोग तरस खाते हैं। सच्चे योगी लोग हठयोग को अपने शास्त्र का एक प्रधान अंग मानते हैं; क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य को स्वस्थ शरीर मिलता है—जो काम करने के लिये बड़ा अच्छा औज़ार है—और जो आत्मा के लिये अनुकूल मंदिर है।

इस छोटी किताब में हमने सीधे-सादे तरीक़े से हठयोग के मूल तत्त्वों को दे देने का प्रयत्न किया है कि इस पार्थिव शरीर के लिये योगियों का क्या तरीक़ा है। हमें यह आवश्यक जान पड़ा कि पहले पश्चिमी शरीर-विज्ञान के अनुसार हम शरीर के भिन्न-भिन्न कार्यों को

दरसावें और तब प्रकृति के उपायों और रीतियों का वर्णन करें, जिनका अनुसरण करना मनुष्य के लिये यथासाध्य अत्यंत आवश्यक है। यह वैद्यक की किताब नहीं; इसमें दवा का नाम भी नहीं, और न इसमें रोगों के छुड़ाने ही का वर्णन है। हाँ, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने के लिये उपाय अवश्य बतलाए गए हैं। इसका उद्देश स्वस्थ मनुष्य है। इसका प्रधान अभिप्राय यही है कि मनुष्यों को स्वाभाविक जीवन में लाने के लिये सहायता पहुँचावे। परंतु हम लोगों का यह भी पूरा विश्वास है कि जिन बातों से स्वस्थ मनुष्य स्वस्थ बना रह सकता है, उन्हीं बातों के द्वारा अस्वस्थ मनुष्य भी स्वस्थ हो सकता है, यदि वह उन बातों का पूरा अनुसरण करे। हठयोग सच्चे, स्वाभाविक और असली जीवन का उपदेश करता है; जो कोई इसका अनुसरण करेगा उसी को लाभ पहुँचेगा। यह प्रकृति के अनुकूल चलता है, और हम लोगों को, जो कृत्रिम आदतों और जीवन के जाल में फँस गए हैं, प्रकृति के मार्ग पर लौट आने की प्रेरणा करता है।

यह पुस्तक सरल है—बहुत सरल है—इतनी सरल है कि बहुत-से मनुष्य तो इसे अलग फेक देंगे कि इसमें तो कोई नई और अद्भुत बात ही नहीं है। कदाचित् उनकी यह आशा रही हो कि इसमें भिखमंगे योगियों की मशहूर करतूतें होंगी और ऐसे उपाय दिए गए होंगे, जिनसे इस पुस्तक का पढ़नेवाला भी उन करतूतों को कर सकेगा। हम ऐसे मनुष्यों को बतलाए देते हैं कि यह किताब वैसी नहीं है। हम इसमें चौहत्तर आसनों को नहीं बतलाते, और न यही बतलाते हैं कि अँतड़ियों को साफ़ करने के लिये उनमें वस्त्र डालकर फिर कैसे उसे निकालते हैं (इसका प्रकृति के नियम से मुक़ाबिला कीजिए), या कैसे दिल का धड़कना बंद कर देते अथवा कैसे भीतरी अवयवों से नाना प्रकार के खेल करते हैं। इस किताब में आप ऐसा कुछ भी न पावेंगे। हम इसमें

यह बतलाते हैं कि किसी उच्छृंखल अवयव को कैसे वश में किया जाता है, कैसे उससे समुचित कार्य लिया जाता है। और, हम उन अनधिकृत अवयवों पर अधिकार जमाना बतलावेंगे, जिन्होंने हड़ताल करके अपना काम करना बंद कर दिया है। हमने इन उपायों का इसलिये इस पुस्तक में वर्णन किया है कि मनुष्य का स्वास्थ्य बना रहे, न कि इस अभिप्राय से कि इनके द्वारा कुखेल रचा जाय।

हमने बीमारियों के विषय में बहुत नहीं वर्णन किया है। हमने आपके सम्मुख स्वस्थ पुरुष और स्त्री का नमूना खड़ा कर दिया है, और हम आपसे यही चाहते हैं कि आप देखें, कैसे वे स्वस्थ हुए और कैसे अब भी स्वस्थ बने हुए हैं। तब हम आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करते हैं कि वे क्या और कैसे करते हैं। फिर हम यह शिक्षा देते हैं कि आप भी वैसा ही कीजिए, यदि आप भी वैसे ही स्वस्थ बना चाहते हैं। बस इतना ही करने का हमारा प्रयत्न है। परंतु इसी इतने में वे सब बातें आ जाती हैं, जो आपके लिये की जा सकती हैं; शेष आपको स्वयं करना होगा।

अन्य अध्यायों में हम यह बतलावेंगे कि योगी लोग इस शरीर पर इतना ध्यान क्यों देते हैं। हम हठयोग के मूल तत्त्व, इस विश्वास का वर्णन करेंगे कि सर्वजीवन के पीछे सर्वव्यापक महती चेतनता वर्तमान है—उस जीवन तत्त्व के ऊपर पूर्ण विश्वास चाहिए कि वह अपना कार्य समुचित रूप से करेगा—यह विश्वास अटल बना रहे कि यदि हम उस महत्तत्त्व पर विश्वास करें, और उसे अपने भीतर काम करने का निर्बाध रूप से अवकाश दें, तो हमारे शरीर का सदा कल्याण रहेगा। पढ़ते चलिए, तब आपको मालूम हो जायगा कि हम आपको क्या बतलाने का यत्न कर रहे हैं—आप उस संदेश को पा जायँगे, जो आपको देने के लिये हमें सुपुर्द हुआ है। इस प्रश्न के

उत्तर में, जो इस अध्याय के सिरे पर दिया गया है कि "हठयोग क्या है?" हम यह कहते हैं कि इस किताब को अंत तक पढ़ जाइए, तब आप कुछ-कुछ समझेंगे कि यह क्या वस्तु है। जिन बातों का उपदेश इस किताब में दिया गया है, उनका अभ्यास कीजिए, तब आपको अपने अभीष्ट ज्ञान के पथ पर एक ख़ासा प्रस्थान मिल जायगा।

दूसरा अध्याय

इस पार्थिव शरीर पर योगी का ध्यान

ऊपरी देखनेवाले को योगशास्त्र के उपदेशों में परस्पर बड़ा विरोध दिखाई देता है । एक ओर तो यह शास्त्र यह बतलाता है कि यह पार्थिव शरीर नश्वर द्रव्यों से बना हुआ है और मनुष्य के उच्च तत्त्वों के सम्मुख यह कुछ भी नहीं है; और दूसरी ओर अपने शिष्यों को यह शिक्षा देने के लिये बहुत ही प्रयत्न और प्रधानता देता है कि इस पार्थिव शरीर की पुष्टि, शिक्षा, व्यायाम और उन्नति पर ख़ूब ध्यान दो। सच तो यह है कि योगशास्त्र की एक संपूर्ण शाखा ही, हठयोग के नाम से, इस पार्थिव शरीर की उन्नति ही के विषय में है, जिसमें इस शरीर की रक्षा और विकाश के विषय में विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है ।

बाज़-बाज़ पश्चिमी यात्री जो पूरब में आते और योगियों को शरीर पर अधिक ध्यान देते पाते हैं, तो झट यह अनुमान अपने जी में कर लेते हैं कि "योगशास्त्र केवल शारीरिक शिक्षा का पूर्वीय रूपांतर-मात्र है, जो कदाचित् कुछ और सावधानी से किया जाता है, पर इसमें आध्यात्मिकता कुछ नहीं है ।" वे ऊपर-ही-ऊपर देखकर यह कह डालते हैं, परंतु इसके भीतर-भीतर क्या है, इसकी उन्हें कुछ ख़बर ही नहीं ।

हमको इस बात की आवश्यकता नहीं कि अपने शिष्यों को योगी के शरीर के ऊपर इतना ध्यान देने का कारण समझावें, न तो इस छोटी किताब के प्रकाशित करने पर, जिसमें अपने योग के शिष्यों

को वैज्ञानिक रीति से शरीर के विकाश और पोषण की शिक्षा दी गई है, क्षमा-प्रार्थना की हमें आवश्यकता है।

आप लोग जानते हैं, योगियों का यह विश्वास है कि असली मनुष्य उसका शरीर नहीं है। वे जानते हैं कि वह अमर 'अहम्' जिसकी प्रत्येक व्यक्ति थोड़ी बहुत जानकारी रखता है, देह नहीं है; इस देह को तो केवल वह धारण करता और इससे काम लेता है। वे जानते हैं कि देह केवल वस्त्राच्छादन की भाँति है, जिसको आत्मा पहन लेता और समय पर उतार देता है। वे जानते हैं कि शरीर किसलिये है; और इसी से वे इसके असली मनुष्य होने के धोखे में नहीं पड़ते। इन सब बातों के जानते हुए, वे यह भी जानते हैं कि यह देह वह औज़ार है, जिसमें और जिसके द्वारा जीव विकाश पाता और अपना काम करता है। वे जानते हैं कि विकाश के इस दर्जे में मनुष्य के उद्घाटन और उन्नति के लिये मांस-देह आवश्यक है। वे जानते हैं कि शरीर आत्मा का मंदिर है, और इसलिये उनका यह विश्वास है कि शरीर का ध्यान रखना और उसकी उन्नति करना वैसा ही उचित कार्य है, जैसा कि मनुष्य के उच्च तत्त्वों का विकाश करना; क्योंकि अस्वस्थ और अधूरे गठित शरीर से मन यथोचित रूप में कार्य नहीं कर सकता, और न तो यह औज़ार अपने मालिक आत्मा के हित के लिये यथेष्ट काम में आ सकता है।

यह सत्य है कि योगी इस सीमा से और आगे जाता है, और यह हठ करता है कि देह पूर्णतया मन के अधिकार में वशीभूत रहे—यह औज़ार ऐसा शान दिया रहे—कि मालिक के हाथों का स्पर्श पाते ही यथेष्ट कार्य संपादित कर देने में समर्थ हो।

परंतु योगी जानता है कि ख़ूब ऊँचे दर्जे का कार्य-संपादन तभी होगा, जब इस शरीर की उचित ख़बरदारी, पुष्टि और विकाश किए जायँगे। उच्च शिक्षित वही शरीर होगा, जो सबसे प्रथम सुदृढ़ और

स्वस्थ हो लेगा। इन्हीं कारणों से योगी अपने पार्थिव शरीर का इतना ध्यान और पर्वा करता है; इसी से हठयोग के योग-विज्ञान का प्रधान अंग शारीरिक शिक्षा है।

पश्चिमी शारीरिक शिक्षक शरीर की उन्नति केवल शरीर ही के लिये करता है, और प्रायः उसका यही विश्वास रहता है कि शरीर ही मनुष्य है। पर योगी यह समझकर अपने शरीर का विकाश करता है कि शरीर आत्मा का केवल एक औज़ार-भर है, जो मनुष्य के असली तत्त्व के काम आता है; यह औज़ार पक्का रहेगा तो जीव के विकाश में पक्का काम देगा। शारीरिक शिक्षक केवल शरीर की बाहरी ही कसरतों से संतुष्ट रहता और उन्हीं कसरतों को करता है, जिनसे पट्ठे पुष्ट हों। योगी अपने अभ्यासों में मन को भी मिला देता है, और केवल पट्ठों ही को पुष्ट न करके शरीर के प्रत्येक अवयव, परमाणु और अंग को विकशित करता है। वह केवल इतना ही नहीं करता; किंतु शरीर के प्रत्येक अंग पर अपना अधिकार प्राप्त करता है, और शरीर के अनधिकृत और अधिकृत प्रत्येक अंग पर अपना स्वामित्व स्थापित करता है। ये बातें ऐसी हैं, जिनसे साधारण शरीर शिक्षक बिलकुल ही अनभिज्ञ है।

हम अपने शिष्यों को योग-शिक्षा का वह मार्ग बतलाते हैं, जिससे उनका शारीरिक स्वास्थ्य पूरा-पूरा दुरुस्त हो जाय, और हम आशा करते और निश्चय रखते हैं कि जो मनुष्य हमारी शिक्षा को सावधानी से, ज्ञानपूर्वक ग्रहण करेगा, उसके समय और परिश्रम का पूरा-पूरा फल उसे मिल जायगा, वह अपने पूर्ण विकशित शरीर का मालिक होगा। वह अपने शरीर से उतना ही संतुष्ट हो जायगा, जितना कोई गुणी संगीताचार्य अपने उत्तम-से-उत्तम उस वाद्य यंत्र को पाकर संतुष्ट रहता है, जो उसके हाथ का स्पर्श पाते ही उसके मनोवांछित राग को अलापने लगता है।

तीसरा अध्याय

दैवी कारीगर की कारीगरी

योगशास्त्र यह सिखलाता है कि परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को एक शारीरिक कल देता है, जो उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल हुआ करती है; और उसे उस कल को ठीक दशा में रखने, और यदि मनुष्य की भूल से कल कुछ बिगड़ जाय तो उसके मरम्मत करने के साधन भी देता है। योगी लोग इस मानव शरीर को महाचैतन्य शक्ति की कारीगरी समझते हैं। वे इसके संगठन को एक चलती हुई कल समझते हैं, जिसकी कल्पना और परिक्रिया अत्यंत चातुरी और स्नेह का परिचय देती है। योगी लोग जानते हैं कि यह देह उसी महाचैतन्य के कारण है; वे जानते हैं कि वही चैतन्य इस पार्थिव देह में सर्वदा लगातार काम कर रहा है, और जब तक कोई व्यक्ति उसके नियम का अनुयायी बना रहता है, तब तक वह स्वस्थ और सुदृढ़ भी बना रहता है। वे यह भी जानते हैं कि जब मनुष्य उस नियम के प्रतिकूल चलता है, तो इसका परिणाम गड़बड़ और बीमारी होती है। उनका विश्वास है कि यह कल्पना कि उस महती चेतनता ने इस शरीर को उत्पन्न तो किया, पर इसे इसकी भाग्य के भरोसे छोड़कर आप हट गई, नितांत हास्य के योग्य है। उनका यह विश्वास है कि वह महती चेतनता अब भी शरीर की प्रत्येक क्रिया का निरीक्षण करती है और वह निर्भय होकर विश्वास करने के योग्य है, न कि उससे डरा जाय।

वह महती चेतनता, जिसके रूपांतर को हम 'प्रकृति', 'जीवन-

तत्त्व' था ऐसे ही और नामों से पुकारते हैं, सर्वदा क्षतियों की मरम्मत करने, घावों को पूरा करने और टूटी हड्डियों को जोड़ने के लिये चौकन्नी रहती है, उन सहस्रों हानिकारक द्रव्यों को इस यंत्र में से निकाल फेकने के लिये तत्पर रहती है, जो कि इसमें एकत्रित हुआ करते हैं। वह हज़ारों उपाय करके इस यंत्र को अच्छी चलती दशा में रक्खा चाहती है। जिसको हम रोग कहते हैं, उसका अधिकांश भाग वस्तुतः प्रकृति की वह लाभदायक क्रिया है, जो उन विषैले द्रव्यों को हटाकर निकालने के लिये होती है, जिन्हें हमने अपने शरीर में प्रवेश कराकर स्थान दिया है।

आइए, ज़रा देखिए, तो इस शरीर का अर्थ क्या है। किसी जीव की कल्पना कीजिए कि वह एक ऐसा ठाँव खोज रहा है, जहाँ रहकर अपने अस्तित्व की इस दशा को चरितार्थ कर सके। योगी लोग जानते हैं कि कतिपय रीतियों से विकाश पाने के लिये जीव को मांस-निर्मित ठाँव (देह) की आवश्यकता होती है। अब देखना चाहिए कि इस देह के ढंग पर जीव को कौन-कौन-सी वस्तुएँ आवश्यक हैं; और तब विचार किया जायगा कि प्रकृति ने सब वस्तुओं को जुटा दिया है कि नहीं।

सबसे प्रथम तो जीव को एक अच्छे विचित्र सुगठित सोचने-विचारने के औज़ार की ज़रूरत है, जो एक ऐसा सदर स्थान हो, जहाँ से वह शारीरिक क्रियाओं का संचालन कर सके। प्रकृति ने उस अद्भुत औज़ार को मस्तिष्क के रूप में दिया है, जिसकी गूढ़ शक्तियों को इस समय हम बहुत ही थोड़ा-सा जानते हैं। मस्तिष्क के जितने भाग को मनुष्य अपने विकाश की इस वर्तमान दशा में काम में लाता है, वह भाग कुछ मस्तिष्क का एक बहुत ही छोटा खंड-मात्र है। अप्रयुक्त भाग मानव-समुदाय के और अधिक विकाश की बाट जोह रहा है।

अब जीव को इंद्रियों की आवश्यकता है, जिनके द्वारा वह बाह्य पदार्थों के भिन्न-भिन्न चिह्नों को धारण और अंकित कर सके। प्रकृति फिर सहायता के लिये पहुँचती है, और आँख, कान, नाक और रसना तथा स्पर्श-इंद्रियों को मुहैया कर देती है। प्रकृति ने और इंद्रियों को पीछे रख लिया है; उन्हें वह तब देगी, जब मानव-समुदाय को उनकी आवश्यकता होगी।

तब मस्तिष्क और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों के बीच में संदेशों और शासनों के आवागमन के साधन होने चाहिए। प्रकृति ने आश्चर्य-जनक रीति से सारे शरीर में तंतुओं का जाल फैला दिया है। मस्तिष्क इन्हीं तंतुओं के तार द्वारा शरीर के सब अंगों-प्रत्यंगों में अपनी आज्ञाओं को भेजता है; प्रत्येक शारीरिक परमाणु और इंद्रिय में आज्ञा भेज-कर उसके पालन के लिये हठ करता है। वैसे ही शरीर के सब अंगों से इन्हीं तारों द्वारा, उपस्थित भय, सहायता की माँग और फ़र्यादों की पुकार के संदेशों को प्राप्त करता है।

फिर शरीर को ऐसे साधन चाहिए, जिससे वह संसार में भ्रमण कर सके। यह स्थावर दशा की प्रवृत्तियों के पार उतर गया है, और अब इसे भ्रमण करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त इसे बाहरी वस्तुओं के पास पहुँचना और उन्हें अपने काम में लाना है। इसलिये प्रकृति ने इसे हाथ-पाँव दिए हैं, और उन पाँव और हाथों को संचालित करने के लिये मांसपेशियाँ (पट्ठे) और नसें दी हैं।

शरीर को एक ऐसे ढाँचे की भी ज़रूरत है, जिससे वह दृढ़ और कड़े आकार में बना रहे, धक्कों को सहन कर ले, और ख़ालिस मांसपिंड रहकर लुंड-मुंड न हो जाय; इसे बल और दृढ़ता रहे; ऊपर सँभला रहे; इसलिये प्रकृति ने इसे हड्डियों का ढाँचा दिया है; यह ढाँचा कैसा अद्भुत है! आपके अध्ययन करने के ही योग्य है।

अब जीव को दूसरे शरीरधारी जीवों के साथ अपने मनोगत भावों के कहने-सुनने का साधन चाहिए। प्रकृति ने वाणी और श्रवण की इंद्रियाँ देकर इस अभाव को भी दूर कर दिया है।

शरीर को एक ऐसे साधन की आवश्यकता है, जिसके द्वारा वह अपने प्रत्येक अंगों और प्रत्यंगों में उनके मरम्मत की सामग्री भेज सके, जिससे शरीर की मरम्मत हो, त्रुटियों की पूर्ति होती रहे और सब भागों में बल पहुँचता रहे। फिर ऐसे ही एक और साधन की आवश्यकता है, जिससे कि शरीर के अंगों की रद्दियात, कूड़े और मैल श्मशान में भेज दिए जायँ और वहाँ जलाकर शरीर के बाहर फेक दिए जायँ। इसके लिये प्रकृति हमें जीवनदाता रुधिर देती है, और रुधिर के प्रवाह के लिये नलियाँ और धमनियाँ देती है, जिनके द्वारा रुधिर आगे और पीछे बहता हुआ अपना कार्य करता है। और प्रकृति ने हमें फेफड़े दिए हैं, जो रुधिर में आक्सिजन भरा करते हैं, और रद्दियात तथा कूड़े और मैलों को जलाया करते हैं।

शरीर को बाहरी सामग्रियों की ज़रूरत पड़ती है, जिनसे इसके अंगों की वृद्धि और मरम्मत हुआ करे। प्रकृति ने ऐसे-ऐसे साधन दे दिए हैं, जिनसे भोजन किया जाता है, उसे पचाया जाता है, उसमें से पोषण करनेवाला रस निकाला जाता है, उस रस को ऐसे रूप में लाया जाता है, जिसमें शरीर के अवयव उसे अपना सकें और अपने में मिला लें। प्रकृति ने ऐसे भी साधन दिए हैं, जिनसे निस्सार मल बाहर निकालकर फेक दिया जाता है।

अंत में शरीर को ऐसा साधन प्रकृति द्वारा मिला हुआ है कि वह अपने ही रूप के अन्य शरीरों को उत्पन्न कर सकता है और दूसरे जीवों के लिये देह तैयार कर देता है।

मानव-शरीर की आश्चर्यजनक कारीगरी और क्रियाओं का अध्ययन

करना बड़ा ही लाभदायक है। इसके अध्ययन से प्रकृति की महती चेतनता की सत्यता का अकाट्य अनुभव हो जाता है। मनुष्य को महत् जीवनतत्त्व कार्यनिरत दिखलाई देने लगता है। वह देखने लगता है कि यह अंध संयोग अथवा जड़ घटना नहीं है; किंतु एक महच्छक्ति-शालिनी चेतनता का काम है।

तब वह इस चेतनता में विश्वास करना सीखता है कि जो चैतन्य शक्ति हमें इस शारीरिक सत्ता में लाई है, वही हमें जीवन में सँभाल ले जायगी। जिस शक्ति ने उस समय हमारी ख़बर्दारी की, उसी की ख़बर्दारी में हम अब भी हैं और सर्वदा रहेंगे भी।

जितना ही हम उस महत् जीवनतत्त्व के प्रवेश के लिये खुले हुए रहेंगे, उतना ही लाभ उठावेंगे। यदि हम उस तत्त्व से भयभीत होंगे अथवा उसका विश्वास न करेंगे, तो उसके लिये हम अपना दरवाज़ा बंद करते हैं, और हमें अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा।

चौथा अध्याय

हमारा मित्र जीवनबल

बहुत-से लोग यह ग़लती करते हैं कि बीमारी को एक चीज़—असली चीज़—स्वास्थ्य का वैरी—समझते हैं। यह बात सही नहीं। स्वास्थ्य मनुष्य की स्वाभाविक दशा है, और स्वास्थ्य का अभाव ही बीमारी है। यदि कोई मनुष्य प्रकृति के नियमों का अनुसरण करे तो वह बीमार हो ही नहीं सकता। जब किसी नियम का उल्लंघन होता है, तब असाधारण दशा उत्पन्न हो जाती है और कतिपय लक्षण प्रकट हो जाते हैं, इन्हीं लक्षणों को हम बीमारी नाम देते हैं। जिसको हम बीमारी कहते हैं, वह केवल प्रकृति के उस प्रयत्न का परिणाम है, जिसे वह असाधारण दशा के हटाने और साधारण क्रिया के लाने के लिये करती है।

हम लोग बीमारी को झट एक चीज़ समझ और कह डालते हैं। हम लोग कहा करते हैं कि वह हमारे ऊपर आक्रमण करती है—वह अमुक अवयव में अपना घर बनाए हुए है—वह अपनी राह चली जा रही है—वह बड़ी ही ज़िद्दी है—वह बिलकुल ही मुलायम है—वह सब औषधियों से भिड़ जाती है—वह फ़ौरन् मान जाती है—इत्यादि। हम लोग उसके विषय में ऐसा कहा करते हैं, मानो वह ऐसी चीज़ है, जिसमें ख़सलतें, आदतें और और जीव हों। हम लोग उसे ऐसा समझते हैं कि मानो वह हम पर चढ़ दौड़ती है और हमारे बिगाड़ के लिये अपना बल लगाती है। हम लोग उसके विषय में ऐसा कहते हैं, जैसा भेड़-बकरियों के

घर में भेड़िया—मुर्गी के बच्चों के दर्बे में बिल्ली—ग़ल्ले के अंबार में चूहा—के विषय में कहा करते हैं, और उसके साथ वैसे ही भिड़ने का यत्न करते हैं जैसे उक्त जंतुओं के साथ। हम लोग उसे मार डाला, या नहीं तो डराकर भगा दिया, चाहते हैं।

प्रकृति कोई ओछी या अविश्वास-योग्य वस्तु नहीं है। इस शरीर में सुव्यवस्थित नियमों के अनुसार जीवन विकाश करता है, और धीरे-धीरे उदय होता है, अपनी पूरी अवधि पर पहुँचता है, और तब शनैः-शनैः क्षीण होने लगता है; अंत में वह समय आ जाता है कि यह शरीर पुराने परिधान-वस्त्र की भाँति अलग कर दिया जाता है, और जीव अपने और अधिक विकाश की यात्रा में निकल खड़ा हो जाता है। प्रकृति की यह इच्छा कदापि न थी कि मनुष्य पूर्ण वृद्धा-वस्था के पहले अपने शरीर को छोड़े, और योगी लोग जानते हैं कि यदि प्रकृति के मार्ग पर बचपन ही से चला जाय तो नवयुवक या अधेड़ मनुष्य की मृत्यु वैसी ही विरल हो जाय, जैसी कि दुर्घटना-जनित मृत्युएँ विरल हुआ करती हैं।

प्रत्येक पार्थिव शरीर में एक ऐसा जीवनबल रहता है, जो अपनी शक्ति-भर हमारे लिये लगातार प्रयत्न किया करता है, यद्यपि हम लोग अपनी लापरवाही से स्वाभाविक जीवन के मुख्य-मुख्य नियमों का भी उल्लंघन करते रहते हैं। जिसको हम बीमारी कहते हैं, उसका एक बड़ा भाग इस जीवन बल का रक्षाकारी प्रयत्न है—और चंगा करनेवाली वस्तु है। जीवित अवयवों की ओर से वह अधोगति नहीं, किंतु ऊर्द्ध्वगति है। यह प्रयत्न असाधारण और अस्वाभाविक होता है; क्योंकि असाधारण और अस्वाभाविक दशा पहले ही उत्पन्न कर दी जा चुकी है, और साधारण दशा को लाने के लिये उस जीवन-बल को अपने सारे चंगा करनेवाले प्रयत्न को लगाना पड़ता है।

इस जीवनबल का पहला उद्देश आत्म-रक्षा है। जहाँ-जहाँ जीवन

है, वहाँ-वहाँ यह उद्देश प्रकट दिखाई देता है। इसीके प्रभाव से नर और मादा एकत्र खिंचते हैं, गर्भस्थित जीव और बच्चे को पोषण मिलता है, माता संतान-जनन की दुस्सह पीड़ा सहती है, कठिन-से-कठिन दुरवस्था में भी माता पिता अपने बच्चों की रक्षा करते हैं। क्यों ? क्योंकि इन सब बातों का अर्थ जातिगत रक्षा की प्रवृत्ति है।

व्यक्तिगत रक्षा की प्रवृत्ति भी ऐसी ही बलवती होती है। "मनुष्य अपनी ज़िंदगी के लिये सब कुछ अर्पण कर सकता है", ऐसा एक लेखक ने लिखा है। यद्यपि यह कथन बड़े आदमियों पर पूरा नहीं घट सकता (स्मरण करो—प्राण जाय वरु बचन न जाहीं) तो भी आत्म-रक्षा की दृढ़ प्रवृत्ति के उदाहरण देने के लिये यथेष्ट "सच" है। यह प्रवृत्ति बुद्धि की प्रवृत्ति नहीं है, किंतु, बहुत नीचे से, सत्ता की नींव ही से इसकी भी जड़ है। यह प्रवृत्ति बुद्धि को भी दबाकर अपने आप ऊपर हो जाती है। जब कभी मनुष्य अपनी बुद्धि से दृढ़ संकल्प कर लेता है कि इस ख़तरे की जगह पर मैं अटल खड़ा रहूँगा, तो भी यह प्रवृत्ति उसकी टाँगों को भगा ले जाती है। इसी प्रवृत्ति के वशवर्ती होकर डूबे हुए जहाज़ का मनुष्य सभ्यता के बड़े-बड़े नियमों को तोड़ देता है और अपने ही साथी को मारकर उसका लहू पी लेता है; भयंकर काल-कोठरी (Black Hole) के मनुष्यों को इसी प्रवृत्ति ने पशु बना दिया था। यह प्रवृत्ति अनेक और भिन्न दशाओं में अपनी प्रभुता दिखलाया करती है। यह सर्वदा जीवन—अधिक जीवन, स्वास्थ्य—अधिक स्वास्थ्य के प्रयत्न में लगी रहती है। यही प्रवृत्ति हमें—स्वस्थ बनाने के अभिप्राय से—बहुधा बीमार कर देती है; यही प्रवृत्ति उस विषैले अनमिल पदार्थ को हमारे भीतर से निकालने के लिये, जिसे हमने अपनी लापरवाही और मूर्खता से भीतर डाल रक्खा है, हमें बीमार कर देती है।

जैसे चुंबक की सुई की आंतरिक प्रभुता सुई के सिरे को सर्वदा

उत्तर की ओर रक्खा चाहती है, वैसे ही जीवनबल का आत्मरक्षक तत्त्व सर्वदा हमें स्वास्थ्य के पथ पर चलने की प्रेरणा करता है। हम उस प्रेरणा की उपेक्षा करें, उस पर ध्यान न दें, यह दूसरी बात है; पर प्रेरणा होती अवश्य है। वही प्रवृत्ति हमारे भीतर भी है, जो प्रवृत्ति बीज में रहकर उसके अंकुर को जमाती है और सूर्य की धूप की लालसा से उस बीज से सहस्रगुने अधिक भारी बोझ को हटा देती है। वही प्रवृत्ति अंकुर को ऊपर ले आती है और जड़ को नीचे ले जाती है। ये दोनों गतियाँ यद्यपि एक दूसरी से विपरीत ओर जाती हैं, पर ये दोनों गतियाँ ठीक हैं। यदि हम घायल होते हैं तो यही जीवनबल घाव को चंगा करने लगता है, इसमें वह आश्चर्यजनक पटुता और निपुणता दिखाता है। जब कभी हम अपनी किसी हड्डी को तोड़ देते हैं तो हम या डॉक्टर साहब केवल इतना ही करते हैं कि टूटे हुए खंडों को मिलाकर उन्हें वैसे ही रख छोड़ते हैं, और यही बड़ा जीवनबल उन टूटे हुए खंडों को जोड़ देता है। अगर हम गिर पड़ें और हमारे पट्ठे या कोई अंग फट जायँ तो हम केवल यही करते हैं कि चंद बातों का ध्यान रखते हैं, और बाक़ी सब काम यही जीवनबल करता है, और वह शरीर ही से मरम्मत की सामग्री लेकर क्षत को पूरा कर देता है।

सभी डॉक्टर लोग जानते हैं, और उनकी विद्या उन्हें बतलाती है कि यदि मनुष्य की शारीरिक दशा अच्छी रहे तो उसका जीवन-बल उसे, उसके मार्मिक अवयवों के विनाश को छोड़कर, शेष सब रोगों से छुड़ा देगा; परंतु जब शारीरिक दशा बहुत ही हीन हो जायगी तो रोग से छुटकारा पाना बहुत कठिन हो जायगा; क्योंकि ऐसी दशा में जीवनबल की प्रभुता बहुत क्षीण हो जायगी और उसको बहुत ही विपरीत अवस्था में काम करना पड़ेगा। परंतु निश्चय रक्खो कि वह तुम्हारे लिये अपनी शक्ति-भर वर्तमान

अवस्था में पूरा कार्य करता है। यदि जीवनबल अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ तुम्हारे लिये नहीं कर पाता तो भी वह निराश होकर प्रयत्न को नहीं छोड़ता; किंतु अवस्था के अनुकूल होकर अपनी शक्ति-भर काम करने में कुछ उठा नहीं रखता। उसको पूरा अवकाश और मार्ग दीजिए, वह आपको पूरी स्वस्थ दशा में रक्खेगा; अपनी अस्वाभाविक और अविचार की रहन-चलन से उसे बाँध रक्खोगे तो भी वह तुम्हें सँभालने ही का यत्न करता रहेगा और अंत तक अपनी शक्ति-भर तुम्हारी सेवा करता रहेगा, चाहे तुम कितनी ही कृतघ्नता और मूर्खता करते रहोगे, पर वह अंत तक तुम्हारे हित के लिये लड़ता रहेगा।

जीवन के प्रत्येक रूपांतर में अवस्था के अनुकूल होने की प्रवृत्ति सर्वत्र दिखलाई देती है। यदि कोई बीज किसी चट्टान की दरार में पड़ जाता है तो जब वह उगने लगता है तो चट्टान के रूप के अनुकूल ऐंठ-पैंठ जाता है, या यदि वह पूरा बलवान् हुआ तो चट्टान को भी फाड़ देता है और स्वयं अपने स्वाभाविक रूप में ऊपर निकलता है। वैसे ही मनुष्य की दशा में भी, जब मनुष्य सब प्रकार की आबोहवा और अवस्था में जीने का प्रबंध करता है, तब यह जीवनबल भी अपने को अवस्था के अनुकूल बना लेता है, और जहाँ यह चट्टान को न तोड़ सका, वहाँ भी अंकुर को टेढ़ा-मेढ़ा बनाकर जमा ही दिया और उस पौदे को जीता-जागता और दृढ़ रक्खा।

जब तक स्वास्थ्य की उचित रीतियों का पालन होता रहता है तब तक कोई शरीरावयव रुग्णावस्था को नहीं पहुँचता। स्वास्थ्य स्वाभाविक दशा का जीवन है, और अस्वस्थता अस्वाभाविक दशा की ज़िंदगी है। जिन अवस्थाओं ने मनुष्य को इस स्वस्थ और बलवान् "यौवन" तक पहुँचाया, वे अवश्य इसे स्वस्थ और बलवान् ही रखतीं। यदि आप अच्छा अवसर देंगे तो यह जीवनबल उत्तम-से-उत्तम कार्य कर दिखलावेगा; परंतु यदि आप अधूरा अवसर देंगे तो यह जीवनबल अधूरा ही

कार्य करने के योग्य होगा और थोड़ी-बहुत रुग्णावस्था उसका प्रतिफल होगी। हम लोग ऐसी सभ्यता में जी रहे हैं, जिसने कुछ-न-कुछ जीवन का अस्वाभाविक तरीक़ा हमारे ऊपर बलात् डाल ही दिया है। हम लोग न स्वाभाविक रीति से भोजन करते, न पानी पीते, न सोते, न साँस लेते और न स्वाभाविक रीति से वस्त्र ही पहनते हैं। हम लोगों ने वह-वह काम कर डाले हैं जो हमें नहीं करने चाहिए थे, और उन-उन कामों को नहीं किया, जिन्हें हमें करना चाहिए था, और इसलिये हममें 'स्वास्थ्य' नहीं है।

हमने जीवनबल की उपकारिता का वर्णन कर दिया; इसका कारण यह है कि जिन लोगों ने इस पर विचार नहीं किया है वे लोग इस पर प्रायः कुछ भी ध्यान नहीं देते। यह योगशास्त्र के हठयोग का एक अंग है, और योगी लोग अपने जीवन में इस पर बहुत बड़ा ध्यान रखते हैं। वे जानते हैं कि जीवनबल बड़ा भारी मित्र और प्रबल सहायक है, और वे अपने भीतर इसे स्वच्छंद प्रवाहित होने के लिये इसे पूरा अवकाश देते हैं, और इसकी क्रियाओं में वे यथासाध्य बहुत ही कम बाधा पहुँचाते हैं। वे जानते हैं कि "हमारा जीवनबल हमारी भलाई और स्वास्थ्य के लिये निरंतर जगा रहता है", और वे इसका अत्यंत विश्वास करते हैं।

हठयोग के साधनों की अधिकांश सफलता उन्हीं तरीक़ों पर अवलंबित है जिन तरीक़ों से जीवनबल स्वच्छंद और बिना बाधा के कार्य करता रहे। हठयोग के तरीक़े और अभ्यास इसी अभिप्राय पर उद्दिष्ट हैं। हठयोगी का यही उद्देश रहता है कि जीवनबल के मार्ग को रुकावटों से साफ़ रक्खें और उसके रथ के लिये साफ़ चिकना पथ खुला रक्खें। उसके उपदेशों का पालन कीजिए, आपका भला हो जायगा।

पाँचवाँ अध्याय

शरीर की रसायनशाला

इस छोटी किताब का यह उद्देश नहीं है कि यह शरीर-विद्या की पाठ्य पुस्तक हो; परंतु जब हम देखते हैं कि बहुत-से लोग ऐसे हैं जो भिन्न-भिन्न शारीरिक अवयवों की प्रकृति, उनके कार्य और उनके लाभों से कुछ भी जानकारी नहीं रखते; इसलिये शरीर के उन मुख्य-मुख्य अवयवों का वर्णन करना, जो भोजन के पचाने और उसका रस लेने तथा शरीर को पोषण करने का काम करते हैं, मैं अच्छा समझता हूँ। ये ही अवयव शरीर की रासायनिक क्रियाओं को करते हैं।

पचानेवाली कल के प्रथम अंग दाँतों पर पहले विचार करना चाहिए। प्रकृति ने हमें दाँत दिए हैं, जिनसे हम अपने भोजन को काटते हैं और ख़ूब बारीक पीस डालते हैं। इस क्रिया से भोजन इतना बारीक हो जाता है कि वह मुँह की लार और आमाशय के पचानेवाले द्रव रसायनों के साथ घुल जाने के योग्य बन जाता है। इसके पश्चात् वह द्रव रूप में परिवर्तित होता है, जिससे पोषण करनेवाले रस को खींचकर शरीर अपना ले और अपने में मिला ले। यह उसी पुरानी कहानी को बार-बार कहना और पिष्ट-पेषण करना है; परंतु हमारे पाठकों में से कितने ऐसे हैं जो ऐसा कार्य करते हैं, जिससे मालूम होता है कि वे नहीं जानते कि दाँत किस अभिप्राय से दिए गए हैं। वे अपने भोजन को शीघ्रता से निगल जाते हैं, मानो दाँत केवल दिखावे के लिये उन्हें दिए गए थे, और वे इस प्रकार क्रिया करते हैं मानो चिड़ियों की भाँति उनके भीतर भी

प्रकृति द्वारा पथरी दी गई है कि वे भी उसी तरह इस पथरी द्वारा अपने निगले हुए खाने को पीस डालें । याद रक्खो; मित्रो, तुम्हारे दाँत तुम्हें मतलब से दिए गए थे और यह विचार कर लो कि यदि प्रकृति की मंशा भोजन को निगलने ही की होती, तो वह दाँतों के स्थान में पथरी दिए होती। आगे चलकर दाँतों के समुचित प्रयोग के विषय में हम बहुत कुछ कहेंगे; क्योंकि हठयोग से इसका बहुत आवश्यक संबंध है, जैसा कि थोड़ी देर में आपको विदित होगा ।

अब आगे लार स्रवण करनेवाले मांस-खंडों पर विचार करना चाहिए। ये मांस-खंड संख्या में छः हैं, जिनमें से चार तो चौंहों और जीभ के नीचे हैं, और दो गालों में कानों के सामने दोनों बग़ल में हैं। इनका मुख्य कार्य, जो जाना गया है, यह है कि लार को बनावें और उसे स्रवण करें। जब आवश्यकता पड़ती है तब यही लार मुँह के भीतर की अनेक छोटी-छोटी नालियों से बहने लगती है और उस भोजन में मिलती जाती है जो दाँतों से कुचला या मसला जाकर बारीक किया जा रहा है। भोजन जितना ही दाँतों से कुचला या पीसा जायगा लार उतना ही अच्छी तरह से उसके प्रत्येक अंश में पहुँचकर मिल जायगी और उतना ही अधिक कार्य करेगी। लार भोजन को गीला भी कर देती है जिससे वह बहुत आसानी से घोंटा जा सके, यह कार्य उसका, उसके अन्य प्रधान कार्यों का केवल अनुयायी है। इसका सर्वप्रधान कार्य, जैसा कि पश्चिमी विज्ञान द्वारा सिखाया जाता है, रासायनिक क्रिया करना है, जिस क्रिया से लेईदार खाया हुआ पदार्थ शक्कर में परिवर्तित हो जाता है, और इस प्रकार के पाचन के क्रिया-कलाप में पहली क्रिया हो जाती है।

यहाँ बार-बार की कही हुई एक और कथा है। आप सब लोग

इस लार के विषय में जानते हैं; पर आप लोगों में कितने ऐसे मनुष्य हैं जो इस प्रकार भोजन करते हों, जिससे प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुकूल लार से काम लेने का अवसर मिलता हो। आप तो खाने को मुँह में ज़रा इधर-उधर घुमाकर निगल जाते हैं, और प्रकृति की उन तरकीबों ही को विफल कर देते हैं, जिनके लिये उसने इतनी कार्रवाइयाँ की थीं और जिनको संपादित करने के लिये उसने ऐसी-ऐसी बारीक और विचित्र कलों को बनाया था। परंतु प्रकृति भी अपनी तरकीबों की अवहेलना, लापरवाही और निरादर के कारण तुम पर भी चढ़ दौड़ने का प्रबंध कर लेती है। प्रकृति बहुत स्मरण रखती है और तुमसे उस ऋण को अवश्य चुकवाती है।

हमें यहाँ पर उस जिह्वा को न भूल जाना चाहिए, जिस बेचारी से क्रोधयुक्त वचन बोलने, चर्चा-चवाव और पिशुनता करने, झूठ-बोलने, शपथ उठाने और निंदा करने के नीच काम लिए जाते हैं।

इस जिह्वा को शरीर के पोषण करनेवाले क्रिया-कलाप में एक मुख्य काम करना पड़ता है। भोजन करते समय यह अनेक प्रकार की गति कर-करके भोजन को उलटती, पलटती और फेरती रहती है और इसी प्रकार भोजन के घोंटने में भी यह अपनी गति से सहायता पहुँचाती है। इसके अतिरिक्त यह स्वाद की इंद्रिय है और जो भोजन भीतर पेट में प्रवेश किया चाहता है उस पर भला-बुरा का विचार करती है।

आप लोगों ने दाँतों, लार स्रवण करनेवाले मांस-खंडों और जिह्वा के स्वाभाविक इस्तेमालों को भुला दिया है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि वे बेचारे आपकी पूरी सेवा न कर सके। यदि आप केवल उनका भरोसा करने लगें और समझदारी के साथ भोजन के स्वाभाविक तरीक़े को ग्रहण करें तो आप उन्हें उस भरोसे

का प्रतिपालन करते हुए पावेंगे, और वे फिर आपकी पूरी-पूरी सेवा करने लग जायँगे। वे बड़े अच्छे मित्र और सेवक हैं; उन पर विश्वास, भरोसा और उत्तरदायित्व रखने से वे अच्छा-से-अच्छा काम कर देते हैं।

जब भोजन खूब कुचल पीसकर लार से परिपूर्ण कर दिया जाता है तब वह गले से होकर आमाशय में जाता है। गले का निचला भाग भी एक विशेष प्रकार की गति करता है जिससे भोजन के अंश नीचे चले जाते हैं और यह क्रिया भी निगलने की क्रिया का एक खंड है। भोजन के लेईदार भाग के शक्कर में परिवर्तन होने की क्रिया जो लार से मुँह में प्रारंभ हुई थी वह भोजन के गले में होकर जाते हुए भी जारी रहती है; परंतु जब भोजन आमाशय में पहुँच जाता है तब एकदम बंद हो जाती है। विचारपूर्वक भोजन करने के विषय को अध्ययन करते समय इस बात पर खूब ध्यान देना चाहिए कि यदि भोजन मुँह में जल्दी उलट-पुलटकर निगल लिया जायगा तो उसमें लार का असर बहुत ही कम पहुँचा रहेगा और प्रकृति के आगे काम करने के लिये अयोग्य दशा में रहेगा।

आमाशय नाशपाती की शकल का एक थैला है। इसमें ढाई सेर तक और कहीं-कहीं अधिक भी वस्तु अँट सकती है। भोजन गले में होता हुआ आमाशय के ऊपरी वाम भाग में हृदय के ठीक नीचे प्रवेश करता है। यहाँ की क्रियाओं के हो जाने पर भोजन आमाशय के निचले दक्षिण भाग से पतली अँतड़ियों में एक ऐसे द्वार से प्रवेश करता है, जो ऐसा अद्भुत बना हुआ है कि आमाशय से चीज़ें तो इसमें आसानी से पहुँच सकती हैं, परंतु इन पतली अँतड़ियों से ऊपर आमाशय में उनका पुनः चढ़ जाना कभी नहीं हो सकता। यह द्वार अपने कर्तव्य पर सदा डटा रहता है और कभी धोखा नहीं देता।

आमाशय एक बड़ी रसायनशाला है, जहाँ भोजन के साथ

रासायनिक क्रियाएँ होती हैं, जो भोजन को इस योग्य बना देती हैं कि उसका रस रुधिर-रूप में हो सके, जो रुधिर सारे शरीर में प्रवाहित हुआ करता है और शरीर के सब अंगों और अवयवों को बनाता, मरम्मत करता, दृढ़ करता और बढ़ाता रहता है।

आमाशय का भीतरी भाग एक लसलसी झिल्ली से आच्छादित रहता है; इस झिल्ली में अनगिनत छोटे-छोटे मुलायम ख़ार-से निकले रहते हैं जिन सबका मुँह आमाशय में खुला रहता है, और इन ख़ारों के गिर्द बहुत ही बारीक-बारीक रुधिरवाहिनी नलियों का जाल-सा फैला रहता है, जिन नलियों की दीवारें अत्यंत पतली होती हैं। इसी से वह आश्चर्यकारी द्रव, जिसे आमाशय द्रव कहते हैं, स्रवा करता है। यह आमाशय द्रव एक बहुत बलवान् अर्क है जो भोजन के नाइट्रोजनिक भाग के गलाने का काम करता है। यह उस शक्कर पर भी क्रिया करता है जो लेईदार पदार्थों को लार से मिलने से बनता है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह अर्क तीखा होता है और इसमें वह रासायनिक पदार्थ होता है, जिसे पेप्सिन कहते हैं; यही पेप्सिन बड़ा कार्य करता है, और भोजन के पचाने में प्रधान काम इसी का होता है।

साधारण स्वाभाविक मनुष्य के स्वस्थ शरीर में आमाशय क़रीब-क़रीब एक गेलन आमाशय द्रव नित्य स्रवता है, और इसे अन्न के पचाने के काम में लाता है। जब अन्न आमाशय में पहुँचता है तो ये छोटे मुलायम ख़ार, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, काफ़ी मिक़दार में आमाशय द्रव बहा देते हैं, जो अन्न में ख़ूब मिल जाता है। तब आमाशय एक प्रकार की मंथन क्रिया करने लगता है, जिससे खाया हुआ सना अन्न लुगदी की भाँति इधर-उधर घूमा करता है; इधर से उधर फेरा जाता है, साना जाता है, मथा जाता है और गूँधा जाता है, जिससे वह आमाशय द्रव इस लुगदी के ज़र्रे-ज़र्रे में अच्छी

तरह से मिल जाता है। प्रवृत्ति मानस इस आमाशय के संचालन में कुछ ऐसा आश्चर्यजनक काम करता है कि ख़ूब तेल दी हुई कल की भाँति आमाशय को चलाता रहता है।

यदि आमाशय को अच्छी तरह से तैयार किया हुआ, भली भाँति दाँतों से पीसा हुआ, और काफ़ी तौर से लार मिलाया हुआ भोजन मिलता है तो आमाशय रूपी कल बहुत अच्छा काम कर दिखलाती है। परंतु, यदि भोजन आमाशय के योग्य तैयार नहीं किया गया रहता है, जैसा कि अक्सर हुआ करता है, और यदि वह अधूरा कुचला रहता है, अथवा जल्दी-जल्दी निगला हुआ रहता है, या यदि आमाशय नाना प्रकार के विचित्र द्रव्यों से ठूँस-ठूँसकर भरा हुआ रहता है, तभी बड़ी दिक़्क़त पड़ जाती है। ऐसी दशा में स्वाभाविक पाचन-क्रिया के होने के स्थान में आमाशय अपना कुछ भी काम नहीं कर सकता, जिससे सड़न शुरू हो जाती है, और आमाशय सड़ते-गलते पदार्थ का बर्तन—या यों कहिए कि सड़े पाँस का बर्तन—बन जाता है। यदि मनुष्य एक बार देख पाते कि उनका आमाशय कैसे सड़े पदार्थ का बर्तन बन गया है तो वे ठीक तरह से खाना खाने की बात से लापरवाही न करते और उसे ध्यान देकर सुनते।

खाने की अस्वाभाविक आदत से उत्पन्न यह सड़न अक्सर जीर्ण या पुरानी हो जाती है, और ऐसी दशाओं में परिणत हो जाती है, जिसे अपच या बदहज़मी कहते हैं या ऐसी ही कोई दूसरी बीमारी खड़ी हो जाती है। यह सड़न बनी ही रहती है कि दूसरा खाना पहुँच जाता है और पहली सड़न इस खाने में भी सड़न पैदा कर देती है; इस तरह से आमाशय पाँस के ख़मीर का नित्य ही बर्तन बना रहता है। इससे आमाशय की स्वाभाविक क्रिया निर्बल पड़ती जाती है, और इसकी सतह लसलसी, मुलायम, पतली और निर्बल

हो जाती है। मुलायम ख़ार सब मुँहबंद हो जाते हैं, और सारा पाचक यंत्र निर्बल और टूटा-फूटा हो जाता है। ऐसी दशा में वही अधपची लुगदी पतली अँतड़ियों में जाती है; सड़न के कारण इसमें एक प्रकार का तेज़ाब उत्पन्न हो जाता है, और परिणाम यह होता है कि सारा शरीर क्रमशः विषाक्त और अपुष्ट हो जाता है।

भोजन की लुगदी आमाशय द्रव से भरपूर होकर, और ख़ूब अच्छी तरह से आमाशय द्वारा मथी और गूँथी जाकर आमाशय के निचले दाहने द्वार से पतली अँतड़ी में जाती है।

यह पतली अँतड़ी नली की भाँति की एक नहर है, जिसकी गेंडुरियाँ ऐसी कारीगरी के साथ एक दूसरी पर पड़ी रहती हैं कि बहुत ही थोड़ी जगह घेरे रहती हैं, यद्यपि लंबाई में यह अँतड़ी २० से ३० फ़ीट तक लंबी होती है। इस अँतड़ी की भीतरी दीवार मख़मल के भाँति के पदार्थ से मढ़ी रहती है, और लंबाई में बहुत दूर तक उसमें आड़ी-आड़ी सिकुड़नें पड़ी रहती हैं, जो सिकुड़नें आँख की पलकों की भाँति नीचे-ऊपर गति किया करती हैं, और अँतड़ी के अर्क़ में आगे-पीछे हिलोरें मारा करती हैं, जिससे भोजन की लुगदी की गति रुका करती है और स्राव तथा रस के खिचाव के लिये अधिक सतह मिला करती है। इसके मढ़न की मख़मली सूरत अनगिनत छोटे-छोटे उभड़े हुए रेशों के कारण होती है, जो बारीक क़ालीन की भाँति के होते हैं और उन्हें अँतड़ी के रेशे कहते हैं। इनका कार्य आगे चलकर वर्णन किया जायगा।

ज्यों ही भोजन की लुगदी इस पतली अँतड़ी में पहुँचती है त्यों ही इसमें एक विशेष अर्क़ मिलने लगता है, जिसे पित्त कहते हैं; यह अर्क़ उसमें ख़ूब भरपूर घुल जाता है। यह पित्त यकृत में से स्रवता है और एक सुदृढ़ थैली में, जिसे पित्ताशय कहते हैं, एकत्रित रहता है। क़रीब दो क्वार्ट के पित्त इस पतली अँतड़ी में लुगदी के साथ

मिलने में नित्य ख़र्च होती है। इस पित्त का कार्य, पैंक्रिया के अर्क़ के साथ मिलकर रोग़नदार पदार्थों को रस बनाने, और अँतड़ी में लुगदी की सड़न रोकने का है, और यह आमायश द्रव को भी, जो अब तक अपना काम पूरा कर चुकता है, अब निकम्मा बना देती है। पैंक्रिया का अर्क़ पैंक्रिया अर्थात् उस लंबे अवयव से निकलता है, जो आमाशय के पीछे रहता है। पैंक्रिया के अर्क़ का यह काम है कि भोजन के रोग़नदार पदार्थों को, पतली अँतड़ी में अन्यान्य पदार्थों के साथ में रस-रूप में करके शरीर में खिंच जाने के योग्य पोषण बना देता है। इस काम में पैंक्रिया का एक पाइंट अर्क़ रोज़ ख़र्च होता है।

पतली अँतड़ी की मख़मली मड़न पर के बाल की भाँति के लाखों रेशे (जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है) अपनी लगातर हिलोरों-वाली गति को क़ायम रखते हैं। यह गति उस गीली लुगदी के ऊपर काम करती है जो पतली अँतड़ी में होकर गमन करती है। वे रेशे लगातार गति किया करते हैं, और लुगदी में के रस को चाट-चाटकर और खींच-खींचकर शरीर में भेजते रहते हैं।

जिन क्रिया-कलापों से भोजन परिवर्तित होकर रुधिर बन जाता है और शरीर के सब अवयवों में भेजा जाता है वे नीचे लिखे जाते हैं—दाँतों से पीसना, मुँह के लार का मिलाना, घोंट जाना, आमाशय और पतली अँतड़ियों की पाचन-क्रियाएँ, रस का चूसना, शरीर में रस का घुमाना और रुधिर को शरीर का अपना लेना। एक बार हम जल्दी से इन क्रियाओं पर फिर विचार कर जायँ कि जिसमें ये भूल न जायँ।

भोजन को चबाना और पीसना दाँतों से होता है; ओंठ, जीभ और गलफड़े भी इस काम में सहायता करते हैं। इससे भोजन बहुत ही बारीक पिस जाता है जिससे वह लार में घुल जाने के योग्य बन जाता है।

लार में घुल जाना वह क्रिया है जिससे दाँतों से पीसा हुआ भोजन उस लार से मिलकर तन्मय हो जाता है जो लार मुँह के लार बहानेवाले अवयवों से बहा करता है। लार भोजन के लेईदार पदार्थों पर काम करता है, और पहले तो उसे डेक्स्ट्रीन (Dexut-rine) फिर ग्ल्यूकोस (Glucose) बना देता है, जिससे वह घुल जाता है। लार में एक पदार्थ होता है जिसे पीटेलीन (Pytaline) कहते हैं, यही पीटेलीन रासायनिक क्रिया करके अपने अनुकूल द्रव्यों में एक प्रकार का उबाल-सा ला देता है।

पाचन-क्रिया आमाशय और पतली अँतड़ियों में होती है, और खाई हुई चीज़ों को ऐसे रूप में परिवर्तित कर देना कि उसका रस शरीर में खींच लेने और शरीर रूप में हो जाने के योग्य हो जाय, यही पाचन-क्रिया है। ज्यों ही भोजन आमाशय में पहुँचता है त्यों ही पाचन-क्रिया प्रारंभ हो जाती है; आमाशय से आमाशय द्रव ख़ूब स्रवण करने लगता है, और वह खाई हुई चीज़ों के साथ मिलकर बहुत अच्छी तरह से मथा जाता है, तब वह खाए हुए मांस के परमाणुओं को पृथक्-पृथक् करता है, मांस के परमाणुओं से चर्बी को पृथक् कर देता है और एलब्यूमिनस (Albuminous) द्रव्यों को, जैसे दुर्बल मांस, गेहूँ का सत, अंडे की सफ़ेदी, इन पदार्थों को एलब्यूमाइनोस (Albuminose) बना देता है, और इस रूप में वे शरीर द्वारा चूसे और अपनाए जाने के योग्य हो जाते हैं। आमाशय में जो भोजन का रूप-परिवर्तन होता है वह आमाशय द्रव में के एक मसाला जिसे पेप्सिन (Pepsin) कहते हैं उसी के द्वारा होता है। इसके साथ-साथ आमाशय द्रव की और भी तेज़ाबी चीज़ें इसे सहायता पहुँचाती हैं। जब तक अमाशय द्वारा पाचन-क्रिया होती रहती है, तब तक भोजन में का द्रव भाग, जो पानी पिया गया है, और जो पाचन-क्रिया में खाए हुए भोजन से

अलग किया गया है, दोनों आमाशय के सोखनेवाले अंगों द्वारा सोख लिए जाते हैं और रुधिर में पहुँचा दिए जाते हैं, और भोजन में के दृढ़ द्रव्य आमाशय की गति के द्वारा और भी अधिक मथे जाते हैं, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं। आधे घंटे में भोजन के दृढ़ भाग भूरे और लसलसे पदार्थ के रूप में आमाशय से निकलने लगते हैं; इन्हें चाइम (Chyme) कहते हैं। यह पदार्थ भोजन में के शक्कर, नमक, लेई के परिवर्तित रूपांतरों, चर्बी, मांस के रेशे और एलब्यूमाइनोस (Albuminose) का सम्मिश्रण होता है।

यह चाइम (Chyme) आमाशय से निकलकर पतली अँतड़ी में प्रवेश करता है, जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, और पैनक्रिएटिक (Pancreatic) तथा अँतड़ी के अर्क़ और पित्त से मिलता है, और अँतड़ी द्वारा पाचन होने लगता है। भोजन का वह भाग जो अब तक नहीं गला था उसको ये सब अर्क़ गलाते हैं। पाचन-क्रिया अँतड़ी द्वारा चाइम (Chyme) को तीन पदार्थों में बदल डालती है, जिन्हें (१) पेप्टोन (Peptona) जो एलब्यूमाइनस (Albuminous) अंश के पाचन से बनता है; (२) चाइल (Chyle) जो कि रोग़न के शर्बत से बनता है; (३) ग्ल्यूकोस (Glucose) जो कि भोजन के लेईदार पदार्थों से बनता है, कहते हैं। ये सब पदार्थ अधिकतर रुधिर में पहुँचते हैं और उसके अंग बन जाते हैं, और शेष अपक्व वस्तुएँ पतली अँतड़ी से निकलकर एक किवाड़दार दरवाज़े की राह बड़ी अँतड़ी या मलाशय में पहुँचती हैं, जिसका वर्णन हम आगे करेंगे।

चूसना या खिंचाव उस क्रिया को कहते हैं जिससे ऊपर लिखे हुए रस, जो पाचन-क्रिया द्वारा बने हुए रहते हैं, नलियों और अन्य रसाकर्षी मार्गों द्वारा खींचे जाते हैं। पानी और अन्य अर्क़, जो आमाशय के पाचन द्वारा खाने की लुगदी में से

छूटते हैं, वे आमाशय के द्वार पर के ख़ून द्वारा खींच लिए जाते हैं और उसी द्वार की रग के द्वारा यकृत में पहुँचा दिए जाते हैं। पतली अँतड़ियों द्वारा जो पेपटोन (Peptone) और ग्ल्यूकोस (Glucose)-नामक रस खींचे जाते हैं, वे भी पतली अँतड़ी के बाल की भाँतिवाले रेशों द्वारा खींचे जाकर द्वारवाली रग में होते हुए यकृत में पहुँचते हैं। यकृत में होकर जहाँ इस पर यकृत द्वारा क्रियाएँ होती हैं, जिनका आगे चलकर यकृत के विषय में वर्णन होगा, ये रस हृदय में पहुँचते हैं। रोग़नी शर्बत चाइल (Chyle) जो पेपटोन (Peptone) और ग्ल्यूकोस (Glucose) के निकल जाने पर भोजन का शेष अंश रह जाता है वह भी लेक्टिएल (Lacteal)-नामक रग द्वारा छाती की नलिका में पहुँचाया जाता है, जहाँ से वह भी रुधिर में पहुँचता है। इसका वर्णन आगे रुधिर-संचार के विषय में किया जायगा। रुधिर-संचार के अध्याय में हम इस बात का विवरण देंगे कि रुधिर कैसे पचाए हुए अन्न से पोषण खींचकर शरीर के सब भागों में पहुँचाता है, और कैसे प्रत्येक रेज़ा, ज़र्रा, अवयव और भाग में वह सामग्री पहुँचाता है, जिससे इन रेज़े, ज़र्रे, अवयवों और भागों की रचना और मरम्मत होती है और शरीर बढ़ता, विकसता और पुष्ट होता है।

यकृत में से पित्त स्रवा करती है जो पतली अँतड़ियों में पहुँचती है, जिसका वर्णन ऊपर कर चुके हैं। यकृत एक और द्रव्य को संचय करता है जिसे ग्लाइकोजन (Glycogen) कहते हैं; यह उन पचे हुए रसों से बनता है जो द्वार के रगों द्वारा लाए हुए रहते हैं, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। यह ग्लाइकोजन (Glycogen) यकृत में संचय होता है और पश्चात् क्रमशः पाचन के बीच-बीच में ग्ल्यूकोस (Glucose) अर्थात् ऐसे द्रव्य में परिवर्तित हुआ करता है जो अंगूर की शक्कर की तरह का होता है। पैनक्रियास (Pan-

creas) में से पैनक्रिएटिक (Pancreatic) अर्क़ निकलते हैं, जो कि पतली अँतड़ियों में जाकर उन अँतड़ियों द्वारा पाचन-क्रिया को सहायता पहुँचाते हैं, और विशेष करके भोजन के रोग़नदार अंश पर काम करते हैं। गुर्दे कमर में स्थापित हैं; ये पतली अँतड़ियों के पीछे रहते हैं। ये संख्या में दो और आकार में सेम के बीज की शक्ल के होते हैं। ये रुधिर को, उसमें से यूरिया (Urea)-नामक विषैले पदार्थ और अन्य फ़ज़ूल चीज़ों को निकालकर, साफ़ करते हैं। गुर्दों से ख़ारिज किया हुआ अर्क़ दो नलिकाओं में होकर, जिन्हें यूरेटर्स (Ureters) कहते हैं, मूत्राशय में जाता है। यह मूत्राशय पेट के सबसे निचले भाग में होता है और मूत्र का बर्तन है, जो मूत्र कि रद्दी अर्क़ है, जिसमें शरीर की रद्दियात भरी रहती हैं।

इस विषय के इस भाग के वर्णन को छोड़ने के पहले हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित किया चाहते हैं कि जब भोजन दाँतों से अधूरा पीसा हुआ और लार से अधूरा मिश्रित हुआ आमाशय और पतली अँतड़ियों में पहुँचता है—जब कि दाँतों और लार बहानेवाले अवयवों को पूरा काम करने का अवसर नहीं दिया गया है—तब पाचन में बाधा और रुकावट पहुँचती है, और पचानेवाले अवयवों के ज़िम्मे उनकी शक्ति से बाहर काम हो जाता है, और जो काम उनसे होना चाहिए वह नहीं हो सकता। यह बात वैसी ही है जैसे एक आदमी से कहा जाय कि तुम अपने ज़िम्मे का भी पूरा काम करो और उस काम को भी करो जिसका तुम्हारे काम से पहले ही ख़तम हो जाना वाजिब था। यह रसोइंदार से यह कहना है कि तुम रसोईं भी बनाते जाओ और साथ-ही-साथ आटा भी पीसते जाओ और दाल भी दलते जाओ। अब आमाशय और पतली अँतड़ियों में जो रस खींचनेवाले अवयव हैं वे अवश्य किसी-न-किसी द्रव

पदार्थ को खींचेंगे; क्योंकि यही उनका कार्य ही ठहरा। यदि आप उन्हें खींचने के लिये सुंदर सुपक्व अन्नरस न देंगे तो वे आमाशय और पतली अँतड़ियों में के सड़ते-गलते हुए ही पदार्थों को खींचेंगे और उन्हें रुधिर में पहुँचा देंगे। रुधिर इन्हीं दरिद्र पदार्थों को सारे शरीर में, यहाँ तक कि मस्तिष्क में भी, पहुँचा देगा। जब मनुष्य इस प्रकार अपने शरीर में आप ही विष भर रहे हैं तब वे पित्त की अधिकता, सिर-दर्द आदि की शिकायतें करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

छठा अध्याय

जीवनद्रव

हम अपने पिछले अध्याय में कह आए हैं कि जिस अन्न को हम लोग खाते हैं वह क्रमशः ऐसे पदार्थों में कैसे परिवर्तित हो जाता है जो कि रुधिर द्वारा खींचे और अपनाए जा सकते हैं, और यह रुधिर शरीर के सब भागों में कैसे पोषण पहुँचाता है, जहाँ शारीरिक मनुष्य के सब अंग बनते, मरम्मत होते और नए किए जाते रहते हैं। इस अध्याय में हम संक्षेप से यह दिखलावेंगे कि रुधिर की ये क्रियाएँ कैसे होती हैं।

पचे भोजन में का पोषण करनेवाला भाग खिंचकर रुधिर हो जाता है। यही रुधिर धमनियों द्वारा शरीर के रेशे-रेशे और ज़र्रे-ज़र्रे तक पहुँचता है कि जिसमें उसकी रचना और मरम्मत करने की क्रियाएँ होती रहें। फिर यही रुधिर अन्य नलियों द्वारा लौट भी आता है और अपने साथ शरीर के टूटे-फूटे ज़र्रों और अन्य फ़ज़ूल और रद्दी चीज़ों को लेता आता है कि जिसमें रद्दी चीज़ें फेफड़ों और शरीर के दूसरे साफ़ करनेवाले अवयवों द्वारा शरीर से बाहर फेंक दी जावें। इसी रुधिर के प्रवाह को, जो हृदय से बाहर की ओर शरीर के प्रत्येक अंगों तक, और प्रत्येक अंगों से भीतर तक की ओर हुआ करता है, रुधिर-संचार कहते हैं।

इस आश्चर्यजनक शारीरिक कल को जो इंजिन चलाता है उसे हृदय कहते हैं। मैं स्वयं हृदय के वर्णन में आप लोगों का समय न लूँगा; किंतु हृदय कौन-सा काम करता है, उसका वर्णन अवश्य करूँगा।

अब उसी स्थान से प्रारंभ किया जाय जहाँ पिछले अध्याय में हम लोगों ने छोड़ दिया था, अर्थात् उस स्थान से जहाँ अन्न के रस को रुधिर ग्रहण कर और अपना कर हृदय में पहुँचता है, जो हृदय इसे शरीर को पुष्टि पहुँचाने के लिये शरीर में रवाना करता है।

रुधिर धमनियों में होकर प्रस्थान करता है। ये धमनियाँ सिकुड़ने और फैलनेवाली नहरें हुआ करती हैं। इनकी शाखाएँ प्रशाखाएँ भी होती हैं। रुधिर बड़ी धमनियों (नहरों) से पतली धमनियों में जाता है ; इनमें से और अधिक पतली धमनियों में जाता है ; इनमें से उन बहुत ही बारीक धमनियों में जाता है, जो बाल से भी अधिक पतली हुआ करती हैं। ये बाल से भी पतली धमनियाँ भी रुधिर-संचार की मार्ग हैं, इनका व्यास $\frac{3}{१०००}$ इंच होता है। ये बहुत ही पतले बाल के सदृश होती हैं। ये धमनियाँ रेशे-रेशे में प्रवेश करके जाल की भाँति फैल जाती हैं, जिससे रुधिर सब अंशों में पहुँच जाता है। इनकी दीवारें बहुत ही पतली हुआ करती हैं, और रुधिर का पोषणकारी भाग इन दीवारों से बहकर रेशे-रेशे द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। ये बाल-सी पतली धमनियाँ केवल रुधिर को एक-एक रेशे में बहाती ही नहीं, किंतु अपनी वापसी यात्रा में, जैसा कि अभी आगे वर्णन होगा, रुधिर को खींचती भी हैं और उसे शरीर के पोषण के लिये पहुँचाया करती हैं, जैसा कि पतली अँतड़ियों के रेशों से रुधिर को खींचकर ऊपर लाने का वर्णन पहले हो चुका है।

अच्छा अब फिर रुधिरापवाहक (रुधिर को हृदय से दूर पहुँचाने-वाली) धमनियों पर विचार कीजिए । ये गुणकारी, लाल शुद्ध रुधिर को, जो स्वास्थ्यदायक पोषण और जीवन से भरपूर रहता है, वहन करती हैं; बड़ी-बड़ी नहरों से छोटी नहरों में उसे वितरण करती हैं, फिर उससे भी छोटी नहरों में यहाँ तक कि अंत में अत्यंत

बारीक बाल सदृश धमनियों में, रुधिर को प्रवाहित करने लगती हैं जिससे कि प्रत्येक रेशा रुधिर में से पोषण ग्रहण करता है और उसे रचना के काम में लाता है; शरीर के छोटे-छोटे आश्चर्यजनक देहाणु इस कार्य को बड़ी ही सावधानी से करते हैं। (आगे चलकर इन देहाणुओं के कार्य के विषय में भी कुछ कहा जायगा) रुधिर अपना पोषणभंडार ख़र्च करके फिर हृदय की ओर अपनी वापसी यात्रा करता है और अपने साथ देह के रद्दियात, मृतक देहाणुओं और शरीर के अन्य निष्फल द्रव्यों को बटोरता आता है। यह बाल सदृश बारीक शिरा तंतुओं से प्रस्थान करता है परंतु रुधिरापवाहक धमनियों में होकर नहीं लौटता, किंतु क़ैंची की भाँति के प्रबंध से यह रुधिरोपवाहक (शरीर के सब अंगों से हृदय में रुधिर ले जानेवाली) पतली शिराओं में घूम पड़ता है, और उनमें से बड़ी रुधिरोपवाहक शिराओं में होता हुआ हृदय में पहुँचता है। अब फिर दुबारा रुधिरापवाहक धमनियों द्वारा यात्रा करके फिर शरीर में फैलने के पहले इसके साथ कुछ क्रिया होती है। यह फेफड़ा के स्मशान में पहुँचता है जिससे इसमें की रद्दियात और मैल भस्म करके फेंक दी जायँ। किसी दूसरे अध्याय में हम फेफड़ों की इस क्रिया का वर्णन करेंगे।

और आगे बढ़ने के पेश्तर हम यह बात बतलाए देते हैं कि एक प्रकार का और भी द्रव पदार्थ होता है जो शरीर में प्रवाहित होता रहता है। इसे पंछा (Lymph) कहते हैं और यह बनावट में रुधिर के सदृश होता है। इसमें कुछ तो रुधिर के मसाले रहते हैं जो रुधिरवाहक नलियों की बारीक दीवारों से बहा करते हैं, और कुछ देह के रद्दी पदार्थ होते हैं, जिन्हें साफ़ करने के बाद पंछा फिर रुधिर के हवाले करता है और फिर वे कार्य में लाए जाने लगते हैं। यह पंछा बहुत ही पतली नहरों में होकर प्रवाहित होता रहता है; ये पतली नहरें इतनी बारीक होती हैं कि जब तक इनमें यंत्र द्वारा

पारा न भरा जाय, ये आँखों से दिखलाई तक नहीं देतीं। ये नहरें अनेक रुधिरोपवाहक शिराओं में मिलकर उनमें अपना पंछा छोड़ देती हैं, और तब पंछा हृदय की ओर लौटते हुए गंदे रुधिर में मिल जाता है। खाद्यरस (Chyle) भी पतली अँतड़ियों से निकलकर (पिछला पाठ देखो) शरीर के निचले भागों से आते हुए पंछा में मिल जाता है और इस तरह से रुधिर में मिल जाता है; इस रस को छोड़कर अन्य सब रस, जो पचे हुए भोजन से निकाले गए होते हैं, द्वार शिरा और यकृत द्वारा यात्रा करते हैं; इसलिये यद्यपि ये भिन्न-भिन्न मार्गों से यात्रा करते हैं, परंतु ये सब प्रवाह करते हुए रुधिर में मिल जाते हैं।

इस प्रकार आप देखेंगे कि रुधिर शरीर का रचनेवाला है, जो सीधे-सीधे या रूपांतरित होकर देह के सब भागों को पोषण और जीवन देता है। यदि रुधिर गुणहीन हुआ अथवा इसका प्रवाह निर्बल हुआ तो देह के किसी-न-किसी भाग का पोषण अवश्य बाधा में पड़ जायगा और उसका नतीजा रुग्णावस्था होगी। मनुष्य की पूरी तौल का दसवाँ हिस्सा केवल रुधिर होता है। इसका चतुर्थांश के क़रीब हृदय, फेफड़ों, बड़ी धमनियों और शिराओं में रहता है; एक चौथाई मांस-पेशियों में रहता है; शेष भाग देह के शेष भागों और अवयवों में वितरित रहता है। कुल रुधिर का पाँचवाँ भाग मस्तिष्क के प्रयोग में आता है।

रुधिर के विषय में विचार करने में सर्वदा इस बात को स्मरण रखिए कि रुधिर वैसा ही होगा जैसा खाना और जिस तरह से खाना खाकर आप उसे बनावेंगे। आप उत्तम-से-उत्तम रुधिर काफ़ी मिक़दार में बना सकते हैं यदि आप भोजन को विवेकपूर्वक पसंद करेंगे और यदि आप वैसा ही भोजन भी करेंगे, जैसा कि आपके लिये प्रकृति का उद्देश था। और इसके विपक्ष में आप बहुत ख़राब

रुधिर और मिक़दार में भी थोड़ा, बना पावेंगे यदि आप अस्वाभाविक स्वादेच्छा को पूरी करेंगे अथवा अच्छे या बुरे किसी भोजन को अनुचित रीति से खाएँगे जिसे "खाना" कहना ही अन्याय है। रुधिर जीवन है—आप ही उस रुधिर को बनाते हैं—यही इन सब बातों का सारांश है।

अब आइए फेफड़ों के स्मशान पर विचार कीजिए और देखिए कि रुधिरोपवाहक शिराओं के उस नीले, गंदे रुधिर के साथ, जो शरीर के सब भागों से गंदगी और रद्दियात से लदा हुआ वापस आया है, कौन-कौन-सी क्रियाएँ होती हैं। पहले स्मशान ही को देखिए।

सातवाँ अध्याय

देह में का श्मशान

श्वास लेने के अवयव फेफड़े हैं और वे नलियाँ भी जो नाक से फेफड़ों तक गई हुई हैं। फेफड़े संख्या में दो होते हैं और छाती की कोठरी में बीचोबीच की रेखा से एक दाहनी ओर और दूसरा बाईं ओर होता है; उन दोनों फेफड़ों के बीच में हृदय, रुधिर की बड़ी-बड़ी नलियाँ और हवा जाने की बड़ी-बड़ी नलियाँ रहती हैं। प्रत्येक फेफड़ा अपनी जड़ को छोड़कर शेष ओर छुटा और स्वतंत्र रहता है; इसकी जड़ में हवा की नलियाँ, रुधिरा-पवाहक और रुधिरोपवाहक नलियाँ होती हैं जो फेफड़ों को घोंघा और हृदय से जोड़ती हैं। फेफड़े स्पंज के सदृश और अनेक छिद्र-वाले होते हैं; इनके रेशे बहुत ही लचीले अर्थात् सिकुड़ने और फैलनेवाले होते हैं। ये बहुत ही बारीक परंतु मज़बूत थैले में घिरे रहते हैं, जिस थैले की एक दीवार तो फेफड़े में सटी रहती है और दूसरी छाती की भीतरी दीवार में सटी होती है, और इससे एक प्रकार का द्रव पदार्थ स्रवा करता है जिससे श्वास लेने में थैले की दीवारें एक दूसरे पर आसानी से फिसला करती हैं।

श्वास लेने के मार्गों में नासिका के भीतरी मार्ग, फेरिंक्स, लेरिंक्स, घोंघा और घोंघा की निचली शाखाओं की नलियाँ हैं। जब हम श्वास लेते हैं तब हम नासिका द्वारा हवा भीतर खींचते हैं, जहाँ वह आर्द्र झिल्ली के संयोग से गरम हो जाती है; क्योंकि यह आर्द्र झिल्ली रुधिर से भरपूर रहती है; हवा फेरिंक्स और लेरिंक्स में होती हुई घोंघे में पहुँचती है; यह घोंघा नीचे कई

नलियों में विभक्त हो जाता है, जिन्हें घोंघा की शाखा-नलिकाएँ कहते हैं ; ये नलिकाएँ भी और महीन-महीन अनगिनत नलिकाओं में विभक्त हो जाती हैं, जो फेफड़ों की छोटी-छोटी उन हवा की कोठरियों में पहुँचती हैं जो फेफड़ों में करोड़ों होती हैं। एक लेखक ने लिखा है कि यदि फेफड़ों की हवावाली कोठरियाँ एक समतल सतह पर फैला दी जावें तो ये चौदह हज़ार वर्ग फ़ीट जगह घेरेंगी।

हवा फेफड़ों में उस मांसपेशी की चद्दर की क्रिया से खींची जाती है, जो चौड़ी, मज़बूत, चिपटी और चद्दर के सदृश मांसपेशी होती है और जो छाती की कोठरी को पेट से पृथक् करती है। इसकी क्रिया वैसे ही आप से आप हुआ करती है जैसे हृदय की होती है, यद्यपि इसे अपनी दृढ़ इच्छा के बल से कुछ-कुछ अपने आधीन कर सकते हैं। जब यह चद्दर फैलती है तब यह छाती की कोठरी और फेफड़ों के विस्तार को बढ़ा देती है, और इस प्रकार जो रिक्त स्थान बनता है उसके भरने के लिये हवा भीतर प्रवेश करती है। जब यह चद्दर सिकुड़ती है तो छाती और फेफड़े भी सिकुड़ते हैं और हवा फेफड़ों से बाहर निकल आती है।

अब फेफड़ों में हवा के साथ कौन-सी क्रिया होती है इसके विचार करने के पहले आइए रुधिर-संचार के विषय में देख जायँ। रुधिर, जैसा कि आप जानते हैं, हृदय द्वारा संचालित होता है और रुधिरापवाहक धमनियों और बारीक धमनियों में होता हुआ शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है और वहाँ जीवट, पुष्टि और शक्ति देता है। फिर महीन रुधिरोपवाहक शिराओं और मोटी शिराओं में होता हुआ दूसरे मार्ग से हृदय में लौट आता है, जहाँ से कि वह फेफड़ों में खींचा जाता है।

रुधिर जब हृदय से निकलकर रुधिरापवाहक धमनियों द्वारा प्रस्थान करता है तब वह चमकीला, लाल, गुणविशिष्ट और जीवन-

दायक पदार्थों और शक्तियों से भरा पूरा रहता है। परंतु जब यह रुधिरोप-वाहक शिराओं द्वारा वापस आता है तब वह गुणहीन, नीला, गँदला और देह के रद्दी पदार्थों से भरा आता है। वह जाने के समय तो हिमालय पहाड़ से निकली हुई पानी की स्वच्छ धारा के सदृश रहता है परंतु लौटने के समय म्युनिसिपैलिटी की मोरियों के गंदे पानी-सा हो जाता है। यह गंदी धार हृदय की दाहनी कोठरी (Auricle) में जाती है। जब यह कोठरी भर जाती है तब यह सिकुड़ती है और उसमें का रुधिर दाहनी ही ओर एक छिद्र द्वारा दूसरी कोठरी (Ventricle) में जाता है, और वहाँ से फेफड़ों में पहुँचता है, जहाँ वह लाखों बाल के सदृश महीन रुधिरवाहिनी नलियों द्वारा फेफड़े की हवावाली अनगिनत कोठरियों में पहुँचता है, जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है। अब यहाँ पर फेफड़ों की क्रिया पर ध्यान दीजिए।

रुधिर की गंदी धार फेफड़ों की करोड़ों छोटी-छोटी हवावाली कोठरियों में वितरित हो जाती है। अब श्वास द्वारा हवा भीतर खींची जाती है और हवा में का आक्सीजन, फेफड़ों की पतली रुधिरवाहिनी नलियों की बारीक दीवारों में होकर, जो दीवारें रुधिर रोकने के लिये तो काफ़ी मोटी होती हैं परंतु आक्सीजन के प्रवेश के लिये स्थान दे देती हैं, गंदे रुधिर के संपर्क में आता है। जब आक्सीजन रुधिर के संपर्क में आता है तो एक प्रकार की जलन होने लगती है, और रुधिर आक्सीजन को ले लेता है और उस कार्बोनिक एसिड गैस को जो उस रद्दियात और विषैले पदार्थों से बनी होती है, जिन्हें रुधिर शरीर के सब अंगों से लाया था। रुधिर जब इस प्रकार स्वच्छ और आक्सीजन मिश्रित हो जाता है तो फिर गुणविशिष्ट, लाल, चमकीला और जीवनदायिनी शक्तियों और पदार्थों से भरपूर होकर हृदय में पहुँचाया जाता है। पहले यह

हृदय की बाईं कोठरी (Auricle) में जाता है, वहाँ से 'दूसरी बाईं कोठरी (Ventricle) में भेजा जाता है, जहाँ से प्रेरित होकर वह फिर रुधिरापवाहिनी धमनियों द्वारा जीवनदान देने के लिये देह के प्रत्येक भागों में भेजा जाता है। यह अनुमान किया गया है कि २४ घंटे के दिन में ३५००० पाइंट रुधिर फेफड़ों की बाल-सी पतली नलियों में होकर गुज़रता है और सब रुधिराणु एक ही क़तार में होकर गुज़रते हैं जिससे अपने दोनों बग़लों की ओर के आक्सी-जन से संपर्क करते जाते हैं। जब कोई मनुष्य इन ऊपर लिखे हुए क्रिया-कलापों की बारीकियों पर सविस्तर विचार करता है तो उसे प्रकृति की अनंत सावधानी और चतुराई पर आश्चर्य और प्रशंसा में मग्न हो जाना पड़ता है।

यह बात देखने में आवेगी कि यदि पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा फेफड़ों में न जायगी तो रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा लौटे हुए गंदे रुधिर की सफ़ाई न हो सकेगी, और परिणाम यह होगा कि केवल शरीर ही पुष्टि से वंचित न रह जायगा, किंतु, वे रद्दियात जिनका नष्ट हो जाना आवश्यक था, अब फिर रुधिर-संचार में जाती हैं और देह में विष फैलाती हैं, जिससे मृत्यु होती है। गंदी हवा भी ऐसी ही बुराई उत्पन्न करती है पर किंचित् थोड़ी मात्रा में। यह बात भी देखने में आवेगी कि यदि कोई मनुष्य पूरे परिमाण में स्वच्छ हवा को भीतर न खींचेगा तो रुधिर का कार्य मुनासिब तौर पर न हो सकेगा, और परिणाम यह होगा कि शरीर बहुत कम पुष्ट होगा और रोग पैदा हो जायगा अथवा अस्वास्थ्य की दशा अनुभव होने लगेगी। जो मनुष्य उचित श्वास नहीं लेता उसका रुधिर अवश्य नीलापन लिए हुए मैले रंग का होता है और उसमें स्वच्छ रुधिर की गुण-विशिष्ट लालिमा नहीं पाई जाती। यह प्रायः शरीर को बदरंग कर देने से अपने को प्रकट करता है। उचित श्वास लेने का फल अच्छा

रुधिर-संचार है और अच्छे रुधिर-संचार का चिह्न शरीर का अच्छा रंग होना है।

थोड़े ही ध्यान देने से उचित साँस लेने की प्रधानता समझ में आ जावेगी। यदि फेफड़ों की शुद्ध करनेवाली क्रिया से रुधिर साफ़ न किया जायगा तो वह अस्वाभाविक दशा में धमनियों में जायगा; न तो यह अच्छी तरह से साफ़ ही होगा और न इसकी वे ही गंदगियाँ दूर की जा सकेंगी जिनको इसने वापसी यात्रा में शरीर से लिया था। ये गंदगियाँ जब फिर देह में जावेंगी तो किसी-न-किसी बीमारी की सूरत में प्रकट होंगी; या तो किसी रुधिर-रोग के रूप में अथवा नहीं तो ऐसे रोग के रूप में प्रकट होंगी जो किसी अल्पपुष्ट इंद्रिय, अवयव या रेशे की निर्बल क्रिया से हुआ करते हैं।

रुधिर जब फेफड़ों की काफ़ी हवा से संपर्क रख लेता है तब उसकी केवल गंदगियाँ ही नहीं दूर हो जातीं और विषैली कारबोनिक एसिड गैस ही नहीं पृथक् हो जाती, किंतु वह हवा में से कुछ आक्सीजन भी ग्रहण करके अपने में मिला लेता है और शरीर के उन सब अंगों में पहुँचा देता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है जिससे कि प्रकृति अपना पूरा काम उचित रीति से कर सके। जब आक्सीजन रुधिर के संपर्क में आता है तब वह रुधिर के उस अंश से मिल जाता है जिसे हीमोग्लाबिन (Haemoglobin) कहते हैं और वह प्रत्येक अणु देह, रेशा, मांसपेशी और अवयव के पास पहुँचाया जाता है, जिन्हें वह बलिष्ठ और शक्तिमान् बनाता है और निकम्मे देहाणुओं और रेशों के स्थान पर नए सामान जुटा देता है, जिन्हें प्रकृति अपने काम में ले आती है। रुधिरापवाहिनी धमनी के शुद्ध रुधिर में २५ प्रति सैकड़ा स्वतंत्र आक्सीजन रहता है।

आक्सीजन के द्वारा केवल प्रत्येक अंग जीवटदार ही नहीं बनाया जाता, किंतु पाचन-क्रिया भी वस्तुतः भोजन के समुचित रीति से

आक्सीजन मिश्रित होने पर अवलंबित है, और यह मिश्रण तभी होता है जब रुधिर में का आक्सीजन भोजन के संपर्क में आता है और एक प्रकार की जलन उत्पन्न करता है, जिसे जठराग्नि कहते हैं। इसलिये यह आवश्यक हुआ कि फेफड़ों द्वारा आक्सीजन की पूरी मात्रा ग्रहण की जावे। यही कारण है कि जहाँ फेफड़े निर्बल होते हैं वहाँ अपच का रोग भी साथ-ही-साथ अवश्य रहता है। इस कथन की पूरी महिमा समझने के लिये आवश्यक है कि यह बात स्मरण रहे कि सारा शरीर पचे और अपनाए हुए भोजन से पोषण पाता है, और अधूरे पाचन और अधूरे रस-ग्रहण का अर्थ अधूरा पुष्ट शरीर है। फेफड़ों को भी पोषण के उसी द्वार पर अवलंबित रहना पड़ता है, और यदि अधूरी साँस के कारण रस-ग्रहण भी अधूरा हुआ, जैसा कि सर्वदा हुआ करता है, और फेफड़े कमज़ोर हो गए, तो वे अपना कार्य करने के लिये और भी अधिक अयोग्य हो जाते हैं तथा शरीर और भी अधिक निर्बल हो जाता है। भोजन और पान के प्रत्येक कण को आक्सीजन से मिश्रित हो जाना चाहिए और तभी उनसे उचित पोषण मिल सकेगा और तभी देह की रद्दियात ऐसी अवस्था में आ जायँगी कि देह के बाहर निकाल फेंकी जावें। काफ़ी आक्सीजन के अभाव का अर्थ पोषण का अभाव, शुद्धता का अभाव और स्वास्थ्य का अभाव है। सच है "श्वास ही जीवन है।"

रद्दियात के परिवर्तन अर्थात् सफ़ाई से एक प्रकार की जलन उत्पन्न होती है, जो गरमी पैदा करती है और शरीर के ताप को समभाव में रखती है। अच्छी श्वास लेनेवाले ज़ुकाम में नहीं फँसते, और उनके शरीर में अच्छा गरम रुधिर पुष्कल रहता है जिसकी वजह से वे बाहरी मौसिम के परिवर्तन को पूरा-पूरा सहन कर लेते हैं।

ऊपर लिखे हुए क्रिया-कलापों के अतिरिक्त श्वास-क्रिया से भीतरी

अवयवों और मांसपेशियों को कसरत करनी पड़ जाती है, जिस पर पश्चिमी विद्वानों का ध्यान ही नहीं गया, परंतु योगी लोग उसे ख़ूब समझते हैं।

अधूरी या छिछली साँस में फेफड़ों की कोठरियों का एक अंशमात्र काम में लाया जाता है, और फेफड़ों की अधिकांश शक्ति नष्ट हो जाती है, और आक्सीजन की जितनी ही कमी हुआ करती है, शरीर की उतनी ही हानि होती है। नीच जंतु अपनी स्वाभाविक दशा में सही साँस लेते हैं, और आदि काल के मनुष्य भी वैसा ही करते थे। सभ्य मनुष्यों ने जीवन के अस्वाभाविक तरीक़े को जो ग्रहण किया—सभ्यता के पीछे-पीछे शैतान बुलाया—तो हमारी श्वास लेने की स्वाभाविक रीति हमसे छूट गई जिससे मानव जाति की असीम हानि हो गई। मनुष्य की शारीरिक मुक्ति तो तभी होगी जब यह फिर प्रकृति के मार्ग पर लौटेगा।

आठवाँ अध्याय

पोषण

मानव शरीर में लगातार परिवर्तन हो रहा है। हड्डियों के परमाणु, रेशे, मांस, मांसपेशी, रोग़न और द्रव द्रव्य लगातार रद्दी होते जाते हैं, और शरीर से निकाले जाया करते हैं, और शरीर की अद्भुत रसायनशाला में नए-नए परमाणु लगातार रचे जाते हैं और तब रद्दी और फेंके हुए परमाणुओं की जगह पूरी करने के लिये भेजे जाते हैं।

आइए ज़रा मनुष्य-शरीर की कारीगरी पर पौधों की समता में ग़ौर कर लें—और सचमुच यह शरीर वस्तुतः पौधों के जीवन से बहुत कुछ मिलता है। पौधों को बीज से अंकुर होने में, और फिर अंकुर से पौधा, उसके फूल, बीज और फल होने में किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होती है? उत्तर बहुत सरल है—स्वच्छ वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और पोषणकारी भूमि—ये ही वस्तुएँ सब-की-सब उसके लिये आवश्यक हैं कि वह स्वस्थ यौवन को प्राप्त हो। मनुष्य के पार्थिव शरीर के लिये भी ठीक इन्हीं वस्तुओं की ज़रूरत होती है, जिससे वह स्वस्थ, सुदृढ़, बलवान् और ठीक रहे। आवश्यक वस्तुओं को ख़ूब याद रखिए—स्वच्छ वायु, सूर्य का प्रकाश, पानी और भोजन। हम वायु, सूर्य के प्रकाश और जल के विषय में अन्य अध्यायों में विचार करेंगे, और यहाँ पहले पोषण-कारी भोजन के विषय में विचार किया जायगा।

ठीक उसी भाँति जैसे पौधा धीरे-धीरे लगातार बढ़ता है, वैसे ही इस रद्दी के फेंकने और उसके स्थान पर नए द्रव्यों को स्थापित करने का महत् कार्य भी लगातार दिन-रात हुआ करता है। हम लोग इस

महत् कार्य की ख़बर नहीं रखते, क्योंकि यह मानव प्रकृति के अचेतन भाग से संबंध रखता है, यह मनुष्य के प्रवृत्ति मानस के कार्य का एक अंग है।

संपूर्ण शरीर और उसके कुल भाग स्वास्थ्य, बल और जीवट के लिये द्रव्यों के इसी लगातार नूतनीकरण पर भरोसा करते हैं। यदि यह नूतनीकरण बंद हो जाय तो उसका परिणाम शरीर की गलन और मृत्यु होगा। रद्दी और परित्यक्त पदार्थों के स्थान में नए पदार्थों का स्थापित करना देह की अनिवार्य आवश्यकता है, और इसलिये स्वस्थ मनुष्य का ख़्याल करते समय यह पहली ही बात विचारने की है।

हठयोग शास्त्र में भोजन के इस विषय का मूलमंत्र पोषण है। हमने इस शब्द को बड़े अक्षरों में छाप दिया है कि यह आपके चित्त में अंकित हो जाय। हम चाहते हैं कि हमारे शिष्यों को भोजन के ख़्याल के साथ-साथ पोषण का ख़्याल बना रहे।

योगी के लिये भोजन का अर्थ ऐसी चीज़ नहीं है जो रसना के स्वाद को उत्तेजित करे, किंतु प्रथम पोषण, द्वितीय पोषण और तृतीय पोषण ही है। आदि से अंत तक सर्वदा पोषण ही है।

बहुत-से लोग आदर्श योगी को दुबला, पतला, अधसुखा और निर्मांस जंतु समझते हैं; जो भोजन पर इतना कम ध्यान देता है कि कई दिन तक बिना खाए रह जाता है—जो समझता है कि "आध्यात्मिक प्रकृति" के लिये भोजन अत्यंत "आधिभौतिक" पदार्थ है। इससे बढ़कर सचाई से दूर दूसरी बात नहीं हो सकती। योगी लोग, विशेष करके वे जो हठयोग के पक्के साधक हैं, पोषण को शरीर के लिये अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं और अपने शरीर को समुचित पुष्ट रखने में सर्वदा सावधान रहते हैं और यह देखा करते हैं कि शरीर में नए द्रव्यों की रचना बेकार और परित्यक्त द्रव्यों की समता में होती है कि नहीं।

यह बात बहुत सच है कि योगी भद्दा खक्कड़ नहीं होता और न उसकी वासना लज़ीज़ और लतीफ़ भोजन की ओर जाती है। इसके विपरीत वह ऐसी मूर्खताओं पर मन-ही-मन हँसता है और अपने सादे पोषणकारी भोजन ही में जी लगाता है, क्योंकि वह जानता है कि इसी सादे भोजन में उसे वह पोषण मिलेगा जो उन हानिकारक पदार्थों से निर्लिप्त रहेगा, जो पदार्थ उसके उस भोगी भाई के रंगबिरंगे पकवानों में पाए जाते हैं, जो कि भोजन के असली अर्थ से अनभिज्ञ है।

हठयोग की एक कहावत है कि "खाया हुआ पदार्थ नहीं, किंतु पचाकर अपनाया हुआ पदार्थ पोषण करता है।" इस पुरानी कहावत में दुनिया-भर की सचाई भरी है, और इसमें वह बात है जिसे स्वास्थ्य विषयक लेखकों ने पोथियों की पोथियों में लिखा है।

हम आगे चलकर आपको योगियों का वह तरीक़ा बतलावेंगे जिस तरीक़े से वे थोड़े-से-थोड़े भोजन से अधिक-से-अधिक पोषण प्राप्त किया करते हैं। योगियों का तरीक़ा मध्य मार्ग है, मार्ग के परस्पर विरोधी दोनों किनारों से दो भिन्न प्रकार के विचारवाले मनुष्य चलते हैं, अर्थात् एक तो ख़ूब कसकर खानेवाले और दूसरे निराहार व्रत के करनेवाले ; इन दोनों में से प्रत्येक अपने विचार की महिमा गाता है और अपने विपक्षी के विचारों की निंदा करता है। इन लोगों के विवाद पर जब योगी अपने सरल स्वभाव से हँस देता है तो वह क्षमा के योग्य है; क्योंकि वह देखता है कि एक तो पूरे पोषण के लिये कसकर भोजन करना आवश्यक समझता है, और दूसरा इसका विपक्षी कसकर भोजन करने में मूर्खता देखता है और उसको दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता सिवाय इसके कि बहुत दिन तक व्रत कर-करके अधभूखे रहें, जिससे बहुत-से ऐसे व्रतियों को निर्बलता ने आ घेरा है और किसी-किसी को तो अपने जीवट को खोकर मृत्यु के मुख में जाना पड़ गया है।

योगी के लिये उपवासजनित अल्प पोषण और कसकर खाने से अपक्क रस इन दोनों में से किसी प्रकार का भय नहीं रहता—इन प्रश्नों को तो सैकड़ों वर्ष हुए कि वृद्ध योगी गुरुओं ने कभी हल कर दिया और यह मामला इतना पुराना हो गया कि उन वृद्ध योगी गुरुओं का नाम तक भी उनके अनुयायियों को स्मरण नहीं है।

अब कृपा करके सर्वदा के लिये इस एक बात को गाँठ देकर याद कर लीजिए कि हठयोग भूखे रहने के तरीक़े का पक्षपाती नहीं है; परंतु इसके विपरीत वह जानता और सिखाता है कि मनुष्य का शरीर कभी भी बिना काफ़ी भोजन खाए और खाकर पचाए, पुष्ट नहीं रह सकता। बहुत-से नाज़ुक, निर्बल और सशंक मनुष्य इसी कारण कम जीवट के और रुग्णावस्था में होते हैं कि वे काफ़ी पोषण नहीं प्राप्त करते।

इस बात को भी याद रखिए कि हठयोग इस विचार को भी हास्यजनक जानकर अस्वीकार करता है कि ख़ूब कस करके भोजन करने से पोषण प्राप्त होता है; और स्वाद-लोलुपों की दशा पर आश्चर्य और रहम करता है, और स्वाद-लोलुपता में केवल नीच पशुता का आभास देखता है जो पूर्ण विकसित मनुष्यत्व से बहुत ही विपरीत है।

योगी की दृष्टि में समझदार मनुष्य जीने के लिये खाता है—न कि खाने के लिये जीता है।

योगी बहुत खानेवाला नहीं होता, किंतु बड़ा ही स्वादु-भोजी होता है, क्योंकि सादा-से-साद खाना खाते हुए भी, उसने अपनी आस्वादन शक्ति को इतना जगा और उत्साहित कर लिया है कि सच्ची भूख में इन्हीं सादे खानों में स्वाद मिलता है जो कि उन लोगों को कभी भी नसीब नहीं होता जो पाकशाला के बहु-मूल्य तरीक़ों द्वारा स्वाद की तलाश में रहा करते हैं। योगी का

प्रधान उद्देश है कि पूर्ण पोषण के निमित्त भोजन करना चाहिए तो भी वह अपने भोजन से ऐसा स्वाद और आनंद प्राप्त करता है जो उसके सारे भोजन से घृणा करनेवाले भोगी भाई को मालूम ही नहीं हो सकता।

अगले अध्याय में हम भूख और भोजनातुरता का विषय उठावेंगे—ये दोनों भौतिक शरीर के अत्यंत भिन्न-भिन्न गुण हैं, यद्यपि बहुत-से मनुष्यों को दोनों एक ही बात प्रतीत होती है।

नवाँ अध्याय

भूख और भोजनातुरता

जैसा कि इसके पूर्ववाले अध्याय के अंत में हमने कहा है, भूख और भोजनातुरता दोनों परस्पर बिलकुल एक दूसरे से भिन्न गुण शरीर के हैं। भूख भोजन की स्वाभाविक माँग है—भोजनातुरता अस्वाभाविक लोलुपता है। भूख स्वस्थ बच्चे के कपोलों पर गुलाबी रंग की लालिमा की भाँति है—भोजनातुरता शौक़ीन औरत के रँगे हुए लाल चेहर की तरह है। तथापि बहुत-से मनुष्य ऐसा समझते हैं कि दोनों का अर्थ एक ही है। अब देखना चाहिए कि दोनों में अंतर क्या है।

एक साधारण मनुष्य को, जो युवावस्था को पहुँच गया है, भूख और भोजनातुरता के भिन्न-भिन्न अनुभवों और लक्षणों को समझा देना बड़ी कठिन बात है; क्योंकि उस उमर के अधिकतर मनुष्य अपनी स्वाभाविक भूख की प्रवृत्ति को इस क़दर भोजनातुरता से परिवर्तित कर देते हैं कि उन्होंने बहुत बरसों से असली भूख के लक्षणों का अनुभव ही नहीं किया है और भूल गए हैं कि भूख लगने पर कैसा मालूम देता है। और किसी अनुभव का समझना बड़ी ही मुशकिल बात है जब तक श्रोता के मन में उस अनुभव का अथवा वैसे ही अन्य अनुभव का स्मरण न दिला दिया जाय, जिसको कि उसने कभी पिछले समय में भोग लिया है। हम किसी आवाज़ का वर्णन साधारण श्रवणवाले मनुष्य से ऐसी आवाज़ों की उपमा देकर कर सकते हैं, जिनको उसने कभी सुना है—परंतु जो मनुष्य जन्म ही से बहरा है उसको आवाज़ का अर्थ समझाना

कितना कठिन है, आप ही कल्पना कर लीजिए ; अथवा जन्मांध मनुष्य को रंग का अर्थ बतलाना वा ऐसे मनुष्य को जो जन्म से घ्राणशक्ति से हीन है उसे सुगंध को समझाना कितनी कठिन बात है।

ऐसे मनुष्य को, जो भोजनातुरता की ग़ुलामी से बाहर है, भूख और भोजनातुरता के भिन्न-भिन्न लक्षण प्रतीत होते हैं और दोनों का भेद आसानी से समझ में आ जाता है, और ऐसे मनुष्य का मन दोनों शब्दों के भावों को ठीक-ठीक ग्रहण कर लेता है। परंतु साधारण सभ्य मनुष्य को भूख ही भोजनातुरता का मूल, और भोजनातुरता भूख का परिणाम प्रतीत होती है। दोनों शब्दों का दुष्प्रयोग किया जाता है। हमको साधारण और सुपरिचित उदाहरणों द्वारा इस बात को समझाना पड़ेगा।

पहले प्यास को लीजिए। सब लोग अच्छी स्वाभाविक प्यास के अनुभव को जानते हैं। जिसमें ठंडे पानी की भीतरी माँग होती है। इसका अनुभव मुख और गले में होता है और इसकी तृप्ति उस पदार्थ से होती है जो प्रकृति का उद्देश है—ठंडा पानी। अब यही स्वाभाविक प्यास तो स्वाभाविक भूख से तुलना रखती है।

यह स्वाभाविक प्यास उस पानातुरता से कितनी भिन्न होती है जिस आतुरता के वश में होकर मनुष्य मीठे, ज़ायक़ेदार सोडावाटर, मलाई का बर्फ़ और सोडा, जिंजर, मदिरा और भाँति-भाँति के शर्बतों को तलाश करता है। और इसी प्रकार स्वाभाविक प्यास उस आतुरता से कितनी भिन्न होती है जिसे शराबी मनुष्य बियर, ब्रांडी आदि के लिये अनुभव करता है। अब कुछ समझ में आने लगा कि हमारा क्या मतलब है?

हम लोगों को ऐसा कहते हुए सुनते हैं कि एक ग्लास सोडावाटर की कैसी प्यास लगी है; दूसरे कहते हैं कि थोड़ी शराब की प्यास लगी है। अब यदि ये मनुष्य सचमुच प्यासे होते, या दूसरे

शब्दों में, यदि सचमुच प्रकृति की माँग द्रव पदार्थ की होती, तो पहले ये लोग स्वच्छ ठंडा पानी ही तलाश करते और यही पानी उनकी प्यास को पूरा-पूरा बुझा देता। परंतु नहीं, पानी सोडावाटर अथवा व्हिस्की की प्यास को कभी नहीं बुझा सकता। क्यों? क्योंकि यह पानातुरता की चाहना है जो स्वाभाविक प्यास नहीं है; परंतु इसके विपरीत अस्वाभाविक पानातुरता है—व्यतिक्रांत चाहना है। आतुरता पैदा कर ली गई है—आदत डाल दी गई है—और वह अपनी प्रभुता दिखला रही है। आप ख़्याल करेंगे कि इन आतुरताओं के मुरीद भी कभी-कभी सच्ची प्यास का अनुभव करते हैं और ऐसे समय में केवल पानी ही माँगते हैं और आतुरता के भोग का ख़्याल भी नहीं करते। ज़रा ख़्याल तो कीजिए कि यही बात क्या आपके साथ भी नहीं है? यह स्वादपान के निवारण के लिये उपदेशकीय व्याख्यान नहीं है और न तो मद्यप्रचार-निवारण का उपदेश ही है; परंतु सच्ची प्यास और हासिल की हुई आदत अर्थात् आतुरता का भेद दिखलाने के लिये उदाहरण है। आतुरता खाने और पीने की हासिल की हुई आदत है और इससे सच्ची भूख और प्यास से कुछ भी संबंध नहीं है।

मनुष्य तंबाकू को किसी रूप में भोगने की चाहना अर्थात् आतुरता प्राप्त कर लेता है; वैसे ही शराब, पान, दोहरा, अफ़ीम, चरस, गाँजा, चंडू, कोकेन या ऐसे ही द्रव्यों की आदतें डाल लेता है और इनके लिये आतुर हो जाता है। और ऐसी आतुरता या आदतें जब एक बार अच्छी तरह प्राप्त कर ली जाती हैं तब वह स्वाभाविक भूख और प्यास से भी प्रबल हो जाती हैं; क्योंकि ऐसे मनुष्य भी जाने गए हैं जो भूखों मर गए हैं, क्योंकि उन्होंने अपना सब धन शराब और नशे के लिये ख़र्च कर दिया था। मनुष्य ने पीने के लिये अपने बच्चों के कपड़े तक बेंच दिए हैं—अपनी नशा की आतु-

रता बुझाने के लिये चोरी और क़तल तक कर डाला है। परंतु इस भयंकर आतुरता की चाहना को भूख कहने की कौन कल्पना करेगा? परंतु हम किसी वस्तु को पेट में डाल लेने की प्रबल चाहना अर्थात् आतुरता को भूख ही कहते और समझते हैं; हालाँ कि ऐसी बहुत-सी चाहनाएँ वैसी ही आतुरता की चिह्न हैं जैसे शराब और दूसरे नशे की चाहना होती है।

नीच जंतु को स्वाभाविक भूख होती है जब तक कि वह सभ्य मनुष्य द्वारा मिठाई वग़ैरः खिलाकर, जिसे झूठे ही भोजन कहते हैं, बहका न दिया जाय। छोटे बच्चे को भी स्वाभाविक ही भूख होती है जब तक वह भी बिगाड़ नहीं दिया जाता। बच्चों में स्वाभाविक भूख के स्थान पर अस्वाभाविक चाहनाएँ, माता पिता की संपत्ति के अनुसार पैदा की जाती हैं—जितनी ही धन की अधिकता होगी उतनी ही आतुरता की अधिक प्राप्ति होगी। ज्यों-ज्यों ऐसा बच्चा बढ़ता जाता है त्यों-त्यों असली भूख के अर्थ को भूलता जाता है। सच तो यह है कि मनुष्य भूख को एक दुःखदायी चीज़ समझते हैं और उसे स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं समझते। जब कभी मनुष्य को बाहर पड़ाव डाल-डालकर यात्रा करनी पड़ जाती है, तब खुली हवा, शारीरिक परिश्रम और स्वाभाविक जीवन से एक बार फिर असली भूख जाग उठती है, और तब वे छोटे लड़कों की भाँति भोजन करते हैं और ऐसे स्वाद के साथ कि जिसे बरसों वे नहीं जानते थे। उनको सचमुच भूख लग जाती है और वे खाना खाते हैं क्योंकि उनके शरीर में भोजन की माँग है वे केवल आदत ही के कारण नहीं खाना खाते जैसा घर पर हुआ करता है कि पेट में लगातार खाने पर खाना भरा चला जाता है।

हमने हाल ही में धनी लोगों की एक मंडली के विषय में पढ़ा है कि वे आनंद के लिये समुद्र की यात्रा कर रहे थे कि दुर्घटना-

वश असहाय स्थान में पड़ गए। विवश होकर उन्हें दस दिन तक बहुत ही सूक्ष्म भोजन से गुज़र करनी पड़ी। जब ये लोग बचाए गए तब वे स्वास्थ्य के रूप नज़र आते थे—गुलाबी रंग, चमकीली आँखें, और सबसे बढ़कर यह बात कि वे स्वाभाविक अच्छी भूख के बहुमूल्य पदार्थ को पा गए थे। उस मंडली के कुछ लोग बरसों से बदहज़मी के रोग में मुब्तिला थे; परंतु इन दस दिनों के अनुभव ने जिसमें भोजन बहुत ही कम और बड़े परिश्रम से मिला, लोगों को बदहज़मी और अन्य रोगों से मुक्त कर दिया। उनको उचित रीति से पोषण करने के लिये तो काफ़ी मिल गया और देह में जो रद्दियात जमा हो गए थे और जिनसे शरीर विषाक्त हो रहा था वे पदार्थ निकल गए। अब वे बहुत दिन तक नीरोग रहें वा न रहें, यह बात उन्हीं के कर्मों पर अवलंबित थी कि चाहें वे भूख का अनुसरण करें चाहे भोजनातुरता का।

स्वाभाविक भूख—स्वाभाविक प्यास की भाँति—मुँह और गले की नाड़ियों के द्वारा अपने को प्रकट करती है। जब मनुष्य भूखा होता है, तब भोजन का ख़्याल वा नाम उसके मुँह, गले और लार पैदा करनेवाले अवयवों में एक विशेष संवेदना उत्पन्न करता है। उन भागों की नाड़ियों से एक विचित्र प्रकार की संवेदना प्रकट होती है, लार बह आती है, और वहाँ के सारे अवयव कार्य में लगने की उत्सुकता प्रकट करने लगते हैं। आमाशय कोई भी संकेत नहीं करता और ऐसे मौक़ों पर प्रकट भी नहीं होता। मनुष्य को मालूम होता है कि अच्छे पुष्टिदायक भोजन का स्वाद उसे सुखदायक होगा। थकावट, ख़ालीपन, क्षीणता, भोजनाभाव आदि की वेदना आमाशय में नहीं होती। ये लक्षण तो भोजनातुरता की आदत के लक्षण हैं, जो हठ कर रहे हैं कि आदत जारी रक्खी जावे। क्या आपने कभी ख़्याल किया है कि शराब की आदत भी ऐसे ही लक्षणों को प्रकट करती है। प्रबल चाहना और अभाव के लक्षण

भोजनातुरता और पानातुरता दोनों अस्वाभाविक बातों में प्रकट होते हैं। जो मनुष्य हुक्का पीना चाहता है वा तंबाकू खाया चाहता है उसको भी इसी प्रकार की वेदनाएँ होती हैं।

मनुष्यों को प्रायः आश्चर्य होता है कि अब वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता जैसा कि लड़कपन में "मा पकाया करती थी।" क्या आप जानते हैं कि वैसा भोजन क्यों नहीं मिलता? केवल इसी कारण से कि उस मनुष्य ने अपने शरीर में भूख के स्थान पर भोजनातुरता को जगह दे दिया है, जिससे कि पिछले सादे भोजन का स्वाद अब असंभव हो गया है। यदि मनुष्य फिर भी अपनी स्वाभाविक रहन द्वारा भूख को उत्तेजित कर दे तो उसे फिर भी बचपन के भोजन का लाभ मिलने लगे—तब उसको सभी रसोइयाँ वैसी ही मालूम होने लगेंगी जैसी "माता" थी, क्योंकि वह फिर नवयुवक हो जावेगा।

आपको शायद आश्चर्य होगा कि इन सब बातों से हठयोग से क्या संबंध है। संबंध यह है—योगी ने भोजनातुरता को जीत लिया है, और उसके स्थान पर फिर भूख को पुनः स्थापित किया है। उसको प्रत्येक ग्रास में सुख मिलता है; यहाँ तक कि सूखी रोटी का टुकड़ा भी उसके लिये पोषण और सुख दोनों का देनेवाला है। वह उसे इस भाँति खाता है कि आपको मालूम भी नहीं है, और जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा। इसलिये योगी भूखा निराहारी व्रती नहीं रहता; वह ख़ूब खाए, ठीक पुष्ट, भोजन का सुख उठानेवाला होता है; क्योंकि उसके आधीन सब चटनियों से स्वादिष्ठ चटनी भूख है।

दसवाँ अध्याय

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में योगी का विचार और अभ्यास

बहुत-से कार्यों को एक में मिलाने और आवश्यक कर्तव्यों को सुखकर बनाने (जिससे वह कार्य करने योग्य हो जायँ) की प्रकृति की चातुरी अनेक उदाहरणों में देखने में आती है। इस अध्याय में इस प्रकार का एक बहुत ही जाज्वल्यमान उदाहरण प्रकाशित किया जायगा। हम दिखलावेंगे कि वह कैसे अनेक बातें एक ही साथ पूरा करती है और कैसे वह शारीरिक संगठन के अधिकतम आवश्यक कर्तव्यों को सुखकर भी बना देती है।

भोजन से प्राण प्राप्त करने के विषय में जो योगियों के ख़याल हैं उन्हीं के विचार से प्रारंभ कीजिए। योगियों का यह ख़याल है कि मनुष्य और नीच जंतुओं के भोजन में प्राण का एक ऐसा रूप रहता है, जो मनुष्य के बल और शक्ति को क़ायम रखने के लिये नितांत आवश्यक है, और प्राण का यह रूप मुख, जिह्वा और दाँतों की नाड़ियों द्वारा ग्रहण किया जाता है। कूँचने वा दाँतों से पीसने की क्रिया, जिससे भोजन के टुकड़े महीन-महीन कणों में पिस जाते हैं, इस प्राण को पृथक् कर देती है और प्राण के इतने परमाणुओं को जिह्वा, मुख और दाँतों के सम्मुख उपस्थित कर देती है जितना संभव हो सकता है। भोजन के प्रत्येक परमाणु में भोजनप्राण या अन्न की शक्ति के अनेकों प्राणाणु होते हैं, जो प्राणाणु कि दाँतों से कूँचने की पिसावट की क्रिया द्वारा, और लार में के कतिपय द्रव्यों

की रासायनिक क्रिया द्वारा पृथक् किए जाते हैं; इनके अस्तित्व का ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिकों को अभी नहीं है, और न ये आजकल के रसायन शास्त्र की परीक्षाओं द्वारा प्रकटित किए जा सकते, यद्यपि भविष्यत् के खोजी लोग इनके विषय में वैज्ञानिक प्रमाण दे देंगे। जब यह भोजनप्राण एक वार भोजन में से स्वतंत्र कर दिया जाता है तब यह जिह्वा, मुख और दाँतों की नाड़ियों के पास दौड़ जाता है, और मांस और हड्डियों में होकर बहुत शीघ्रता से नाड़ी-जाल के अनेक केंद्रों अर्थात् चक्रों में पहुँचता है, जहाँ से कि वह शरीर के प्रत्येक भागों में पहुँचाया जाता है और देहाणुओं को शक्ति और जीवट प्रदान करता है। यह योगी के कल्प की मोटी-मोटी बातें हैं; इनका सविस्तर वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

शिष्य लोक आश्चर्य करेंगे कि जब हवा में इतना अधिक प्राण भरा हुआ है तब भोजन में से प्राण खींचने की क्या आवश्यकता है, और यह प्रकृति के विषय में समय का व्यर्थ खोना समझा जायगा कि इतना परिश्रम भोजन में से प्राण लेने के लिये किया जाय। परंतु इसका समाधान यों है। जैसे सब विद्युत् विद्युत् हैं वैसे ही सब प्राण प्राण हैं—परंतु जैसे विद्युत् की धार के अनेक रूप होते हैं, और मनुष्य के शरीर पर एक दूसरे से बहुत ही भिन्न असर डालते हैं, वैसे ही प्राण के रूपों के भी अनेक प्रकार के विकाश होते हैं; पार्थिव शरीर में प्रत्येक रूप अपना निश्चित कार्य करता है; और भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों के लिये सभी रूप के प्राण की आवश्यकता होती है। हवा में का प्राण एक क़िस्म का कार्य करता है, पानी में का दूसरे क़िस्म का और भोजन में से जो प्राण प्राप्त किया जाता है वह तीसरे और क़िस्म का कार्य संपादन करता है। योगियों के कल्प के सविस्तर वर्णन में जाना इस पुस्तक के उद्देश के बाहर की बात होगी, और हमको यहाँ साधारण वर्णन ही पर सतोष करना चाहिए। असली

विषय हमारे सामने यही उपस्थित है कि भोजन में अन्नप्राण होता है जिसकी मानव शरीर को आवश्यकता है, और जिसको ऊपर लिखी हुई रीति से ग्रहण कर सकता है, अर्थात् भोजन को दाँतों से खूब अच्छी तरह पीस डालने से और प्राण को दाँतों, जिह्वा और मुख की नाड़ियों द्वारा खींचने से।

अब भोजन को दाँतों से कूँचने और उसमें लार मिलाने की क्रिया से जो प्रकृति दोहरा काम लेती है उस पर विचार करना चाहिए। प्रथम तो प्रकृति का यह उद्देश है कि भोजन का प्रत्येक ज़र्रा अच्छी तरह से पीस डाला जाय और उसमें लार मिल जाय तब उसे भीतर घोंटा जाय; और इस विषय में कोई भी त्रुटि हुई कि पाचन में बाधा पड़ी। अच्छी तरह से कूँचना ही मनुष्य की स्वाभाविक आदत है, जो कि रहन-सहन की कृत्रिम आदतों के तक़ाज़ा से, जो हमारी सभ्यता के कारण उपस्थित हो गए हैं, भुलवा दी गई है। भोजन का दाँतों से पिस जाना इसलिये आवश्यक है कि वह आसानी से घोंटा जा सके और इसलिये भी कि उसमें लार तथा आमाशय और पतली अँतड़ियों के पाचक द्रव घुल सकें। इससे लार का स्राव बढ़ता है, जो पाचन-क्रिया-कलाप का बहुत ज़रूरी अंग है। भोजन में लार का घुल जाना पाचन-क्रिया का अंग है, और लार द्वार कुछ ऐसा आवश्यक कार्य होता है जो अन्य द्रवों से नहीं हो सकता। आयुर्वैदिक लोग बहुत ज़ोर देकर सिखलाते हैं कि अच्छी तरह से कूँचना और खूब लार मिलाना स्वाभाविक पाचन के लिये अनिवार्य है और पाचन-क्रिया के प्रधान अंग हैं। कुछ विशिष्टाचार्य लोग तो इस कूँचने और लार मिलाने की क्रिया को साधारण आयुर्वैदिकों की अपेक्षा और भी अधिक महत्त्व देते हैं। एक पश्चिमी आचार्य, जिनका नाम मिस्टर होरेस फ़्लेचर है, जो अमेरिका-निवासी हैं, इस विषय पर बड़ा ज़ोर देकर लिखे हैं और भौतिक शरीर की इस

क्रिया की प्रधानता पर आश्चर्य-जनक प्रमाण दिए हैं। असल बात यह है कि मिस्टर फ़्लेचर एक ख़ास तरीक़े से कूँचने की सलाह देते हैं, जो योगियों के तरीक़े से बहुत मिलता है; यद्यपि फ़्लेचर साहब तो पाचन-क्रिया में उसके अद्भुत प्रभाव के लिहाज़ से उसका उपदेश करते हैं, परंतु योगी लोग वैसी ही क्रिया अन्न से प्राण खींचने के अभिप्राय से करते हैं। सच यों है कि वैसी क्रिया से दोनों मतलब हासिल होते हैं, क्योंकि प्रकृति के उद्देश का यह एक अंग है कि भोजन दाँतों से ख़ूब मसलकर खाया जाय। लार के मिलने से पाचन-क्रिया और साथ-ही-साथ प्राण की प्राप्ति दोनों एक ही समय में हो जाती हैं—ध्यान देने योग्य परिश्रम की किफ़ायत!

मनुष्य की स्वाभाविक दशा में भोजन का ख़ूब मसल लेना एक सुखकर कार्य था और नीच जंतुओं तथा मनुष्यों के बच्चों में अब भी है। जानवर अपने चारा को ख़ूब मज़े के साथ मसलता है; और मनुष्य का बच्चा भी चूसता है, कुचलता है और सभ्य युवा मनुष्य की अपेक्षा बहुत देर तक भोजन को अपने मुख में रक्खे रहता है; परंतु पीछे अपने माता पिता का सबक़ सीखता है और शीघ्रता से भोजन निगल जाने के रिवाज को ग्रहण कर लेता है। मिस्टर फ़्लेचर अपनी इस विषय की किताबों में यह बात स्थापित करते हैं कि वह स्वाद है जो इस कूँचने और चूसने की क्रिया में सुख देता है। योगियों का यह ख़्याल है कि स्वाद भी इस विषय में बहुत कुछ करता है, परंतु इसके अतिरिक्त भी कोई और चीज़ है; भोजन को मुख में रक्खे रहने, उसे जिह्वा से इधर-उधर फेरने, उसे दाँतों से ख़ूब मसलने, और धीरे-धीरे उसे घुलाकर अचेतित घोंट जाने में एक अनिर्वचनीय तुष्टि का बोध होता है। फ़्लेचर साहब कहते हैं कि भोजन को मसलने में जब तक तनिक भी स्वाद का

अंश प्रतीत हो तब तक समझना चाहिए कि अभी उसमें पोषण निकालने के लिये शेष है; और हमारा भी विश्वास है कि यह बात बहुत सही है। परंतु हम लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि उसमें, यदि हम अवसर दें तो, ऐसा बोध होता है, जो हमें भोजन को न निगल जाने में एक प्रकार का ऐसा तोष देता है जो तब तक क़ायम रहता है जब तक कि भोजन में का कुल या क़रीब-क़रीब कुल प्राण नहीं खींच लिया जाता। आप देखेंगे, यदि आप योगी के भोजन के तरीक़े को ग्रहण करेंगे कि आपका जी मुँह में से भोजन को हटाना न चाहेगा और उसे तुरंत निगल जाने के स्थान पर आप उसे शनैः-शनैः मुँह में घुलाते रहेंगे और अंत में आपको यकबएक ज्ञात होगा कि सब ग्रास ग़ायब होकर भीतर चला गया। यह मज़ा सादे-से-सादे भोजन में और उस भोजन में जो आपका बहुत ही प्रिय है एक समान प्रतीत होगा।

इस मज़ा का वर्णन करना असंभव-सा है; क्योंकि इस मज़ा का अनुभव ही साधारण लोग नहीं कर सके हैं। इसके समझाने में जो कुछ हम कर सकते हैं वह यह है कि इसको उपमा हम अन्य ऐसी ही संवेदना से दें, यद्यपि हमें आशंका है कि इसे आप लोग हास्य-जनक समझेंगे। आप उस संवेदना को जानते हैं जो ऐसे मनुष्य के पास बैठने से होती है जो बड़ा ओजस्वी है, और जिससे आप शक्ति अर्थात् जीवट ग्रहण कर रहे हैं। कुछ मनुष्यों के देह में इतना अधिक प्राण होता है कि वे लगातार उसका प्रवाह बहाया करते हैं, और उसे दूसरों को दिया करते हैं, जिसका यह परिणाम होता है कि दूसरे उसके संग बैठने को बहुत पसंद करते हैं, और उस मनुष्य से पृथक् नहीं हुआ चाहते, क्योंकि उससे पृथक् होने को उनका जी ही नहीं चाहता। यह एक उदाहरण है। दूसरा उदाहरण उस मनुष्य के पास बैठने का है जिस पर आपका प्रेम हो। ऐसी दशा में

परस्पर ओजस (प्राणभरित भाव) का परिवर्तन होता है जो बहुत ही आह्लादकर होता है। प्यारे का चुंबन ओजस से इतना भरा रहता है कि उससे मनुष्य शिर से पैर तक पुलकित हो जाता है। हम जिस बात का वर्णन किया चाहते हैं उसका यह भी अपूर्ण ही उदाहरण है। जो सुख हमें मुनासिब और स्वाभाविक तरीक़े से भोजन करने में मिलता है वह केवल स्वाद ही का सुख नहीं है, किंतु अधिकतर उस संवेदना से उत्पन्न हुआ है जो कि प्राण के ग्रहण करने में होती है, और जो बहुत कुछ ऊपर दिए हुए उदाहरणों से समता रखती है ; यद्यपि हम जानते हैं कि जब तक आप शक्ति के दोनों विकाशों की समता का अनुभव स्वयं न कर लेंगे तब तक आप इस उदाहरण पर हँसी करेंगे।

जब आप मिथ्या भोजनातुरता को (जिसे भूल से भूख समझा जाता है) दमन कर लेंगे तब आप विना छाँटे हुए गेहूँ की रोटी के सूखे टुकड़े को भी ख़ूब मसल-मसलकर खावेंगे, और उसमें भरे हुए पोषण के कारण उसके केवल स्वाद ही से सतोष न पावेंगे, किंतु उस संवेदना का भी सुख उठावेंगे जिसके विषय में हमने इतना जी लगाकर वर्णन किया है। मिथ्या भोजनातुरता की आदत छोड़ने और प्रकृति के उद्देश पर आने में थोड़े अभ्यास की ज़रूरत है। जो भोजन जितना ही अधिक पुष्टिकारक होगा, वह स्वाभाविक रुचि को उतना ही अधिक तृप्तिकारी होगा, और यह भी एक बात स्मरण करने के योग्य है कि भोजन में जितनी ही पोषण शक्ति होगी उतना ही उसमें अन्नप्राण भी होगा—प्रकृति की चातुरी का एक और उदाहरण।

योगी बहुत धीरे-धीरे अपना भोजन खाता है, प्रत्येक ग्रास को तब तक मसलता रहता है जब तक उसमें उसे तृप्ति मिलती रहती है। अधिकांश दशा में तब तक उसे तृप्ति मिलती रहती है जब तक

उसके मुँह में भोजन रहता है, क्योंकि प्रकृति की अचेतित क्रियाएँ भोजन को शनैः-शनैः घुलाकर भीतर छोड़ देती हैं। योगी अपने जबड़ों को धीरे-धीरे घुमाता है, और जिह्वा को अवसर देता है कि वह भोजन को खूब आलिंगन करे, और दाँत प्रेम से भोजन में डूबें; वह जानता है कि हम भोजन से अपने मुँह, जिह्वा और दाँतों की नाड़ियों द्वारा अन्न-प्राण खींच रहे हैं, और हम उत्तेजित और शक्तिमान् हो रहे हैं, और अपने शक्ति-भंडार को भर रहे हैं। साथ-ही-साथ वह यह भी जानता है कि हम भोजन को समुचित रीति से आमाशय और पतली अँतड़ियों के पाचन योग्य बना रहे हैं और शरीर को उसकी रचना के लिये अच्छी सामग्री दे रहे हैं।

वे लोग जो योगियों के तरीक़े से भोजन करते हैं, अपने भोजन में से साधारण मनुष्यों की अपेक्षा पोषण की अधिकतर मात्रा पावेंगे; क्योंकि प्रत्येक ग्रास से अधिक-से-अधिक पोषण खींचा जाता है, और उस मनुष्य के मामले में, जो अपने भोजन को अधूरा कुचल-कर और अधूरा लार मिश्रित करके निगल जाता है, उसका भोजन बहुत-सा बर्बाद जाता है और सड़ती-गलती हुई दशा में शरीर से बाहर कर दिया जाता है। योगी के तरीक़े में कोई चीज़ रद्दी बना-कर नहीं फेंकी जाती जब तक वह दर असल रद्दी नहीं हो जाती; भोजन में से पोषण का एक-एक ज़र्रा तक खींच लिया जाता है, और अधिकांश अन्नप्राण उसके परमाणुओं ही से खींचा जाता है। भोजन चबाने से ज़र्रे-ज़र्रे हो जाता है और लार का द्रव उसके अंग-अंग में घुल जाता है, लार के पाचनकारी अंग अपना आवश्यक कार्य करते हैं, और अन्य द्रव (जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है) अन्न पर ऐसा असर डालते हैं कि उसमें का प्राण स्वतंत्र हो जाता है और नाड़ी-जाल द्वारा खींच लिया जाता है। जबड़ों, जिह्वा और गालों की क्रिया से जो भोजन संचालित होता है, वह नाड़ियों के सम्मुख

प्राण के नए-नए अणुओं को पेश करता जाता है और नाड़ियाँ उन्हें खींचती जाती हैं। योगी लोग भोजन को एक अर्से तक मुख में रक्खे रहते हैं, उसे धीरे-धीरे अच्छी तरह से मसला करते हैं, और उसे ऊपर कही हुई अनिच्छापूर्व क्रिया से भीतर जाने का अवसर देते हैं, और प्राण ग्रहण से जो मज़ा मिलता है, उसका पूरा सुख उठाते हैं। आप इसकी भावना तब कर सकते हैं, जब आपको इस प्रयोग के करने का अवसर मिले और आप कुछ खाने की थोड़ी चीज़ अपने मुख में ले लें और धीरे-धीरे उसे मसलने लगें और उसे अवसर दें कि वह शनैः-शनैः आपके मुँह में शक्कर की भाँति गलकर भीतर ग़ायब हो जाय। आप यह देखकर आश्चर्यित होंगे कि यह अनिच्छापूर्व घोंटने की क्रिया कैसी ख़ूबी के साथ हुई है—भोजन शनैः-शनैः अपने अन्नप्राण को नाड़ियों को देकर आप गल जाता है और धीरे-धीरे आमाशय में पहुँच जाता है। उदाहरण के लिये रोटी का एक टुकड़ा लीजिए और यह विचार करके उसे ख़ूब मसलिए कि देखें बिना निगले वह कितनी देर तक मुँह में ठहरता है। आपको मालूम हो जायगा कि यदि आप उसे बहुत देर तक मसलते रहेंगे, तो आपको उसके निगलने का कष्ट उठाना ही न पड़ेगा; और वह पतली लेई की भाँति होकर ऊपर लिखे हुए तरीक़े से धीरे-धीरे आप-से-आप भीतर चला जायगा। और रोटी का वह छोटा टुकड़ा, अपने ही बराबर के दूसरे टुकड़े की अपेक्षा जो मामूली तौर से थोड़ा-बहुत कूँच-काँचकर निगल लिया गया है, दूना पोषण और तिगुना प्राण देगा।

दूसरा मनोरंजक उदाहरण दूध का लीजिए। दूध द्रव होता है और इसलिये इसके मसलने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती जैसी कि ठोस भोजन के लिये हुआ करती है। परंतु बात वही रही (और सावधानी से तजरबा करने पर अच्छी तरह से प्रमाणित

हुई) कि यदि एक अधसेरा दूध गले में से होकर पेट में बहा दिया जाय, तो वह उस उतने ही दूध की अपेक्षा, जो धीरे-धीरे चूसा गया है और क्षण-भर मुँह में रखकर जीभ से चुभलाया गया है, आधे से अधिक पोषण और अन्नप्राण कभी नहीं देता। बच्चा मा के स्तन अथवा बोतल से जब दूध खींचता है, तो वह मुँह और जीभ को चुभला-चुभलाकर दूध खींचता है और उसके मुँह के भीतर की झिल्लियों से द्रव स्रवा करता है, जो दूध में के प्राण को छुटकारा देता जाता है और दूध में मिश्रित होकर रासायनिक क्रिया से उसे पाचन-योग्य बनाता जाता है; बच्चा कभी दूध को बिना चुभलाए नहीं निगलता ; यद्यपि यह बात ठीक है कि जब तक बच्चे के मुँह में दाँत नहीं निकलते, तब तक उसके मुँह से सच्चा लार नहीं स्रवता।

हम अपने शिष्यों को सलाह देते हैं कि ऊपर लिखी हुई रीति से जाँच करें। जब आपको मौक़ा मिले, थोड़ा समय निकाल लीजिए; तब धीरे-धीरे भोजन को मसलते हुए उसे मुख ही में गल जाने का अवसर दीजिए; और भोजन को तुरत निगल न जाइए। यह भोजन का गलने देना तभी संभव होगा, जब कुचलते-कुचलते वह मलाई की भाँति हो जायगा, और बहुत अच्छी तरह से लार से मिल जायगा; और उसके कण अर्धपाचित दशा को पहुँच जायँगे और उनमें से अन्नप्राण कुल निकल जायगा। एक बार एक सेब या कोई फल इसी प्रकार खाने का यत्न कीजिए, उसी थोड़े ही खाने में आपको काफ़ी भोजन खाने की तृप्ति हो जायगी, और आपको कुछ-कुछ बढ़ी हुई शक्ति का अनुभव होगा।

हम समझते हैं कि योगी के लिये भोजन में इतना समय लेना और इस प्रकार खाना दूसरी बात है, और कामकाजी गृहस्थ के लिये ऐसा करना दूसरी बात है; और हम अपने पाठकों से यह आशा

नहीं करते कि वे अपनी बरसों की आदत को एकदम बदल देंगे। परंतु हमें निश्चय है कि इस प्रकार भोजन करने में थोड़ा-सा-भी अभ्यास करने से मनुष्य के ऊपर परिवर्तन आ जायगा; और हम जानते हैं कि इसी तरह थोड़ा-थोड़ा यत्न करते रहने से प्रतिदिन के भोजन के मसलनेवाले तरीक़े में एक ख़ासी उन्नति हो जायगी। हम यह भी जानते हैं कि शिष्य को एक नई ख़ुशी मालूम होगी—भोजन में अधिक स्वाद मिलेगा—और शिष्य "प्रेम" से भोजन करना सीख लेगा, और ग्रास को यों ही झट से निगल न जायगा। जो मनुष्य इस तरीक़े, का कुछ दिन अनुसरण करेगा, उसको स्वाद की एक नई दुनिया खुल जायग और पहले की अपेक्षा अब भोजन करने में उसे बहुत अधिक सुख मिलेगा; उसके भोजन का पाचन बहुत अच्छा होने लगेगा और उस का जीवट बढ़ जायगा; क्योंकि उसको अधिक मात्रा में पोषण और अन्नप्राण मिलेंगे।

जिनके पास समय और अवसर है कि इस तरीक़े को पूरा-पूरा बर्त सकें; उनके लिये संभव है कि वे थोड़ा भोजन से बहुत अधिक ताक़त और पोषण प्राप्त कर सकें; क्योंकि उनका खाया हुआ अन्न बर्बाद न होगा; इसकी परीक्षा उनके मल की जाँच से हो सकती है। जो बदहज़मी और नाताक़ती के रोगी हैं, वे तो अवश्य-अवश्य इस तरीक़े को पालन करके इसका लाभ उठवें।

योगियों को लोग अल्पभोजी जानते हैं; परंतु वे ही पूरे तौर से पूर्ण पोषण की महिमा और आवश्यकता समझते हैं, और शरीर को सर्वदा पुष्ट और रचनाकारी सामग्रियों से युक्त रखते हैं। इसका रहस्य यह है कि वे भोजन में के पोषण को बर्बाद नहीं करते, उसके सब पोषण को खींच लेते हैं। वे अपने शरीर में रद्दी पदार्थों का बोझा नहीं लादे रहते। जो शरीर की कल की गति में अवरोध डाले अथवा उसके दूर करने में शक्ति का नाश हो। वे थोड़े-से-थोड़े भोजन से

अधिक-से-अधिक पोषण प्राप्त करते हैं—थोड़ी सामग्री से अधिक अन्नप्राण खींचते हैं।

यदि आप पूरा-पूरा इस विधान को न बर्त सकें, तो भी आप ऊपर दिए हुए तरीक़ों से बहुत कुछ उन्नति कर सकते हैं। हमने साधारण मोटी-मोटी बातें लिख दी हैं—शेष आप स्वयं ही कर लीजिए—अपने लिये जाँच कर लीजिए—यही तरीक़ा किसी बात को किसी तरह सीखने का है।

हमने इस किताब में कई जगहों पर बतलाया है कि प्राण के खींचने में मानसिक अवस्था का प्रधान प्रभाव पड़ता है। यह बात हवा ही से प्राण खींचने के विषय में नहीं है, बल्कि भोजन से भी प्राण खींचने के विषय में भी है। भोजन करते समय सर्वदा यह ख़्याल बना रहे कि "हम भोजन के ग्रास का कुल प्राण खींचे लेते हैं" और इस प्राण की भावना के साथ-साथ पोषण की भावना भी रखिए, तब आपको ऐसा करने से, न करने की अपेक्षा, बहुत अधिक लाभ होगा।

ग्यारहवाँ अध्याय

भोजन

खाद्याखाद्य का विचार हम बिलकुल अपने शिष्यों के पसंद पर छोड़े देते हैं। अपने लिये तो हम ख़ास तौर का भोजन पसंद करते हैं, यह विश्वास करके उसके खाने से उत्तम-से-उत्तम फल प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि ज़िंदगी-भर की क्या कई पीढ़ियों की, पड़ी हुई आदत एक दिन में नहीं बदल सकती; और मनुष्य को अपने ही तजर्बे और ज्ञान से काम करना, दूसरों की आज्ञा से काम करने की अपेक्षा अधिक अच्छा है। योगी लोग निरामिष भोजन पसंद करते हैं, स्वास्थ्य के हित के लिये और मांस-भोजन से पूर्वी पर्हेज़ के कारण भी अच्छे कामिल योगी फल आदि और विना कूटे हुए गेहूँ की सादी रोटी अधिक पसंद करते हैं। परंतु जब वे उन लोगों की संगति में पड़ जाते हैं, जिनकी भोजन-विधि और ही है, तब वे अवसर के अनुकूल अपने को थोड़ा-बहुत बना लेने में बहुत पशोपेश नहीं करते; और अपने को किसी के ऊपर भार नहीं बनाते; क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम भली भाँति मसलकर खाना खायँगे, तो हमारा आमाशय हमारे भोजन की अच्छी सुधि ले लेगा। सच बात तो यह है कि वर्तमान भोजनों की कुछ दुष्पाच्य चीज़ें भी खाई जा सकती हैं, यदि ऊपर लिखी हुई विधियों का अच्छी तरह से प्रयोग किया जाय।

हम इस अध्याय को मुसाफ़िर योगी के भाव में लिखते हैं। हमारी इच्छा अपने शिष्यों पर भोजन-विषयक अधिक दबाव डालने की नहीं है। मनुष्य को स्वयं अपनी बुद्धि और तजर्बे से काम

करना चाहिए, ऊपर से दबाव डालना ठीक नहीं। यदि कोई मनुष्य ज़िंदगी-भर से मांस खाता आता हो, तो उसके लिये बिना मांस का भोजन करना बहुत ही कठिन हो जायगा; वैसे ही जो मनुष्य पकाया हुआ भोजन करता आया है, उसके लिये बिना पकाया भोजन फल आदि का खाना भी बहुत कठिन पड़ जायगा। आपसे हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि आप इस विषय पर थोड़ा ग़ौर कर लें, फिर जैसी आपकी प्रवृत्ति कहे, वैसा करें; पर हाँ, यदि भोजन को बदलते जायँ, तो बहुत अच्छा है। यदि आप अपनी प्रवृत्ति ही पर भरोसा करेंगे, तो वह प्रायः आपसे वही वस्तु पसंद करावेगी, जो उस समय आपके लिये आवश्यक होगी; और हम प्रवृत्ति पर भरोसा करना, खाद्याखाद्य के कठिन नियमों के पालन की अपेक्षा अच्छा समझते हैं। जितना आपको भावे आप खाइए, परंतु उसे धीरे-धीरे ख़ूब मसलिए और अपने पसंद का प्रयोग बहुत-सी चीज़ों में कीजिए। हम इस अध्याय में कुछ ऐसी बातों का ज़िक्र करेंगे, जिन्हें बुद्धिमान् मनुष्य स्वयं छोड़ देंगे; परंतु हम केवल साधारण सलाह की भाँति कहेंगे। मांस-भोजन के विषय में हम लोगों का विश्वास है कि शनैः-शनैः मनुष्य को मालूम हो जायगा कि मांस उसका स्वाभाविक भोजन नहीं है; परंतु हम लोगों का विश्वास है कि मांस का खाना वा त्याग करना मनुष्य की अपनी ही प्रवृत्ति से उपजना चाहिए न कि ऊपर से दबाव डालकर उससे कराना चाहिए। क्योंकि जब उसकी प्रबल इच्छा मांस खाने की हो गई, तो वह वस्तुतः मांस खाने के समान ही हो गया। जब मनुष्य की गति और आगे होगी, तो उसकी मांस खाने की इच्छा समाप्त हो जायगी; परंतु जब तक वह समय न आवे, तब तक दबाव डालकर उससे मांस का खाना छुड़वा देना कोई लाभ न करेगा। हम जानते हैं कि हमारे इस कथन को बहुत-से पाठक प्रचलित मत का विपक्ष

समझेंगे, पर हम करें क्या—तजर्बे से हमारे कथन की पुष्टि होगी।

यदि हमारे पाठकों का जी अनेक प्रकार के भोजनों के हानि-लाभ के विचारने में लगता हो, तो उन्हें इस विषय की कुछ उन अच्छी किताबों को पढ़ना चाहिए, जो हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। परंतु उन्हें इस विषय को ख़ूब चारो ओर से सोच लेना चाहिए और किसी लेखक के ख़ास प्रवर्तित मत पर अंधे की भाँति न विश्वास कर लेना चाहिए। हमारे सामने जो भोजन आते हैं, उनकी हानि-लाभ के विषय में अच्छी किताबों के पढ़ने से शिक्षा ही मिलेगी और ऐसी शिक्षा से शनैः-शनैः हमारे भोजन-द्रव्य भी परिवर्तित होने लगेंगे। परंतु ऐसे परिवर्तन विचारों और तजर्बों के द्वारा होने चाहिए न कि किसी मतवादी के केवल कह देने से। हमारी यह राय है कि हमारे शिष्य इन प्रश्नों पर अक्सर विचार किया करें कि हम अधिक मांस तो नहीं खा रहे हैं? हम अधिक चर्बी तो नहीं खा रहे हैं? हम काफ़ी फल खाते हैं कि नहीं? क्या हमारे भोजन में बिना कूटे गेहूँ को कुछ रोटी रहे, तो अच्छा न होगा? क्या हम बहुत पेचीदा तरीक़ों से पकाए लतीफ़ और लज़ीज़ खानों की ओर तो नहीं झुकते जा रहे हैं? यदि हमसे कोई खाने के विषय में सलाह पूछे, तो हम तो यही कहेंगे कि अनेक प्रकार का भोजन करो, पर पेचीदा रीतियों से पकाए हुए खाने से बचकर रहो, बहुत चर्बी मत खाओ, तलनेवाली कड़ाही से ख़बरदार रहो, बहुत मांस मत खाओ, ख़ास कर सुअर और गाय का मांस तो कभी मत खाओ; धीरे-धीरे अपने भोजन की प्रवृत्ति को सीधे-सादे खाने की ओर झुकाओ, ख़मीर से बनी हुई रोटियों आदि को कम करो; गरम चपातियों को तो अपने भोजन से ख़ारिज ही कर दो; खाते वक़्त ख़ूब धीरे-धीरे मसलो जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं;

भोजन से डरो मत, यदि तुम उसे उचित रीति से खाओगे, तो वह तुम्हारी हानि न करेगा, बशर्ते कि तुम उससे डरोगे नहीं।

बेहतर होगा कि सुबह का पहला भोजन हलका हो; क्योंकि सबेरे शरीर में मरम्मत होने की बहुत आवश्यकता नहीं रहती; क्योंकि शरीर रात-भर आराम करता रहा है। यदि संभव हो, तो नाश्ता के पहले कुछ व्यायाम कर लो।

यदि आप उचित रीति से मसलने की स्वाभाविक रीति को धारण कर लेंगे और उचित भोजन का मज़ा पा जाँयगे, तो अस्वाभाविक भोजनातुरता की जो आदत पड़ गई है, वह आप ही छुट जायगी और स्वाभाविक भूख लौट आवेगी। जब स्वाभाविक भूख लौट आवेगी, तो प्रवृत्ति केवल पोषणकारी ही भोजनों को चुनेगी; और तुम उसी वस्तु को चाहोगे, जिसकी तुम्हें उस वक्त पोषण के लिये अत्यंत आवश्यकता होगी। मनुष्य की प्रवृत्ति, यदि व्यर्थ के उन पकवानों द्वारा बिगाड़ न दी जाय, जो केवल भोजनातुरता उत्पन्न करते हैं, तो वह बड़ी अच्छी पथदर्शिका होती है।

अगर आपकी तबियत कुछ ख़राब हो, तो एक वक्त भोजन न करने में पशोपेश मत कीजिए, आमाशय को अवसर दीजिए कि जो कुछ उसमें है, उसी को दूर करे। विना खाए हुए मनुष्य कई दिन तक विना किसी भय के रह सकता है, परंतु हम बहुत लंबे उपवास की सलाह नहीं देते। हमारी यह राय है कि तबीयत ख़राब होने पर आमाशय को थोड़ा आराम दे देना बुद्धिमानी है; इससे मरम्मत करनेवाली शक्ति को अवसर मिलता है कि वह उस रद्दी पदार्थ को निकाल बाहर करे, जो दुःख दे रहा है। आप देखेंगे कि जानवर जब बीमार पड़ते हैं, तो खाना छोड़ देते हैं, और तब तक पड़े रहते हैं जब तक स्वास्थ्य न आ जाय; और स्वस्थ होने पर वे खाने लगते हैं। हम उनसे यह पाठ सीखकर फ़ायदा उठा सकते हैं।

हम अपने शिष्यों को भोजन के विषय में ऐसा भीरु नहीं बनाया चाहते कि वे प्रत्येक ग्रास तौलें, नापें और उसका तत्व निर्णय करें। हम इसको अस्वाभाविक तरीक़ा समझते हैं; हमारा विश्वास है कि ऐसे तरीक़े से भोजन से भय उत्पन्न होता है और प्रवृत्ति-मानस ग़लत-ग़लत भावनाओं से भर जाता है। हम इसी तरीक़े को अच्छा समझते हैं कि भोजन के पसंद के विषय में साधारण सावधानी और विचार से काम लिया जाय और तब उस विषय से निश्चित हो जाया जाय; और पोषण तथा ताक़त का ध्यान करते भोजन किया जाय, भोजन को उसी प्रकार मसला जाय, जैसे हम कह आए हैं और यह जानते रहें कि प्रकृति अपने काम को अच्छी भाँति कर लेगी।

जहाँ तक संभव हो, प्रकृति के मार्ग ही पर बने रहो, उससे दूर न जाओ; उसी के उद्देश को उचित और अनुचित के पहचान में अपना प्रमाण बनाओ। बलवान्, स्वस्थ मनुष्य अपने भोजन से डरता नहीं; उसी प्रकार जो मनुष्य स्वस्थ बनना चाहता है, उसे भी अपने भोजन से डरना न चाहिए। प्रसन्न रहो, ठीक साँस लो, ठीक रीति से भोजन करो, उचित रीति से रहो, तो तुम्हें प्रत्येक ग्रास पर भोजन की रासायनिक परीक्षा करने का मौक़ा ही न मिलेगा। अपनी प्रवृत्ति पर भरोसा करने में डरो मत, क्योंकि स्वाभाविक मनुष्य की वह पथ-प्रदर्शिका है।

बारहवाँ अध्याय

देह की सिंचाई

हठयोग-शास्त्र का प्रधान नियम एक यह है कि जीवों के लिये जो प्रकृति का महत दान जल है, उसका विचार-पूर्वक प्रयोग किया जाय। मनुष्य की स्वाभाविक तंदुरुस्ती को क़ायम रखने के लिये पानी एक प्रधान साधन है, इस बात पर मनुष्य के ध्यान को आकर्षित करने की आवश्यकता भी न होती, परंतु मनुष्य कृत्रिम सामानों, आदतों, रवाजा आदि का ऐसा दास बन गया है कि वह प्रकृति के नियमों को भूल गया। वह प्रकृति के मार्ग पर लौट आवे, तभी वह कुछ आशा कर सकता है। छोटा बच्चा अपनी प्रवृत्ति द्वारा पानी के लाभ को जानता है, और पानी पाने के लिये बड़ी चाह दिखलाता है; परंतु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, त्यों-त्यों स्वाभाविक आदत से दूर होता जाता है, और अपने इर्द-गिर्द के बड़े लोगों की ग़लत आदतों में पड़ जाता है। यह बात विशेष करके उन लोगों के संबंध में ठीक-ठीक घटती है, जो लोग बड़े-बड़े नगरों में रहते हैं, जहाँ की कलों का गरम पानी बेस्वाद होता है, और इस प्रकार वे शनैः-शनैः पानी के स्वाभाविक प्रयोग से पृथक् हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य पानी पीने (या यों कहिए कि न पीने) का और प्रकृति की माँग को मुल्तवी कर देने की नई आदतों को धारण कर लेते हैं; और अंत में प्रकृति की माँग की उन्हें चेतना तक नहीं होती। हम मनुष्यों को ऐसा कहते अक्सर सुनते हैं कि "हमें पानी क्यों पीना चाहिए; हमें तो प्यास नहीं लगती।" परंतु यदि वे प्रकृति के मार्ग पर बने रहते, तो उन्हें अवश्य प्यास लगती; और उन्हें प्रकृति की माँग सुनाई

क्यों नहीं देती, इसका एकमात्र कारण यह है कि उन्होंने प्रकृति की माँग पर इतने दिन ध्यान नहीं दिया, इसलिये प्रकृति बेदिल होकर इतना ज़ोर से पानी नहीं माँगती; इसके अतिरिक्त उनका ध्यान और बातों में रहता है, इसलिये उनको प्रकृति की माँग की पहचान ही नहीं होती। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि मनुष्य ने जीवन के इस प्रधान व्यापार को भुला दिया है। बहुत-से लोग तो शायद ही कभी कोई द्रव पीते हों और वे कहते भी हैं कि "हम नहीं समझते कि हमारे लिये यह अच्छा है" यह बात यहाँ तक बढ़ गई है कि हमने एक ऐसे भी, कहने को, स्वास्थ्याचार्य को जाना है, जो ऐसा अद्भुत उपदेश करते हैं कि "प्यास एक बीमारी है" और लोगों को सलाह देते हैं कि द्रव पदार्थों को पिएँ ही नहीं ; क्योंकि पानी का इस्तेमाल अस्वाभाविक है। हम ऐसे उपदेशकों के साथ विवाद करना नहीं चाहते—इनकी मूर्खता उन लोगों पर अवश्य विदित हो जायगी, जो मनुष्य और नीच जंतुओं के स्वाभाविक जीवन पर ध्यान देंगे। मनुष्य को प्रकृति के मार्ग पर लौट जाने दीजिए, तो वह चारों ओर, जीवन के सब रूपों में, पौधों से लेकर दूध पानेवाले ऊँचे जानवरों तक, पानी पीना देखने लगेगा।

योगी पानी पीने के समुचित प्रयोग को इतनी प्रधानता देता है कि वह इसे स्वास्थ्य के प्रथम नियमों में समझता है। वह जानता है कि रोगी मनुष्यों में से अधिकांश जन ऐसे हैं, जो उस द्रव के अभाव के कारण रोगी हुए हैं, जिसकी आवश्यकता उनके शरीर को थी। जैसे पौधे को पानी और भूमि तथा हवा में से भोजन पाने की आवश्यकता होती है, जिससे वह स्वस्थता को प्राप्त हो, वैसे ही मनुष्य को भी द्रव की काफ़ी मात्रा की आवश्यकता होती है कि वह स्वस्थ बना रहे या यदि अस्वस्थ हो गया है, तो फिर स्वास्थ्य लाभ करे। ऐसा कौन ख़याल करेगा कि पौधे को पानी न दिया जाय? ऐसा

कौन मनुष्य होगा जो फ़र्मांबर्दार घोड़े को पूरी मिक़दार में पानी न देगा? परंतु मनुष्य पौधे और जानवर को तो वह पदार्थ देता है, जिसकी उनके लिये अपनी साधारण अक़्ल से ज़रूरत समझता है, परंतु अपने ही को जीवनदायक द्रव से वंचित रखता है; पर वह इसका फल वैसे ही भोगेगा, जैसे विना पानी पाए पौधे और घोड़े फल भोगते हैं। जब आप पानी पीने के प्रश्न पर विचार करने लगें, तो पौधे और घोड़े के इस उदाहरण को स्मरण रक्खें।

अब यह देखना चाहिए कि शरीर में पानी किस-किस काम में आता है, और तब विचारा जाय कि इस विषय में हम स्वाभाविक जीवन जी रहे हैं कि नहीं। प्रथम तो हमारे शरीर का ७० प्रति सैकड़ा भाग पानी है। इस पानी का कुछ भाग हमारे संगठन में प्रयुक्त होता है, और लगातार हमारे शरीर से पृथक् होता रहता है; और जितना पानी ख़र्च हो जाता है, उतना ही पानी फिर शरीर में भर देना चाहिए, यदि शरीर को स्वाभाविक दशा में रखना स्वीकार हो।

यह शरीर-यंत्र चमड़े के अगणित छिद्रों द्वारा देहवाष्प और पसीने के रूप में लगातार जल छोड़ रहा है। पसीना उस शारीरिक द्रव मल को कहते हैं, जो चमड़े के छिद्रों से इतनी शीघ्रता से फेंका जाता है कि बिंदुओं के रूप में एकत्रित हो जाता है। देहवाष्प उसे कहते हैं, जो पानी शरीर के छिद्रों से लगातार और अज्ञात रूप से वाष्प-रूप में निकला करता है। जाँच से मालूम हुआ है कि यदि चमड़े से वाष्प निकलना बंद कर दिया जाय, तो जंतु मर जाय। पुराने रोम के एक त्योहार में एक लड़का सोने के पत्रों से सिर से पैर तक आच्छादित करके एक देवता की मूर्ति बनाया गया था—सोने के पत्रों के हटाने के पहले ही लड़का मर गया; क्योंकि वार्निश और स्वर्ण-पत्रों के कारण उसके देह का वाष्प निकल न सका। प्रकृति की क्रिया

में बाधा पहुँची और शरीर उचित रीति से कार्य न कर सका, इसलिये जीव ने उस मांस-कुटी को छोड़ दिया।

पसीने और देहवाष्प के रासायनिक विश्लेषण से जाना गया है कि ये देहयंत्र के रद्दी पदार्थों से भरे हुए होते हैं—मल और परित्यक्त कण से भरपूर होते हैं—जो, यदि देहयंत्र में काफ़ी पानी न पहुँचाया जाय, तो शरीर ही में रह जायँ, उसमें विष उत्पन्न कर दें और परिणाम में रोग तथा मृत्यु को बुला लें। शरीर की मरम्मत का काम सर्वदा हुआ करता है, बेकार और रद्दी रेशे हटाए जाया करते हैं और उनके स्थान में नई ताज़ी सामग्री उस रुधिर में से, जिसने भोजन में से नई सामग्री संग्रह की है, जुटाई जाती है। यह रद्दी अवश्यमेव शरीर से बाहर निकाली जानी चाहिए, और प्रकृति इसे निकालने में ख़ूब सावधान रहती है—वह देहयंत्र में कूड़े-करकट का रखना कभी भी पसंद नहीं करती। यदि यह रद्दी पदार्थ देहयंत्र ही में रहने दिया जाय,तो यह विष हो जाता है और रोग की अवस्था उत्पन्न कर देता है। यह, कीटाणु, उनके बीज, अंडे-बच्चे इत्यादि का उत्पत्तिस्थान और चरागाह बन जाता है। कीटाणु स्वच्छ और स्वस्थ शरीर-यंत्र को अधिक हानि नहीं पहुँचाते; परंतु ज्यों ही ये जलद्वेषी मनुष्य के संपर्क में आते हैं, और उसके शरीर को रद्दी और कूड़े करकट तथा नाना प्रकार की गंदगियों से भरा पाते हैं, त्यों ही वे वहाँ ही डेरा डालकर अपनी कार्रवाई शुरू कर देते हैं। हम इस विषय में कुछ और बातें भी स्नान के विषय के साथ बतलावेंगे।

हठयोग के प्रति दिन के जीवन में पानी सर्वप्रधान कार्य करता है। योगी इसे भीतर और बाहर दोनों भाँति प्रयोग करता है। वह स्वास्थ्य को क़ायम रखने के लिये इसका प्रयोग करता है, और जहाँ रोग ने शरीर की स्वाभाविक क्रिया को निर्बल कर दिया है, वहाँ पर फिर भी स्वास्थ्य स्थापित करनेवाले इसके गुणों की महिमा की

शिक्षा देता है। हम इस किताब के कई भागों में पानी के प्रयोग का ज़िक्र करेंगे। हम इस विषय की मुख्यता को अपने शिष्यों के हृदय में अंकित कर दिया चाहते हैं; और उनसे आग्रह के साथ निवेदन करते हैं कि इस विषय को बहुत ही सीधा-सादा जान-कर तुच्छ न समझ बैठें, और इसे छोड़ न जायँ। हमारे प्रति दस पाठकों में से सात को इस सलाह की बड़ी आवश्यकता है। इसे छोड़ न जाइए। सुना आपने? हम आप ही से कहते हैं।

देहवाष्प और पसीना दोनों इसलिये भी आवश्यक हैं कि उनके साथ-साथ देह की अतिशय गर्मी भी निकलती जाय, और शरीर का ताप उचित दर्जे का बना रहे। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, देहवाष्प और पसीना दोनों देहयंत्र के निकम्मे पदार्थों को निकालकर फेंकने में भी सहायक होते हैं। चमड़ा गुर्दों को सहायता पहुँचाने का अव-यव है। विना पानी के चमड़ा इस काम को करने के लिये अशक्त हो जाता है।

स्वाभाविक युवक १½ पाइंट से लेकर २ पाइंट तक पानी २४ घंटे में पसीना और देहवाष्प के रूप में छोड़ता है; परंतु जो मनुष्य बहुत शारीरिक परिश्रम का काम करते हैं, वे और भी अधिक पसीना छोड़ते हैं। आर्द्र वायुमंडल की अपेक्षा शुष्क वायुमंडल में मनुष्य अधिक गर्मी सहन कर सकता है; क्योंकि शुष्क वायुमंडल में देहवाष्प इतनी शीघ्रता से उड़ जाता है कि गर्मी बहुत जल्द और तत्परता से ख़ारिज हो जाती है। फेफड़ों की राह से भी बहुत-सा पानी प्रश्वास द्वारा बाहर फेंका जाता है। मूत्रेंद्रियाँ तो अपना कार्य करने में बहुत ही ज़ियादा पानी बाहर निकालती हैं; स्वस्थ युवक ३ पाइंट पानी इस प्रकार ख़ारिज करता है। इतना पानी फिर भी भरना होगा, तभी शारीरिक यंत्र उचित रीति से कार्य कर सकता है।

कई कार्यों के लिये शरीर में पानी आवश्यक होता है। उसका एक कार्य तो यह है (जैसा ऊपर वर्णन किया गया है) कि शरीर में जो लगातार ज्वलन-क्रिया हो रही है, उसकी अधिकता को रोके और उसको नियमित दर्जे में रक्खे। यह ज्वलन-क्रिया, फेफड़ों द्वारा खींचे हुए हवा के ऑक्सीजन के भोजन के कार्बन के संपर्क में आने से होती है। लाखों-करोड़ों देहाणुओं में यह ज्वलन-क्रिया होती रहती है और यही देहताप उत्पन्न करती है। पानी जब देहयंत्र में होकर गुज़रा करता है, तब तापसाम्य को स्थापित रख सकता है और ताप का बढ़ाव नहीं होने पाता।

शरीर बार्बरदारी के लिये भी पानी को काम में लाता है। यह रुधिरोपवाहक और रुधिरापवाहक धमनियों और शिराओं में होकर बहा करता है, और रुधिराणुओं तथा अन्य पोषण पदार्थों को शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों और भागों में पहुँचाया करता है, जिससे ये रचना के कामों में, जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है, लाए जायँ। शरीरयंत्र में द्रव की कमी के कारण रुधिर में भी कमी आ जायगी। रुधिर की वापसी यात्रा में, जब वह रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा लौटता है, द्रव निकम्मी रद्दियों को ग्रहण करता आया है (इन रद्दियों का अधिकांश विष हो जाता, यदि शरीर ही में पड़ा रहता) और उन्हें गुर्दों के मल-त्यागी अवयवों, चमड़े के छिद्रों और फेफड़ों के हवाले करता है, जहाँ से विषैली मृतक सामग्री—और निकम्मी रद्दियाँ बाहर फेंक दी जाती हैं। बिना पुष्कल द्रव के, यह कार्य प्रकृति के उद्देश के अनुसार नहीं सिद्ध हो सकता। और बिना काफ़ी पानी के, खाए हुए भोजन की सीठी, शरीरयंत्र की राख, पुरीष अर्थात् मैला अच्छी तरह गीला नहीं रह सकता कि आसानी से मलाशय में से शरीर के बाहर निकल जाय; और परिणाम में कोष्ठबद्ध और उसकी संगिनी बीमारियाँ हो जाती हैं। योगी

लोग जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण बद्धकोष्ठ की बीमारियाँ इसी कारण होती हैं—वे यह भी जानते हैं कि नव दशमांश जीर्ण बद्धकोष्ठ की बीमारियाँ बहुत शीघ्र दूर हो जायँ, यदि मनुष्य पानी पीने की स्वाभाविक आदत पर आ जाय। हम इस विषय का वर्णन एक पूरे अध्याय में करेंगे, परंतु इस विषय पर हम अपने शिष्यों का ध्यान बार-बार आकर्षित किया चाहते हैं।

पानी की काफ़ी मिक़दार, रुधिर की उचित उत्तेजना और उसके पूरे संचार के लिये भी चाहिए—शरीर के निकम्मे द्रव्यों को दूर करने में भी जल चाहिए—शरीर द्रव ही भोजन-रस को खींचता और अपनाता है, इसलिये भी जल की आवश्यकता है।

जो मनुष्य काफ़ी पानी नहीं पीते, उनके देह में रुधिर के एकत्रित होने में भी ख़ामी रहती है। वे विना रुधिर के सूखे व पीले नज़र आते हैं। उनका चमड़ा सूखा ज्वराक्रांत-सा दिखाई देता है और उनके शरीर से देहवाष्प बहुत कम निकलती है। उनकी सूरत अस्वस्थ मनुष्य की-सी होती है, जिसे देखकर सूखे हुए फूल याद आ जाते हैं, जिन्हें ख़ूब पानी में भिगोने की आवश्यकता होती है, जिससे वे भरे और स्वाभाविक नज़र आवें। ऐसे मनुष्य क़रीब-क़रीब सर्वदा बद्धकोष्ठ का रोग भोगा करते हैं—बद्धकोष्ठ के साथ-साथ और भी अगणित रोग उसके संग चला करते हैं, जैसा हम अन्य अध्याय में दिखलावेंगे। उनकी बड़ी अँतड़ी अर्थात् मलाशय गंदा और मैले से भरा रहता है; और उनके शरीरयंत्र में उसी मलाशय के एकत्रित मैले से रस पहुँचा करता है, जिसे कि बुरी और दुर्गंध श्वास द्वारा बाहर फेंकने का यत्न प्रकृति द्वारा किया जाता है; अथवा बदबूदार पसीना वा देहवाष्प या अस्वाभाविक मूत्र द्वारा बाहर निकालने की चेष्टा होती है। यह सुखकर पाठ नहीं है; परंतु विना इन बातों के कहे आपका ध्यान इधर आवेगा ही नहीं, इसलिये

बेहतर है कि हम साफ़ शब्दों में इसे कह डालें। ये सब बातें केवल पानी की कमी के कारण होती हैं। ज़रा ख़याल तो कीजिए आप अपने शरीर के बाहरी भाग को साफ़ करने के लिये तो इतने उत्सुक रहें और भीतर इतना मैले से भरा रहे।

मानव शरीर के सब भीतरी भागों में पानी की आवश्यकता रहती है। उसे लगातार सिंचाई की ज़रूरत रहती है, और यदि यह सिचाई देह को न दी जाय तो देह को उतना ही भोगना पड़ता है जितना सिंचाई के बिना भूमि को भोगना पड़ता है। स्वस्थ रहने के लिये प्रत्येक देहाणु, रेशा और अवयव को पानी की ज़रूरत है। पानी सब पदार्थों को गला और घुला देनेवाला होता है इसलिये शरीर-यंत्र को इस योग्य बनाए रहता है कि वह पानी से घुले भोजन में से पोषण ग्रहण और वितरण कर सके और यंत्र के निकम्मे पदार्थों को दूर बहा सके। यह अक्सर कहा जाता है कि रुधिर ही जीवन है, और यदि ऐसा है तो पानी को क्या कहना चाहिए, क्योंकि बिना पानी के ख़ून भी कुछ नहीं।

गुर्दों के लिये भी पानी आवश्यक है कि वे अपना मूत्रोत्सर्जन का काम कर सकें। इसकी ज़रूरत लार पित्त, पैनक्रियाटिक द्रव, आमाशयिक द्रव, और शरोर के अन्य द्रवों की बनावट में भी पड़ती है; और इन द्रवों के बिना पाचनक्रिया बिलकुल असंभव है। आप पानी पीना बंद कर दीजिए बस इन सब आवश्यक चीज़ों में कमी आ जायगी। अब आया आपके ध्यान में?

अगर आप इन बातों को योगियों की कल्पना समझकर इन पर संदेह करें तो आपको उचित है कि आप शारीरिक शास्त्र (Physiology) की किसी अच्छी वैज्ञानिक किताब को पढ़ें, जो किसी पश्चिमी धुरंधर विद्वान् की लिखी हो। आपको हमारे कथनों की पुष्टि और समर्थन मिल जायँगे। एक नामी शारीरिक विज्ञान-

वाले ने कहा है कि स्वाभाविक शरीर के रेशों में इतना पानी रहता है कि यह बात स्वयंसिद्ध की भाँति कही जा सकती है कि "सब देहाणु पानी ही में रहते हैं।" और यदि पानी ही नहीं है तो जीवन और स्वास्थ्य कैसे रह सकते हैं ?

आपको यह बतलाया गया है कि २४ घंटे में गुर्दे ३ पाइंट मूत्र त्यागते हैं जिसमें शरीर के निकम्मे द्रव्य और विषैले रासायनिक पदार्थ देह-यंत्र से गुर्दों द्वारा खींचकर एकत्रित रहते हैं। इसके अलावे हम दिखला आए हैं कि चमड़े द्वारा भी डेढ़ पाइंट से दो पाइंट तक पानी पसीना और देहवाष्प के रूप में ख़ारिज किया जाता है। इतने ही २४ घंटे के समय में १० से १५ औंस पानी फेफड़े भी प्रश्वास द्वारा बाहर फेंकते हैं। मल के साथ मिश्रित भी कुछ पानी निकलता है। कुछ थोड़ा पानी आँसू, बलग़म आदि के रूप में और भी बाहर निकलता है। अब इतने बाहर निकले हुए पानी के स्थान में कितने पानी की ज़रूरत पड़ेगी ? आइए देखा जाय। कुछ पानी तो भोजन में मिश्रित भीतर पहुँचता है; वह भी ख़ास करके ख़ास-ख़ास खानों में; परंतु यह पानी उस पानी की अपेक्षा कम होता है जो मल के निकालने में जाता है। अच्छे-अच्छे आचार्यों की सम्मति है कि २ क्वार्ट से ५ पाइंट तक पानी औसत दर्जे नित्य पुरुष और स्त्री का स्वास्थ्य रखने के लिये आवश्यक है जिससे ख़ारिज हुए पानी की कमी पूरी होती रहे। यदि इतना पानी शरीर को न दिया जायगा तो शरीर अपने ही यंत्रों का पानी खींचने लगेगा और मनुष्य सूखी सूरत, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, धारण करने लगेगा। परिणाम यह होगा कि शारीरिक सब क्रियाएँ निर्बल होने लगेंगी और मनुष्य भीतर और बाहर दोनों ओर से सूखने लगेगा, शरीर के कल-पुर्ज़ों में आर्द्रता और सफ़ाई की बहुत कमी हो जायगी।

दो कार्ट रोज़ ! ज़रा इसे ख़्याल तो कीजिए । आप लोग तो केवल एक पाइंट या इससे भी कम पानी रोज़ पीते हैं । अब भी आपको आश्चर्य है कि क्यों आप इतनी शारीरिक पीड़ाओं को भोगते हैं ? अब जो आप बदहज़मी, बद्धकोष्ठ, रुधिराभाव, निर्बल नाड़ी आदि अनेक रोगों को भोगते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । आपका शरीर उन अनेक प्रकार के विषैले द्रव्यों से भर गया है, जिनको पानी की कमी के कारण प्रकृति गुर्दों और चमड़ों के छिद्रों द्वारा बाहर न फेंक सकी । इसमें भी क्या आश्चर्य है कि आपका मलाशय पुराने जमे हुए सख़्त मल से भरा हुआ है और आपके शरीर को विषाक्त कर रहा है, जिसको प्रकृति अपने नियमानुसार साफ़ न कर सकी क्योंकि आपने उसे पानी ही नहीं दिया जिससे वह मल की नालियों को साफ़ कर सके । आपके पास लार और आमाशयिक द्रव की कमी है तो इसमें भी क्या ताज्जुब है ? विना पानी के प्रकृति उन्हें कैसे बना सकती है ? आपका रुधिर अच्छा नहीं है तो इसमें भी क्या आश्चर्य ? प्रकृति कहाँ से जल पावे कि अच्छा रुधिर बनावे ? आपकी नाड़ियाँ भी अस्वस्थ और अनरीत हैं तो क्या आश्चर्य जब सभी चीज़ें पानी विना बिगड़ रही हैं ? यद्यपि आप मूर्ख हो रहे हैं तो भी बेचारी प्रकृति, जहाँ तक कर सकती है, करने में नहीं चूकती । वह आपके शरीर ही से थोड़ा पानी खींच लेती है कि जिससे कल बिलकुल बंद न होने पावे, परंतु वह अधिक पानी खींचने की हिम्मत नहीं करती—इसलिये वह बीच का मार्ग पकड़ती है । वह वैसा ही करती है जैसा आप कुएँ का पानी सूखने पर करते हैं अर्थात् जैसे आप थोड़े पानी से ज़ियादा काम लिया चाहते हैं और अधूरा ही काम करके सब्र करते हैं वैसे ही प्रकृति भी करती है ।

योगी लोग ख़ूब पुष्कल पानी नित्य पीने में तनिक भी नहीं

डरते, वे इस बात से नहीं डरते कि अधिक पानी पीने से ख़ून पतला हो जायगा, जैसा ये सूखे मनुष्य ख़्याल किया करते हैं। यदि आवश्यकता से अधिक पानी कभी पी लिया जाय तो प्रकृति उसे तुरंत और शीघ्रता से निकाल देगी। योगी लोग बर्फ़ के पानी की जो सभ्यता का अस्वाभाविक मसाला है, चाहना नहीं करते—उनको ८० डिग्री तक का ठंडा पानी प्रिय है। वे जब प्यासे होते हैं तभी पानी पी लेते हैं—उनको प्यास भी स्वाभाविक (अधिक) होती है, जिसको सूखे मनुष्यों की प्यास की भाँति जगाना नहीं पड़ता। वे बार-बार पानी पीते हैं, पर ख़्याल रखिए कि वे एक ही बार बहुत-सा पानी नहीं पी लेते। वे पानी को एकबारगी पेट में उड़ेल नहीं देते क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा अभ्यास व्यतिक्रांत, अस्वाभाविक और हानिकारक है। वे थोड़ा-थोड़ा करके कई बार पानी पीते हैं। जब काम करते रहते हैं तब पानी भरा बर्तन पास रखते हैं, और बार-बार उसमें से थोड़ा-थोड़ा पानी पिया करते हैं।

जिन लोगों ने बहुत बरसों से अपनी प्रवृत्तियों पर ध्यान नहीं दिया है उन्होंने पानी पीने की प्राकृतिक आदत को भुलवा दिया है, और उसे फिर प्राप्त करने के लिये ख़ासे अभ्यास की ज़रूरत है। थोड़े अभ्यास से बहुत जल्द पानी पीने की माँग पैदा हो जावेगी, और समय पाकर स्वाभाविक प्यास जग उठेगी। अच्छा उपाय यह है कि एक ग्लास पानी अपने पास रखिए और थोड़ी-थोड़ी देर पर उसमें से पी लिया कीजिए और साथ ही यह ख़्याल भी करते जाइए कि आप क्यों वह पानी पी रहे हैं। अपने मन में कहिए कि "मैं अपने शरीर को पानी दे रहा हूँ जिसकी उसको अपना काम अच्छी तरह से करने की ज़रूरत है, और वह हमें शरीर की स्वाभाविक दशा को ला देगा—हमें अच्छा स्वास्थ्य और बल देगा और हमें बलवान, स्वस्थ और स्वाभाविक मनुष्य बना देगा।"

रात को सोने के समय योगी लोग एक ग्लास पानी पी लेते हैं, इस पानी को देह-यंत्र खींच लेता है और रात में इसे शरीर की सफ़ाई के काम में लाता है; रद्दियात मूत्र के साथ सबेरे बाहर निकाल दिए जाते हैं। एक ग्लास पानी वे सबेरे जगते ही पी लेते हैं, इसका विचार यह है कि भोजन के पहले यह आमाशय को साफ़ कर देता है और जो तलछट और रद्दी उसमें रात को जमा हो रहते हैं उन्हें धो डालता है। वे प्रत्येक भोजन के पहले भी एक-एक प्याला पानी पी लेते हैं और थोड़ी मुलायम कसरत भी कर लेते हैं, इससे यह विश्वास करते हैं कि पाचन अवयव भोजन के लिये तैयार हो जावेंगे और स्वाभाविक भूख जग उठेगी। भोजन के समय भी थोड़ा पानी पी लेने में वे नहीं डरते (इसको पढ़ते हुए बहुत-से स्वास्थ्याचार्य भयभीत हो उठेंगे) परंतु इस बात से सावधान रहते हैं कि उनका भोजन पानी से धो न जाय। पानी से भोजन को भीतर निकलने में केवल लार ही जलमिश्रित नहीं हो जाता, किंतु, जब तक भोजन भीतर जाने के लिये तैयार नहीं रहता तभी भीतर चला जाता है और योगी की भोजन मसलनेवाली क्रिया में बाधा पहुँचाता है (उस विषय के अध्याय को देखो)। योगियों का विश्वास है कि इसी भाँति भोजन के साथ पानी पिया हुआ हानिकारक होता है और इसी कारण से भी—नहीं तो प्रत्येक भोजन के साथ वे थोड़ा पानी पी लेते हैं कि आमाशय में भोजन मुलायम हो जाय और वह थोड़ा पानी आमाशयिक द्रव आदि को निर्बल नहीं बनाता।

बहुत-से हमारे पाठक गंदी अँतड़ियों के साफ़ करने में गरम पानी की महिमा को समझते होंगे। हम ऐसी आवश्यकता के अनुसार गरम पानी के प्रयोग को अच्छा समझते हैं, परंतु हमारा ख़्याल है कि अगर हमारे शिष्य जीवन के योगी विधान का सावधानी से बर्ताव, जैसा इस किताब में दिया गया है, करेंगे तो उनका आमाशय

गंदा ही न होगा कि उसे साफ़ करने की आवश्यकता पड़े उनका आमाशय अच्छा स्वस्थ रहेगा। विचार-पूर्वक भोजन करने की आदत के प्रारंभ में गंदे आमाशयवाले मनुष्य को इस प्रकार गरम पानी के प्रयोग से लाभ हो जायगा। इसका सर्वोत्तम तरीक़ा यह है कि एक पाइंट पानी सबेरे नाश्ता के पहले अथवा दूसरे भोजनों के एक घंटा पहले धीरे-धीरे चूसकर पी लिया जाय, यह पाचन के अवयवों में मांसपेशियों की क्रिया को उत्तेजित करेगा, जिससे देह-यंत्र में एकत्रित हुआ मल उसमें से बाहर निकलने की चेष्टा करेगा जिसको गरम पानी से ढीला और पतला कर दिया है। परंतु यह अल्प ही काल के लिये उपाय है। प्रकृति का उद्देश सर्वदा गरम पानी पीने का नहीं है और स्वस्थ दशा में वह साधारण ठंडा पानी चाहती है—और स्वास्थ्य को क़ायम रखने के लिये वैसे ही पानी की ज़रूरत है— परंतु जब प्रकृति के नियमों के उल्लंघन से स्वास्थ्य बिगड़ गया हो, तो गरम पानी अच्छा है कि फिर प्राकृतिक मार्ग पर आने के पहले सफ़ाई कर ली जाय।

हम इस अध्याय के अन्य भागों में स्नान और पानी के ऊपरी प्रयोग के विषय में और अधिक कहेंगे—यह अध्याय पानी के भीतरी ही प्रयोग के विषय में है।

पानी के ऊपर लिखे हुए गुणों, कार्यों और प्रयोगों के अतिरिक्त हम यह भी कहेंगे कि पानी में प्राण की मात्रा भी अधिक हुआ करती है, जिसके एक भाग को वह शरीर में छोड़ देता है, यदि शरीर को आवश्यकता हो और शरीर तलब करे। कभी-कभी मनुष्य को एक प्याला पानी की आवश्यकता केवल उत्तेजना ही के लिये हो जाती है—कारण यह है कि किसी वजह से प्राण की साधारण सुहइया कम पड़ जाती है और प्रकृति यह समझकर कि जल से शीघ्रता और आसानी से प्राण मिल सकता है, पानी माँगती है।

आप सब लोग स्मरण करेंगे कि कभी-कभी एक प्याला पानी पी लेने से चित्त कैसा उत्तेजित और ताज़ा हो जाता है और कैसे आप फिर अपने काम में लग जाने के योग्य हो जाते हैं। जब आप सुस्ती मालूम करें तो पानी को न भूलें। यदि योगियों की श्वास क्रिया के संबंध में इसका प्रयोग किया जाय तो यह मनुष्य को अन्य उपायों की अपेक्षा शीघ्रतर ताज़ी शक्ति देगा।

पानी चूसने के समय क्षण-भर उसे मुँह ही में थाँभ लीजिए और तब पी जाइए। जिह्वा और मुँह की नाड़ियाँ सबसे प्रथम और शीघ्रता से प्राण खींचनेवाली होती हैं, और यह तरीक़ा बहुत लाभदायक होगा विशेष करके जब मनुष्य थक गया हो। यह स्मरण रखने योग्य बात है।

तेरहवाँ अध्याय

शरीर-यंत्र की राख और कुज़्ला

यह अध्याय आप लोगों में से उन मनुष्यों को जो अब भी शरीर या उसके किसी अंग की नापाकीज़गी और अश्लीलता के ख़यालात से बद्ध हैं—यदि हमारे शिष्यों में भी संयोग से ऐसे मनुष्य हों—यह अध्याय अरुचिकर जँचेगा। आप लोगों में से वे मनुष्य जो पार्थिव शरीर की कुछ प्रधान क्रियाओं के अस्तित्व पर ध्यान देना नहीं चाहते, और इस ख़याल पर कि कुछ शारीरिक क्रियाएँ प्रतिदिन के जीवन की एक अंग हैं लज्जा मानते हैं, उनको यह अध्याय अरुचिकर प्रतीत होगा, और वे इस अध्याय को इस पुस्तक का कलंक समझेंगे। ऐसी बात कि जिसको छोड़ ही देना अच्छा था, जिस पर ध्यान ही नहीं देना उचित था। उन लोगों में से हमारा यह कहना है कि हम पुरानी कहानी के उस शुतुरमुर्ग़ की राय के अनुसरण करने में कोई लाभ नहीं देखते (किंतु बड़ी हानि देखते हैं), जिसने अपने व्याधों के भय से अपने सिर को बालू में गाड़ दिया था, और अनिष्ट बात को आँख की ओट कर दिया था, और उनकी उपस्थिति पर ध्यान ही नहीं दिया था कि व्याधे उसके पास पहुँच गए और उसे पकड़ लिए। हम लोग कुल शरीर और उसके कुल भागों तथा क्रियाओं का इतना आदर करते हैं कि उनमें कोई नापाक या अस्वच्छ बात नहीं देखते। और हम इन क्रियाओं के विषय में विचार करने या बातचीत करने में घृणा करने की राय में सिवा मूर्खता के और कुछ नहीं देखते। असुखकर विषयों से मुँह फेर लेने के रिवाज का यह परिणाम हुआ है कि मानव जाति के बहुत-से मनुष्य उन

बीमारियों और अस्वस्थ दशाओं को भोग रहे हैं, जो उनकी इसी मूर्खता के कारण उपस्थित हो गई हैं। जो लोग इस अध्याय को पढ़ेंगे, उनमें से बहुतों को हमारा कथन एक नए ज्ञान का उदय होगा—दूसरे लोग जो इन बातों से पहले ही से अभिज्ञ हैं, वे इस किताब में सच्ची बातों के उद्‌घाटन का स्वागत करेंगे, यह समझते हुए कि बहुतों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित होने से उनका भला हो जायगा। हमारा अभिप्राय देह-यंत्र की राख, शरीर से निकले हुए पुरीष के विषय में साफ़-साफ़ बातें करने का है।

ऐसी साफ़-साफ़ बातों की आवश्यकता है, यह बात इसी से प्रमाणित होती है कि आजकल के मनुष्यों के तीन चौथाई, थोड़ा या बहुत बद्धकोष्ठ की बीमारी और उसके दुःखदायी परिणामों को भोगते हैं। यह बात प्रकृति के विपरीत है और इसका कारण इतनी आसानी से दूर किया जाता है कि मनुष्य आश्चर्य करने लगता है कि क्यों ऐसी दशा क़ायम रक्खी जाती है। इसका एक ही उत्तर हो सकता है इसके कारण और इसके निवारण से अनभिज्ञता। यदि हम मनुष्य की इस विपत्ति के दूर करने के कार्य में सहायक हो सकें, और इस प्रकार मनुष्यों को प्रकृति के मार्ग पर पुनः लौटा लाने से स्वाभाविक दशा के स्थापित करने में समर्थ हो सकें, तो हम उन लोगों के, जो इस अध्याय से घृणा करते हैं और इससे मुँह फेर लेते हैं, घृणाव्यंजक नाक-भौं सिकोड़ने पर ध्यान न देंगे—और इन्हीं मनुष्यों को इस विषय के उपदेश की सबसे अधिक आवश्यकता है।

जो लोग इस पुस्तक के पाचनेंद्रियों-संबंधी अध्याय को पढ़े हैं, वे स्मरण करेंगे कि हमने इस विषय को उस स्थान पर छोड़ दिया था, जहाँ भोजन पतली अँतड़ियों में पहुँच गया था और उसमें का रस देह-यंत्र द्वारा खींचा जा रहा था। अब आगे हम इस बात को

देखेंगे कि जब देह-यंत्र यथासाध्य कुल पोषणकारी रस को खींच लेता है, तब भोजन की सीठी का क्या होता है—उस पदार्थ का जिसे देह-यंत्र काम में नहीं ला सकता।

ठीक इसी जगह यह कह देना मुनासिब होगा कि जो लोग योगियों के तरीक़े से अपने भोजन को खाते हैं, जैसा इस किताब के अन्य अध्यायों में बतलाया गया है, उनके भोजन की सीठी उन मनुष्यों की सीठी की अपेक्षा जिनका भोजन थोड़ा ही बहुत पाचन और अपनाने के योग्य बनकर आमाशय में पहुँचाता है, मिक़दार में बहुत कम होगी। मामूली मनुष्य अपने भोजन का कम-से-कम आधा भाग सीठी के रूप में निकाल देता है—परंतु जो लोग योगी तरीक़े का अनुसरण करते हैं, उनकी सीठी बहुत ही थोड़ी और मामूली मनुष्यों की सीठा की अपेक्षा बहुत कम बदबूदार होती है।

अपने विषय को ख़ूब समझने के लिये हमें शरीर के उन अवयवों को अच्छी तरह जान लेना चाहिए जिन्हें यह काम करना पड़ता है। बड़ी अँतड़ी या मलाशय वह अंग है जिस पर ध्यान देना होगा। मलाशय एक लंबी नाली है, जो क़रीब-क़रीब पाँच फ़ीट लंबी होती है और जो पेट में दाहनी ओर नीचे से ऊपर उठती है और ऊपर-ही-ऊपर बाईं ओर ऊपर जाती है, तब बाईं ही ओर नीचे जाती है और यहाँ पर यह मोड़ खाती है और कुछ पतली हो जाती है और अंत में मल फेंकने के द्वार, गुदा में समाप्त हो जाती है।

पतली अँतड़ी खाए हुए भोजन की लुगदी को इस बड़ी अँतड़ी या मलाशय में, दाहनी ओर नीचे की तरफ़ एक किवाड़दार द्वार से छोड़ देती है; यह किवाड़दार द्वार ऐसा बना रहता है कि उसमें से चीज़ें निकल तो सकती हैं, पर उसमें प्रवेश नहीं पा सकतीं। कीड़े की शकल का मांसखंड, जहाँ एपेंडिसिटिस-नामक बीमारी होती है, इसी द्वार के नीचे रहता है। पेट में दाहनी ओर मलाशय

सीधा ऊपर जाता है, तब मुड़कर ऊपर-ही-ऊपर बाईं ओर जाता है, तब बाईं ही ओर सीधा नीचे आता है, जहाँ एक विशेष प्रकार का मोड़ होता है, वहाँ से कुछ पतला होकर (जिसे पतली नाली कहते हैं) गुदा में पहुँचता है, यही शरीर का वह छिद्र है, जहाँ से मल बाहर हो जाता है।

मलाशय एक बड़ी मलवाहिनी नाली है, इस मल को साफ़ तौर से बाहर निकाल बहाना चाहिए। प्रकृति का उद्देश है कि मल बहुत जल्द निकाल दिया जाय और मनुष्य अपनी नैसर्गिक अवस्था में, जानवरों की भाँति, इस मल को बहुत शीघ्र ही निकाल बहाता है। परंतु ज्यों-ज्यों वह अधिक सभ्य होता जाता है, त्यों-त्यों उसे मल के बहा देने में कम सुविधा होती जाती है और इसलिये वह प्रकृति के हुक्म की पाबंदी को मुल्तवी कर देता है; अंत में वह हुक्म देते-देते थक जाती है, तब अपने अनेक कामों में से किसी दूसरे काम में लग जाती है। मनुष्य इस अस्वाभाविक अवस्था को, पानी पीना कम करके और भी बढ़ा देता है और मल को मुलायम, नम, ढीला बनाने के निमित्त ही आवश्यक पानी में कमी नहीं करता, किंतु, शरीर-भर में पानी की इतनी कमी कर देता है कि प्रकृति निराश होकर शरीर के अन्य भागों में थोड़ा बहुत पानी पहुँचाने के लिये इसी मलाशय के रहे-सहे थोड़े पानी को मलाशय की दीवारों द्वारा खींचने लगती है। जब चश्मे का पानी नहीं पाती, तब गंदी मोरियों ही के पानी से काम निकालती है। नतीजे की कल्पना आप ही कीजिए। मनुष्य जो इस मलाशय के मल को, पानी कम कर देने के कारण, निकाल नहीं सकता, उसी का परिणाम बद्ध-कोष्ठ होता है और यह बद्धकोष्ठ अनेक अस्वस्थताओं का उत्पत्ति-स्थान है, जिसकी वास्तविक दशा पर किसी का ध्यान नहीं पहुँचता। बहुत-से मनुष्य, जिनका प्रतिदिन मलविसर्जन भी होता है, कोष्ठ-

बद्ध के रोग में फँसे रहते हैं, यद्यपि उनको इसकी ख़बर भी नहीं रहती। मलाशय की दीवारों में जमा हुआ सख़्त मल जकड़कर चिपट जाता है और कुछ तो वहाँ बहुत दिनों से चिपटा पड़ा है; जकड़कर चिपटे हुए मल के बीच में एक छोटे छिद्र द्वारा प्रतिदिन के मल का थोड़ा भाग बाहर निकल जाया करता है। बद्धकोष्ठ उस रोग को कहते हैं, जिसमें मलाशय पूरा साफ़ और चिपटे हुए मल के कारण निर्बाध नहीं रहता।

जब मलाशय पुराने चिपटे हुए मल से भर जाता है, या अंश-मात्र भी भर जाता है, तो वह कुल शरीर के लिये विष उत्पन्न करता है। मलाशय की दीवारें होती हैं, जो मलाशय की चीज़ों का रस खींचा करती हैं। डॉक्टरी के बर्तावों से प्रत्यक्ष है कि मलाशय में दवा छोड़ने से वह सब शरीर में पहुँच जाती है। इस प्रकार दवा छोड़ी हुई शरीर-यंत्र के दूसरे भागों में पहुँच जाती है और जैसा पहले कहा गया है, मल के द्रव भाग को देह-यंत्र खींच लेता है; मोरी का गंदा जल प्रकृति के काम में, शरीर में स्वच्छ जल कम पहुँचाने के कारण, लाया जाता है। कोष्ठबद्ध मलाशय में कितने दिनों तक पुराना मल ठहरेगा, जल्दी विश्वास में नहीं आता। ऐसी घटनाएँ लिखी हुई मिलती हैं कि जब मलाशय की सफ़ाई की गई है, तब उसमें से बहुत महीनों पहले खाए हुए फलों के बीज मल के साथ निकले हैं। रेचक औषधियों से ऐसे पुराने और सख़्त लिपटे हुए मल नहीं निकलते, क्योंकि रेचक औषधियाँ केवल आमाशय और पतली अँतड़ियों के द्रव्यों को ढीला करती हैं, और मलाशय में चिपटे हुए पुराने सख़्त मल के बीच से होकर उन्हें निकाल देती हैं। कुछ मनुष्यों के मलाशय में तो पुराने मल जमा होकर मुलायम पत्थर के कोयले की भाँति सख़्त हो गए रहते हैं, यहाँ तक कि उनका पेट भी फूल जाता और सख़्त हो जाता है। यह पुराना मल

कभी इतना बुरा हो जाता है कि इसमें कीड़े पड़ जाते हैं और उसी में अंडे देते और वृद्धि करते हैं। जो मल पतली अँतड़ियों से मलाशय में आता है, वह गाढ़ी लेई की भाँति होता है और यदि मलाशय साफ़ और चिकना हुआ और गति स्वाभाविक हुई, तो ज़रा-सा और ठोस और हलके रंग का होकर उसे शरीर के बाहर हो जाना चाहिए था। मलाशय में जितनी ही देर मल रहता है, उतना ही सख़्त और सूखा होता जाता है और उतना ही उसका रंग भी गाढ़ा हो जाता है। जब काफ़ी पानी नहीं पिया जाता और प्रकृति के तक़ाज़े को फ़ुरसत के वक़्त के लिये मुल्तवी कर दिया जाता है और फिर भुला दिया जाता है, तब सूखने और सख़्त होने की क्रिया प्रारंभ हो जाती है। और जब बहुत देर के पश्चात् मल त्यागने की रस्म अदा की जाती है, तो मल का एक भाग बाहर जाता है, शेष मलाशय में चिपटने के लिये रह जाता है। दूसरे दिन थोड़ा और भी मल इसमें चिपट जाता है और इसी भाँति हुआ करता है, जब तक कि जीर्ण बद्धकोष्ठ की बीमारी नहीं हो जाती, और उसके अनुयायी रोग जैसे बदहज़मी, पित्ताधिकता, यकृत्रोग, गुर्दे की बीमारियाँ आदि नहीं हो जातीं—वस्तुतः इस मलाशय की गंदी अवस्था से सभी बीमारियों को तेज़ी पहुँचती है और बहुत-सी बीमारियाँ तो ख़ास इसी कारण से पैदा ही होती हैं। स्त्री रोगों में आधे तो इसी अवस्था द्वारा संवर्धित या उत्पन्न होते हैं।

इस मल को देह-यंत्र के रुधिर में खिंच जाने के दो तरीक़े होते हैं, पहले तो देह-यंत्र की पानी पाने की इच्छा; दूसरे प्रकृति का जी तोड़कर उद्योग कि मल को खींचकर पसीने, गुर्दों और फेफड़ों की राह निकाल दे। प्रकृति के इस प्रकार उस मल के दूर करने के उद्योग का, जो मलाशय द्वारा दूर होना चाहिए था, परिणाम दुर्गंध पसीना और दुर्गंध साँस हुआ करते हैं। प्रकृति इस मल के भीतर

रहने की बुराइयों को जानती है, और इसलिये इस मल को दूसरे मार्गों से निकालने का प्रखर उद्योग करती है, चाहे इस उद्योग से रुधिर और शरीर अर्द्धविषाक्त ही क्यों न हो जायँ। मलाशय की इस दुरवस्था ही के कारण अनेक बीमारियाँ और पीड़ाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, इसका सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि जब कारण एक बार दूर कर दिया जाता है (अर्थात् मलाशय साफ़ कर दिया जाता है), तो मनुष्य ऐसी-ऐसी बीमारियों से अच्छे होने लगते हैं, जिनका ज़ाहिरा कुछ भी संबंध कारण से नहीं था। मलाशय की दुरवस्था के कारण जो बीमारियाँ पैदा होती और बढ़ती हैं, उनके अलावे यह बात भी बहुत ही सत्य है कि ऐसे मलाशयवाले के शरीर में छूत की बीमारियाँ और टीफ़ाइड ज्वर आदि की बीमारियाँ बहुत दौड़ती हैं; क्योंकि उनका ऐसा बुरा मलाशय इन बीमारियों के कीटाणुओं के अनुकूल शरीर को बना देता है। जो मनुष्य अपने मलाशय को साफ़ रखता है, उसको इन बीमारियों में पड़ने का बहुत ही कम भय रहता है। तनिक कल्पना तो कीजिए कि यदि हम म्युनिसिपैलिटी की गंदी मलप्रवाहिनी मोरियों की गंदगी को अपने शरीर के भीतर भर लें, तो क्या परिणाम हो—क्या यह कोई आश्चर्य की बात है कि जिस गंदगी के बाहर पड़े रहने से बीमारियाँ फैलती हैं, वही गंदगी नस-नस में फैली रहे और बीमारी न हो। मेरे दोस्तो, अक़्ल से काम लीजिए।

अब हम समझते हैं कि हमने बहुत-सी विपत्तियों के कारण (गंदे मलाशय) के विषय में बहुत कुछ कह दिया, (हम इस विषय में और भी कड़ी-कड़ी बातों से सैकड़ों सफ़हे भर दें पर) शायद आप ऐसी दशा में आ गए हैं कि पूछें—"अच्छा मैं विश्वास करता हूँ कि ये सब बातें सही हैं और जो बात मुझे तकलीफ़ दे रही है, वह बात बहुत समझ में आ गई, परंतु इस गंदगी को दूर

करने और स्वाभाविक दशा प्राप्त करने के लिये हमें क्या करना चाहिए ?" अच्छा, हमारा उत्तर यह है—"पहले तो आप मल के अस्वाभाविक ज़ख़ीरे को दूर कीजिए तब प्रकृति के पथ का अनुसरण करके अपने को मधुर, साफ़ और स्वस्थ बनाइए। हम इन दोनों बातों के करने की तरकीब बताने का यत्न करेंगे।"

यदि मलाशय में थोड़ा मल जमा है, तो मनुष्य उसे पानी पीने में अधिकता करके और मल त्यागने की स्वाभाविक गति, इच्छा और आदत को उत्तेजित करने से और मलाशय के देहाणुओं की चेतनता पर असर पहुँचाने से (जैसा आगे वर्णन होगा) दूर कर सकता है। परंतु उन मनुष्यों में से जो मन-ही-मन हमसे यह प्रश्न कर रहे हैं, आधे से अधिक ऐसे हैं, जिनके मलाशय थोड़ा बहुत पुराने, सख़्त, चिपटे हुए, हरे रंग के उस मल से भरे हुए हैं जो वहाँ महीनों, बल्कि और भी अधिक समय से पड़ा है; इनके लिये तो विशेष उपाय बतलाना पड़ेगा। इस विपत्ति को बुलाने में चूँकि वे प्रकृति के पथ से दूर चले गए हैं, इसलिये हमें पहले प्रकृति को सहायता पहुँचानी चाहिए, जिससे अब तो उसे काम करने के लिये साफ़ मलाशय मिले। उपाय के इशारे के लिये जानवर-योनि में ढूँढ़ना चाहिए। सैकड़ों वर्ष हुए कि भारतवर्ष के निवासियों ने देखा कि एक प्रकार की लंबी टाँगोंवाली चिड़िया—जिसके बड़े-बड़े चोंच थे—बड़ी दूर की यात्रा करके बड़ी बुरी अवस्था में लौट आई थी, जिसका कारण या तो कोष्ठबद्ध उत्पन्न करनेवाले फलों का खाना या जहाँ गई थी वहाँ पीने के पानी की कमी थी—संभव है कि दोनों बातें रही हों। ऐसी चिड़िया बहुत ही थकी हुई दशा में नदी के तीर पर पहुँची, जो निर्बलता के कारण अब उड़ भी न सकती थी। चिड़िया ने तब अपने चोंच और मुँह को नदी के पानी से भर लिया और तब चोंच को गुदा में डालकर उसमें पानी भरने

लगी, जिससे थोड़े ही अर्से में उसे आराम मिलने लगा। इस क्रिया को चिड़िया ने कई बार किया, जब तक उसकी अँतड़ी बिलकुल साफ़ न हो गई। तब अच्छी तरह बैठकर आराम करने लगी जब तक उसमें फिर जीवट न आ गया; फिर नदी से ख़ूब पानी पी-कर दृढ़ और चंचल बनकर उड़ गई।

कुलपतिओं और पुरोहितों ने जब इस घटना को और चिड़ियों पर उसके आश्चर्यजनक प्रभाव को देखा, तो इस विषय में विचार करने लगे और किसी ने कहा कि इसकी परीक्षा वृद्ध मनुष्यों में से किसी पर की जानी चाहिए, जो परिश्रम की कमी और बैठे रहने की आदत से प्रकृति के सीधे मार्ग से विचलित हो गए थे और कोष्ठबद्ध के रोग में पड़ गए थे। अब उन लोगों ने पिचकारी की भाँति का एक औज़ार डंटी में सूराख़-वाली घास का बनाया और इसके द्वारा कोष्ठबद्धवाले वृद्धों की अँतड़ी में पानी छोड़ने लगे। परिणाम बड़ा आश्चर्यजनक हुआ। वृद्ध मनुष्यों को मानो जीवन का नया पट्टा मिल गया, उन लोगों ने नई दुलहिन से विवाह किया और वे कुल के उद्यमों में लग गए और फिर उन्होंने कुलपति का भार अपने सिर ले लिया जिससे नवयुवकों को बड़ा आश्चर्य हुआ जो इनके जीवन से पहले बहुत निराश हो चुके थे। दूसरे कुलों के वृद्ध मनुष्यों तक ये समाचार पहुँचे और वे नवयुवकों के कंधों पर चढ़कर इनके पास आने लगे—और जब लौटे तब बिना सहायता के पैदल गए। तब का जो वर्णन सुनने में आता है उससे अनुमान होता है कि उनकी पिच-कारी की क्रिया बड़ी हिम्मत की रही होगी, क्योंकि उसमें बहुत अधिक पानी का वर्णन किया जाता है, और प्रयोग के समाप्त होने तक उनका मलाशय अच्छी तरह साफ़ हो जाता रहा होगा और ऐसी दशा का हो जाता रहा होगा कि उसमें

अब फिर विष का भय न रह जाता रहा होगा। परंतु हम उतने अधिक पानी के प्रयोग का उपदेश नहीं करते—स्मरण रखिए हम लोग तब के पुराने कुलवाले मनुष्य नहीं हैं।

हाँ, अस्वाभाविक दशा के कारण मलाशय के इन गंदे द्रव्यों को दूर करने के लिये प्रकृति को अस्थायी सहायता की आवश्यकता पड़ती है और जसे मल को दूर करने के लिये लंबी चोंचोंवाली चिड़ियों और हिंदू-कुलपतियों के उदाहरण को, इस बीसवीं शताब्दी के परिष्कृत औज़ारों द्वारा, अनुसरण करना ही सर्वोत्तम उपाय है। जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह एक रबर की सस्ती पिचकारी है। यदि आपके पास एनिमा-नामक पिचकारी हो, तो और भी अच्छी बात है, नहीं तो मामूली ही पिचकारी से, जिसमें रबर का नुल्ला लगा हो, काम निकल सकता है। एक पाइंट गरम पानी लीजिए—इतना गरम हो कि जिसे हाथ आराम से सह सके। पानी को पिचकारी द्वारा मलाशय में छोड़िए। कुछ अर्से तक मलाशय में पानी को रोके रहिए और तब शरीर से निकाल डालिए। इस अभ्यास के लिये रात का समय बहुत अच्छा है। दूसरी रात दो पाइंट गरम पानी लीजिए और उसका भी वैसे ही प्रयोग कीजिए। तब एक रात नागा कर दीजिए और बादवाली रात में तीन पाइंट पानी लीजिए। तब दो रात नागा कीजिए और तीसरी रात को ४ पाइंट पानी लीजिए। शनैः-शनैः आपको मलाशय में पानी रोकने का अभ्यास हो जायगा और अधिक पानी से मलाशय ख़ासी तौर से साफ़ हो जायगा। थोड़ा पानी पहले से ढीले मल को धो डालेगा और सख़्त मल को दीवारों से छुड़ाकर उसे खंड-खंड कर देगा। चार पाइंट अर्थात् दो क्वार्ट पानी से भय मत खाइए। आपका मलाशय इससे भी अधिक पानी धारण कर सकता है; कोई-कोई मनुष्य तो चार क्वार्ट पानी ले लेते हैं, परंतु हम इतने पानी को अतिशय समझते

हैं। पानी लेने के पहले और पीछे पेट को मलिए और जब क्रिया समाप्त हो जाय, तो योगी की पूरी साँस का अभ्यास कर डालिए, जिससे आपको उत्तेजना मिल जाय और रुधिर-संचार में सौम्य आ जाय।

इन प्रयोगों से जो मल निकलेगा, वह नाज़ुक दिमाग़-वालों को बहुत ही अरुचिकर होगा, परंतु प्रश्न तो मल को सर्वदा के लिये दूर कर देने का है। इस प्रयोग से जो मल पहले आता है, वह बहुत ही दुर्गंध और घृणोत्पादक होता है, परंतु, जैसा-कैसा क्यों न हो, शरीर के भीतर रखने की अपेक्षा तो इसे बाहर ही निकाल देना अच्छा है। यह भीतर रहेगा, तो भी उतना ही ख़राब रहेगा, जितना बाहर निकलने पर है। हम ऐसी घटनाओं को भी जाने हुए हैं, जिनमें बहुत मल के बड़े-बड़े टुकड़े, सख़्त और हरे, जैसे तूतिया के खंड हों, मनुष्यों के शरीर से निकले हैं, और इतनी बदबू उसमें से निकली है, जिससे पक्का प्रमाण मिल गया है कि इसके भीतर रहने से कितनी हानि हो गई होगी। नहीं, यह चित्त प्रसन्न करने-वाला पाठ नहीं है, परंतु यह पाठ भी आवश्यक है कि आप भीतरी सफ़ाई की महिमा को समझ जायँ। आपको ऐसा जान पड़ेगा कि जिस सप्ताह में आपने मलाशय को साफ़ किया है, उस सप्ताह में आपको स्वाभाविक मल त्यागने की हाजत कम या बिलकुल नहीं हुई है। इसकी कुछ चिंता नहीं है, क्योंकि पानी ने उस मल को धो बहाया है, जिसे आप मल त्यागने के समय निकालते। जब मल की सफ़ाई की क्रिया समाप्त हो जावेगी, तो उसके दो या तीन दिन पश्चात् आपको स्वाभाविक रीति से मल त्यागने की इच्छा होने लगेगी।

अब इसी जगह हम आपका ध्यान इस बात की ओर दिलाते हैं कि हम सर्वदा लगातार पिचकारी के प्रयोग का उपदेश नहीं

देते—हम इसको स्वाभाविक आदत नहीं समझते, और हमारा यह विश्वास है कि यदि स्वाभाविक आदतों ही का अवलंबन किया जायगा, तो स्वाभाविक रीति से मल का त्यागना हुआ करेगा और पिचकारी के प्रयोग की आवश्यकता ही न पड़ेगी। हम पिछले ही जमा हुए मल की सफ़ाई के लिये पिचकारी के प्रयोग का उपदेश करते हैं। महीने में एक बार यदि मल के बटुरने को रोकने के लिये पिचकारी ले ली जाय, तो उसमें हम हानि नहीं देखते। अमेरिका में बहुत-से ऐसे स्वास्थ्य-संप्रदाय हैं, जो सर्वदा पिचकारी के प्रयोग करने का उपदेश देते हैं। हम उनसे सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि हमारा सिद्धांत यह है कि "प्रकृति के पथ पर लौट आओ" और हमारा विश्वास है कि प्रकृति नित्य का पिचकारी का प्रयोग नहीं चाहती। योगियों का विश्वास है कि काफ़ी ताज़ा शुद्ध पानी पिया जाय, नियमानुकूल मल त्यागा जाय और मलाशय से कुछ "बात कह" ली जाय, तो बद्धकोष्ठ से बचे रहने के लिये जो कुछ आवश्यक है, सभी हो जाय।

एक हफ़्ते की पिचकारी (धौति) क्रिया के पश्चात् (और उससे पहले भी) अच्छी तरह से पानी पीना प्रारंभ करो, जैसा हम उस विषय के अध्याय में कह आए हैं। प्रतिदिन दो क्वार्ट पानी पिया करो, इससे तुम्हें उन्नति दिखाई देने लगेगी। समय नियत करके उसी समय पर नित्य मल त्यागने के निमित्त जाया करो चाहे हाजत मालूम होती हो या न मालूम होती हो। धीरे-धीरे आपकी आदत स्थिर हो जायगी, क्योंकि प्रकृति आदत डालने की बड़ी उत्सुक रहती है। संभव है कि आपको मल त्यागने की आवश्यकता हो पर वह आपको मालूम न पड़ती हो; क्योंकि आपने तो बार-बार लापरवाही करके वहाँ की चेतना नाड़ी को मृतप्राय कर दिया है, इसलिये आपको नए सिरे से फिर प्रारंभ करना

पड़ेगा । इस बात को भूलिए मत—यह सीधी परंतु कारगर बात है ।

जब आप पानी पीने लगें, तब स्वतः सूचना दिया करें, तो उसे लाभकर पावेंगे । मन-ही-मन यों कहिए, "हम इस पानी को इस-लिये पी रहे हैं कि यह हमारे शरीर-यंत्र में आवश्यक द्रव उपस्थित करे । यह हमारी अँतड़ियों को प्रकृति के उद्देश के अनुसार स्वतंत्रता से और नियमित रूप पर संचालित करेगा ।" आप अपने देह-यंत्र में जो कार्य साधा चाहते हों, उसका ध्यान बनाए रखिए, तो जल्द ही फल सिद्ध होगा ।

अब एक ऐसी बात है, जो आपको जब तक आप उसके पूरे विव-रण को न समझेंगे, फ़ज़ूल-सी मालूम हो सकती है । (हम यहाँ उसकी क्रिया-मात्र देते हैं, और उसके विवरण को आगे अन्य अध्याय में समझावेंगे) । यह मलाशय से "बात कहना" है । पेट पर, मलाशय के स्थानों पर हाथ से मुलायम थापियाँ दो और उससे कहो, (हाँ, बातें करो) "देखो मलाशय, हमने तुम्हारी अच्छी तरह से सफ़ाई कर दी है, और तुम्हें साफ़ और ताज़ा बना दिया है—हम तुम्हें उचित रीति से अपना काम करने के लिये पानी दे रहे हैं—हम नियमित आदतें डाल रहे हैं, जिनसे तुम्हें काम करने का पूरा अवसर मिले—और अब तुम्हें काम करने में लग जाना चाहिए ।" मलाशय के स्थान पर कई बार थापियाँ दीजिए और कहा कीजिए "अब तुम्हें करना ही पड़ेगा ।" और तुम्हें मालूम होगा कि मलाशय उसे कर डालेगा । शायद यह बात आपको लड़कों की खेल-सी प्रतीत होती है—आप इसके अर्थ को तब सम-झेंगे, जब आप अस्वायत्त अवयवों के शासन-विषयक अध्याय को पढ़ेंगे । यह वैज्ञानिक बात के सिद्ध करने का सीधा उपाय है—प्रबल शक्ति को प्रचालित करने की सरल रीति है ।

अब मेरे मित्रो, यदि आप कोष्ठबद्ध के रोग को भोगे हैं, और कौन नहीं भोगे हैं, तो आप ऊपर लिखी सलाह को लाभदायक पावेंगे। इससे फिर वही गुलाबी कपोल और सुंदर चमड़े हो जायँगे—इससे सूखापन, वह ख़ारदार ज़बान, वह दुर्गंध श्वास, वह दुःखदायी यकृत् और भरे मलाशय से जो-जो बीमारियों का परिवार उठ खड़ा होता है—वह अवरोधित नाली, जो सब दोषों की मूल है—सब दूर हो जावेंगे। इस क्रिया की परीक्षा कीजिए, तो आप जीवन का सुख भोगने लगेंगे और स्वाभाविक स्वच्छ तथा स्वस्थ मनुष्य हो जायँगे। अब समाप्ति के समय अपने ग्लास को चमकते साफ़ ठंढे पानी से भर लीजिए और इस स्वास्थ्य-प्रार्थना में सम्मिलित हो जाइए "यह स्वास्थ्य के लिये—पुष्कल स्वास्थ्य के लिये है।" और ज्यों-ज्यों धीरे-धीरे पानी को पीजिए, मन-ही-मन यों कहते जाइए "यह पानी हमारे लिये स्वास्थ्य और बल का लानेवाला है—यह स्वयं प्रकृतिदत्त पुष्टिकर औषधि है।"

चौदहवाँ अध्याय

योगियों की श्वासक्रिया

जीवन बिलकुल श्वास लेने की क्रिया पर अवलंबित है। "श्वास ही जीवन है।"

पूर्वीय और पश्चिमीय लोग विचारों और नामावलियों में चाहे कितना ही भेद करें, पर इन मूल-तत्त्वों में दोनों सहमत हैं।

श्वास ही लेना जाना है, और श्वास के विना जीवन नहीं है। केवल उच्च योनि ही के जंतु जीवन और स्वास्थ्य के लिये श्वास पर अवलंबित नहीं रहते, किंतु नीच योनि के जंतुओं को भी जीवन के लिये श्वास लेना पड़ता है, और पौधों को भी अपनी लगातार सत्ता रखने के लिये हवा के आश्रित होना पड़ता है।

नवजात शिशु एक लंबी गहरी साँस खींचता है, उसे एक क्षण उसकी प्राणदायिनी शक्ति ग्रहण करने के लिये रोक रखता है, और तब फिर लंबी प्रश्वास द्वारा उसे बाहर निकाल देता है, और अहा! उसका इस पृथ्वी पर का जीवन शुरू हो जाता है। वृद्ध मनुष्य निर्बल श्वास देता है, श्वास लेना बंद कर देता है और उसका जीवन समाप्त हो जाता है। नवजात शिशु की पहली साँस से लेकर मरते हुए मनुष्य की अंतिम साँस तक साँस लेने की लगातार कहानी रहती है। जीवन श्वासों ही की एक श्रृंखला है।

श्वास लेना, शरीर की क्रियाओं में से, सर्वप्रधान क्रिया समझी जा सकती है, क्योंकि वस्तुतः अन्य सभी क्रियाएँ इसी के आश्रित रहती हैं। मनुष्य विना खाए कुछ समय तक रह सकता है; उससे भी लघुतर समय तक विना पानी पिए रह सकता है; परंतु

विना श्वास लिए उसका जीवन केवल कतिपय क्षण ही द्वारा नापा जा सकता है।

मनुष्य जीवन के लिये श्वास पर ही अवलंबित नहीं रहता, किंतु वह सही साँस लेने की आदत पर अवलंब करता है कि जिससे लगातार जीवट और रोगों से छुटकारा बना रहे। अपने श्वास लेने की शक्ति पर विचार-पूर्वक अधिकार रखने से इस भूमि पर के हमारे आयु के दिन बढ़ जायँगे, क्योंकि हमें अधिक जीवट और रोगों से मुक़ाविला करने की शक्ति मिलती रहेगी; और इसके विपरीत अविचार और असावधानी की साँस से जीवट घट जाने के कारण और रोगों के लिये द्वार खुले रहने से आयु के दिन घट जाते हैं।

मनुष्य को उसकी स्वाभाविक अवस्था में श्वासक्रिया की शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। नीच जंतुओं और बच्चों की भाँति, वह स्वाभाविक और उचित रीति से साँस लेता था, परंतु सभ्यता ने उसे इस और अन्य विषयों में बिलकुल बदल दिया है। उसने चलने, खड़ा होने और बैठने की अनुचित रीतियों को धारण कर लिया है, जिन्होंने उसके स्वाभाविक और सही तरीक़े से साँस लेने के नैसर्गिक अधिकार को उससे छीन लिया है। उसने सभ्यता का महँगा मूल्य दिया है। जंगली मनुष्य आज भी स्वाभाविक रीति से साँस लेता है, यदि सभ्य मनुष्य की सभ्यता की छूत से वह भी कलंकित न हो गया हो।

उन सभ्य मनुष्यों की औसत, जो सही साँस लेते हैं, बहुत थोड़ी है, और इसका परिणाम संकुचित छातियों, झुके हुए कंधों, और श्वास लेने के अवयवों की भयंकर बीमारियों की वृद्धि में, जिसमें वह संघातक राक्षस भी शामिल है, जिसे क्षयी कहते हैं, घोषित होता है। प्रख्यात प्रमाण पुरुषों ने कहा है कि सही साँस

लेनेवालों की एक पीढ़ी भी मानवजाति का उद्धार कर दे, और बीमारी इतनी विरल हो जाय कि वह आश्चर्य की दृष्टि से देखी जाने लगे, चाहे यह पूर्वी या पश्चिमी दृष्टि से देखा जाय, सही साँस लेने और स्वास्थ्य का संबंध तुरत देखने में और समझ में आ जाता है।

पश्चिमी शिक्षा बतलाती है कि शारीरिक स्वास्थ्य बहुत कुछ सही साँस लेने पर अवलंबित है। पूर्वी आचार्य केवल यही नहीं स्वीकार करते कि उनके पश्चिमी भाई सही हैं, किंतु कहते हैं कि उचित साँस लेने की आदत से शारीरिक लाभों के अतिरिक्त मनुष्य की मानसिक शक्ति, उसका सुख आत्माधिकार स्वच्छ दृष्टि, सदाचार, और यहाँ तक कि उसकी आध्यात्मिक उन्नति भी श्वास-विज्ञान को समझ लेने से हो सकती है। पूर्वीय दर्शन के संप्रदाय के संप्रदाय इस विज्ञान के आधार पर स्थापित हुए हैं, और इस विद्या को यदि पश्चिमीय जातियाँ ग्रहण करेंगी और अपने विशेष गुण के कारण इसे कार्यरूप में परिणत करेंगी, तो उनमें आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न कर देंगी। पूर्व देश के मंत्र पश्चिम के प्रयोग से जब मिलेंगे, तो बड़ा ही उत्तम फल होगा।

इस जगह योगियों के श्वास-विज्ञान का वर्णन किया जायगा, जिसमें केवल उतनी ही विद्या नहीं है, जो पश्चिमी शरीर-शास्त्रियों और स्वास्थ्याचार्यों को ज्ञात है, किंतु इसमें योग का गूढ़ विषय भी है। यह केवल शारीरिक स्वास्थ्य के मार्ग को उसी तरीक़े से नहीं बतलाती, जिसे पश्चिमी वैज्ञानिक गहरी साँस आदि कहते हैं, परंतु ऐसी तहों में भी प्रवेश करती है, जो बहुत कम लोगों को ज्ञात हैं।

योगी ऐसे अभ्यासों को करता है, जिससे उसे शरीर पर अधिकार प्राप्त हो जाता है और वह इस योग्य हो जाता है कि किसी इंद्रिय या

भाग में जीवनशक्ति या प्राण को अधिक प्रवाह के साथ भेज सकता है और उस इंद्रिय या भाग को अधिक दृढ़ और बलवान् बना सकता है। वह सही साँस लेने के विषय में उन सब बातों को जानता है जिन्हें उसके पश्चिमी भाई जानते हैं, परंतु, वह यह भी जानता है कि हवा में आक्सीजन, हैड्रोजन और नैट्रोजन के अलावे कुछ चीज़ और भी है, और रुधिर में केवल आक्सीजन मिश्रित करने के सिवाय कुछ और बात भी सिद्ध की जाती है। वह प्राण के विषय में भी कुछ जानता है, जिससे उसका पश्चिमी भाई अनभिज्ञ है, और वह उस महत्शक्ति तत्त्व के प्रयोग की प्रकृति और रीति को बहुत अच्छी तरह जानता है, और उसे पूरा ज्ञान है कि उस प्राण का प्रभाव मानव शरीर और मन पर कैसा पड़ता है। वह जानता है कि तालयुक्त श्वास (प्राणायाम) द्वारा मनुष्य प्रकृति के कंप में अपने को मिला सकता है और अपनी गुप्त शक्तियों के विकाश में सहायता पहुँचा सकता है। वह जानता है कि सुनियमित श्वास द्वारा वह अपनी और अन्यों की केवल बीमारियों ही को नहीं दूर कर सकता, किंतु, भय और क्रोध आदि दुर्वृत्तियों को भी दूर कर सकता है।

श्वास के विषय के विचार में पहले हमको उस यंत्र की कारीगरी-युक्त रचना पर ध्यान देना होगा, जिसके द्वारा श्वास की गति संचालित होती है। श्वासक्रिया की कारीगरी, (१) फेफड़ों की आकुंचन और प्रसारण की गति और (२) छाती के उस खोखले की बग़लों और तह की क्रिया से, जिसमें फेफड़े रहते हैं, द्योतित होती है। छाती, गले और पेट के बीच के पिंड का वह भाग है जिसके खोखले में (जिसे छाती का खोखला कहते हैं) हृदय और फेफड़े होते हैं। यह रीढ़ की हड्डी, पसलियों और उनको जोड़नेवाली मुलायम हड्डियों (कुर्री), सीने की

हड्डी और नीचे पेट और छाती को पृथक् करनेवाली मांस की चद्दर से घिरा होता है। इसकी उपमा सब ओर से बंद कुब्बेदार बकस से दी गई है, जिसका कुब्बा ऊपर की ओर होता है, पीछा रीढ़ की हड्डी से बनता है, आगा छाती की हड्डी से और बग़लें पसलियों से बनती हैं।

पसलियाँ संख्या में २४ होती हैं, प्रत्येक बग़ल में बारह-बारह और रीढ़ की हड्डी की दोनों ओर से निकलती हैं। ऊपरी ७ जोड़ियाँ तो सच्ची पसलियाँ कही जाती हैं, जो सीधे छाती की हड्डी से जुटी होती हैं; और निचली पाँच जोड़ियाँ झूठी पसलियाँ या हिलने-डोलनेवाली पसलियाँ कही जाती हैं, क्योंकि ये उस प्रकार जुटी नहीं होतीं; इनमें का भी दो ऊपरवाली तो मुलायम हड्डी (कुर्री) द्वारा अन्य पसलियों से जुटी होती हैं; शेष में कुर्री भी नहीं होती और उनके अगले सिरे बिलकुल छुट्टे होते हैं।

श्वासक्रिया में पसलियाँ ऊपरी दो तह मांसपेशियों से संचालित होती हैं। छाती और पेट के बीचवाली मांस की चद्दर, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है, छाती के खोखले को पेट से पृथक् करती है।

श्वास भीतर खींचने की क्रिया में मांसपेशियाँ फेफड़ों को फैला देती हैं, जिससे फेफड़ों में रिक्तस्थान उत्पन्न हो जाता है, और उस स्थान को भरने के लिये प्रख्यात भौतिक नियम के अनुसार बाहर से हवा भीतर आती है। श्वास लेने में जिन मांसपेशियों का काम पड़ता है, उन्हीं पर प्रत्येक श्वास-विषयक बात अवलंबित है, इसलिये उन मांसपेशियों को हम सुविधा के लिये "श्वासवाली मांसपेशियाँ" कह सकते हैं। बिना इन मांसपेशियों की सहायता के फेफड़े फैल नहीं सकते, और इन्हीं मांसपेशियों के उचित प्रयोग और उन्हें अपने आयत्त में रखने पर, श्वास-विज्ञान अधिकतर अवलंबित है। इन मांसपेशियों को उचित रीति से अपने आयत्त में

रखने से फेफड़ों को उनका चरम सीमा तक फैला सकते हैं और इस तरह हवा के प्राणदायक गुणों को अधिक-से-अधिक मात्रा में इस देह-यंत्र के लिये ग्रहण कर सकते हैं।

योगी लोग श्वासक्रिया को चार साधारण तरीक़ों में बाँटते हैं, अर्थात्—

(१) उच्च श्वासक्रिया।
(२) मध्य श्वासक्रिया।
(३) नीची श्वासक्रिया।
(४) योगी की पूर्ण श्वासक्रिया।

हम पहले तीन तरीक़ों को साधारण वर्णन कर देंगे और चौथे तरीक़े का, जिसके आधार पर योगी का श्वास-विज्ञान स्थापित है, अधिक विस्तार से वर्णन करेंगे।

(१) ऊंची साँसक्रिया

इस प्रकार की साँस को पश्चिमी लोग हँसली की हड्डी की साँस कहते हैं। इस प्रकार से साँस लेनेवाला मनुष्य पसलियों को उठा देता और हँसली की हड्डी और कंधों को ऊपर उभाड़ देता है, साथ ही पेट को भीतर खींच लेता है, और उसमें की चीज़ों को ऊपर खींचकर छाती और पेट को पृथक् करनेवाली चद्दर से भिड़ा देता है, जो चद्दर भी ऊपर खिंच जाती है।

छाती और फेफड़ों का ऊपरी भाग, जो सबसे छोटा होता है, काम में लाया जाता है, और इसलिये कम-से-कम मात्रा में हवा फेफड़ों में जाती है। इसके अतिरिक्त मांस की चद्दर का ऊपर उठ जाने से उस ओर फैलाव नहीं हो सकता। छाती की बनावट को अध्ययन करने से मनुष्य के चित्त पर यह बात बैठ जावेगी कि इस प्रकार श्वास लेने में अधिक-से-अधिक परिश्रम के प्रयोग से कम-से-कम लाभ होता है।

ऊँची श्वासक्रिया मनुष्य की जानी हुई क्रियाओं में से सबसे निकृष्ट है और इससे अधिक-से-अधिक शक्ति ख़र्च करने की आवश्यकता पड़ती है और थोड़ा-से-थोड़ा लाभ होता है। यह शक्ति बरबाद करनेवाला और कम लाभ देनेवाला तरीक़ा है। यह पश्चिमी जातियों में बहुत प्रचलित है; बहुत-सी औरतें इसी श्वास में मुब्तिला हैं; और गवैए, पादरी, वकील और दूसरे लोग, जिन्हें बेहतर ज्ञान होना चाहिए था, वे भी मूर्खता से इसी तरीक़े को बर्तते हैं।

शब्दोत्पादक अवयवों और श्वास के अवयवों की बहुत-सी बीमारियाँ इसी बुरे तरीक़े से साँस लेने का सीधा नतीजा है; और इस रीति से साँस लेने में नाज़ुक अवयवों पर जो-जो तनाव पड़ता है, उससे वे कड़ी और बुरी आवाज़ें पैदा होती हैं, जो चारो ओर सुनाई दिया करती हैं। बहुत-से मनुष्य, जो इस प्रकार साँस लेते हैं, मुँह से साँस लेने की बुरी आदत में पड़ जाते हैं, जिसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

यदि शिष्य को कुछ भी संदेह इस प्रकार साँस लेने के विषय में कही हुई बातों पर हो तो उसे स्वयं परीक्षा कर लेनी चाहिए। पहले वह फेफड़ों में से सब हवा निकाल दे, तब सीधा खड़े होकर, जिसमें हाथ बग़लों में लटकते रहें, कंधों और हँसली की हड्डी को ऊपर उठावे और फिर साँस ले। उसे मालूम होगा की साँस ली हुई हवा की मिक़दार मामूली मिक़दार से बहुत ही कम है। अब फिर कंधों और हँसली की हड्डी को गिराकर साँस ले तब उसे श्वास लेने में ऐसी स्पष्ट शिक्षा मिल जायगी जिसे वह छपे और बोले हुए शब्दों द्वारा प्राप्त शिक्षा की अपेक्षा बहुत दिन तक स्मरण रख सकेगा।

(२) मध्य साँसक्रिया

साँस लेने के इस तरीक़े को पश्चिमी विद्वान् पसली की साँस

कहते हैं; और यह यद्यपि ऊँची साँस की अपेक्षा कम आपत्तिजनक है तो भी नीची साँस और योगी की पूर्ण साँस की अपेक्षा तो बहुत ही ख़राब है। मध्य श्वास में छाती और पेट के बीच की चद्दर ऊपर खिंच जाती है, और पेट भीतर खिंच जाता है। पसलियाँ कुछ ऊपर उठती हैं और छाती कुछ थोड़ी फैल जाती है। यह तरीक़ा उन मनुष्यों में पाया जाता है जिन्होंने इस विषय का अध्ययन नहीं किया है। चूँकि इससे बेहतर दो तरीक़े और हैं इसलिये इस तरीक़े का बहुत थोड़ा ही वर्णन किया गया है और वह भी इसलिये कि आपका ध्यान उसकी त्रुटियों पर आकर्षित हो।

(३) नीची साँस

साँस लेने का यह तरीक़ा पहले कहे हुए दोनों तरीक़ों से बहुत ही अच्छा है और हाल सालों में बहुत-से पश्चिमी लेखकों ने इसकी बड़ी महिमा गाई है और इसकी प्रशंसा "पेट की साँस", "गहरी साँस" आदि नामों से की है; और लोगों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित होने से लाभ भी बहुत हुआ है, क्योंकि बहुत-से लोग जो पहले ऊपर लिखी हुई दोनों रीतियों से साँस लेते थे, अब इस रीति से साँस लेने लगे। इसी नीची साँस के आधार पर बहुत-से नए तरीक़े निकाले गए और शिष्यों को इन नए (?) तरीक़ों के लिये कड़ी क़ीमतें भी देनी पड़ीं। परंतु, जैसा हम कह आए हैं, इससे लाभ बहुत हुआ है, और अंत में उन शिष्यों को, जिन्होंने महँगी क़ीमतें दीं, और निकृष्ट रीति को त्याग कर अच्छी रीतियों को धारण किया, क़ीमत के अनुसार लाभ मिल गया।

यद्यपि बहुत-से पश्चिमी विद्वान् इस तरीक़े को सर्वोत्तम तरीक़ा लिखते और कहते हैं, परंतु योगी इसे जानते हैं कि यह उस तरीक़े का एक अंग-मात्र है, जिसे वे सैकड़ों वर्ष से अभ्यास करते आते हैं, और जिसे "योगी की पूरी साँस" कहते हैं। यह बात स्वीकार करने

के योग्य है कि पूरी साँस को समझने के पहले नीची साँस से अभिज्ञ हो जाना ही चाहिए।

एक बार फिर पेट और छाती को पृथक् करनेवाली चद्दर पर ध्यान दीजिए। यह क्या है? हम लोग देख आए हैं कि यह एक मांसपेशी है जो पेट और उसके पदार्थों को छाती और उसके पदार्थों से पृथक् करती है। जब यह स्थिर रहती है तो पेट की ओर से देखने में आसमान की भाँति या छाता की तरह दिखलाई देती है; इसलिये यदि ऊपर छाती की ओर से इस पर दृष्टि डाला जाय तो यह कुब्बेदार अर्थात् उभड़े हुए टीले की भाँति दिखाई देती है। जब यह चद्दर काम करने लगती है तो कुब्बा नीचे को दबता है और चद्दर पेट के अवयवों को दबाती है जिससे पेट कुछ आगे उभड़ आता है।

नीची साँस लेने में ऊपर लिखे हुए पहले तरीक़ों से साँस लेने की अपेक्षा फेफड़ों को और भी स्वतंत्रता से काम करना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि अधिक हवा साँस में जाती है। इसी से अधिकतर पश्चिमी विद्वान् इसी नीची साँस को (जिसे वे पेट की साँस कहते हैं) वैज्ञानिक सर्वोत्तम तरीक़ा कहते और लिखते हैं। परंतु पूर्वीय योगी बहुत दिनों से इससे भी अच्छे तरीक़े को जानता है और कुछ पश्चिमी लेखक भी अब इस बात को समझने लगे हैं। योगी की पूरी साँस को छोड़कर अन्य रीतियों में यह एक बड़ा दोष है कि किसी तरीक़े में भी फेफड़ा हवा से भर नहीं जाता—ज़ियादा-से-ज़ियादा फेफड़ों का एक भाग-मात्र भरता है—यहाँ तक कि नीची साँस में भी। ऊँची साँस से फेफड़ों का ऊपरी भाग भरता है; मध्य साँस से मध्य भाग और कुछ ऊपरी भाग भरता है; नीची साँस से नीचेवाले और बीचवाले हिस्से भरते हैं। यह बात प्रकट है कि जिस तरीक़े से सारा फेफड़ा हवा से भर जाय वह तरीक़ा अन्य तरीक़ों की अपेक्षा अधिक पसंद करने के योग्य है। जिस तरीक़े से

सारा फेफड़ा हवा से भर जाय वह तरीक़ा अधिक-से-अधिक आक्सीजन उपस्थित करने और अधिक-से-अधिक प्राण संचित करने के कारण मनुष्य के लिये अत्यंत हितकर है। योगी लोग जानते हैं कि पूरी साँस की रीति विज्ञान की जानी हुई सब रीतियों में सर्वोत्तम है।

(४) योगी की पूरी सांस

योगी को पूरी साँस में ऊँची, मध्य और नीची तीनों प्रकार की साँसों के अच्छे गुण हैं और यह साँस तीनों प्रकार की साँसों के दोषों से बची हुई है। यह रीति साँस लेने के सारे यंत्र, फेफड़ों के प्रत्येक भाग, हवा को प्रत्येक कोठरी, और श्वास की प्रत्येक मांसपेशी को काम में लगा देती है। समस्त श्वास लेने का यंत्र, साँस की इस रीति से संचालित हो जाता है; और कम-से-कम शक्ति के व्यय से अधिक-से-अधिक लाभ होता है। छाती का खोखला चारों ओर अपनी चरम सीमा तक फैल जाता है, और यंत्र के सब भाग अपने-अपने स्वाभाविक कर्तव्यों और क्रियाओं को करते हैं।

इस प्रकार साँस लेने में सबसे बड़ा यह गुण है कि श्वास लेने की मांसपेशियाँ पूरे तौर से काम में लगाई जाती हैं; और अन्य तरीक़ों में उनके एक भाग-मात्र प्रयोग में आते हैं। पूरी साँस लेने में और मांसपेशियों में वे मांसपेशियाँ जिनका अधिकार पसलियों पर रहता है, ज़ोर से काम करती हैं, जिससे अवकाश बढ़ जाता है कि फेफड़े फैल सकें, और अवयवों को मुनासिब सहारा, आवश्यकता पड़ने पर, मिल जाता है। कुछ मांसपेशियाँ तो निचली पसलियों को उनके स्थान पर पकड़े रहती हैं, और कुछ उन्हें बाहर की ओर दबाती हैं।

और फिर इस रीति में पेट और छाती के बीचवाली चद्दर पूरे

आयत्त में रहती है और अपने कार्यों को उचित रूप पर और इस भाँति करती है कि अधिक-से-अधिक कार्य हो सके।

ऊपर लिखी हुई पसलियों की क्रिया में नीचे की पसलियाँ इसी चद्दर द्वारा अधिकृत रहती हैं, जो उन्हें थोड़ा नीचे खींचती है और अन्य मांसपेशियाँ उन्हें अपने स्थान पर पकड़े रहती हैं और पसलियों के बीच की मांसपेशियाँ उन्हें बाहर की ओर प्रेरित करती हैं; इस संयुक्त क्रिया से छाती के बीच का खोखला पूरा-पूरा बढ़ जाता है। इस मांसपेशीक्रिया के अतिरिक्त ऊपर की पसलियाँ भी पसलियों की बीचवाली मांसपेशियों द्वारा ऊपर को उठाई और बाहर की ओर फैलाई जाती हैं जिससे ऊपरी छाती का विस्तार भी पूरी हद तक फैल जाता है।

यदि आपने चारो प्रकार की श्वासक्रियाओं की विशेषताओं को अच्छी तरह अध्ययन कर लिया है, तो आपको तुरंत मालूम हो जायगा कि पूरी साँस में शेष तीनों प्रकार की क्रियाओं की ख़ूबियाँ आ जाती हैं और इनके अतिरिक्त यह लाभ होता है कि छाती के ऊपरी, मध्य, और नीचेवाले भागों की संयुक्त क्रिया से और भी लाभ बढ़ जाता है और स्वाभाविक ताल प्राप्त हो जाता है।

योगियों की पूरी साँस समस्त श्वास-विज्ञान की मूलाधार श्वास-क्रिया है और शिष्य को इससे भली भाँति अभिज्ञ हो जाना चाहिए और इसे पूरी तरह से सिद्ध कर लेना चाहिए तभी वह आगे लिखी हुई अन्य क्रियाओं से फल प्राप्त करने की आशा कर सकता है। इसे अधूरा ही करने से संतुष्ट न हो जाना चाहिए, परंतु जी लगा कर अभ्यास करते रहना चाहिए, जब तक कि यह श्वास लेने का स्वाभाविक तरीक़ा न बन जाय। इसमें मिहनत, समय और धैर्य की आवश्यकता होगी; परंतु इन बातों के बिना तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। श्वास-विज्ञान का दूसरा कोई राजपथ नहीं है और शिष्य

यदि फल उठाना चाहता है तो उसे जी लगाकर इस क्रिया का अध्ययन और अभ्यास कर लेना चाहिए। श्वास-विज्ञान की क्रियाओं को सिद्ध कर लेने से महत् फल प्राप्त होता है और जिसने इस क्रिया को प्राप्त कर लिया है, वह इच्छा-पूर्वक अन्य तरीक़ों में फिर कभी न जायगा और अपने मित्रों से यही कहेगा कि "हमें अपने परिश्रम का पूरा फल मिल गया।" हम इन बातों को अभी कह देते हैं कि आप इस योगीश्वासक्रिया के सिद्ध करने की आवश्यकता और मुख्यता को पूरी तरह से समझ जायँ, और इसे छोड़कर इस किताब की आगे लिखी हुई क्रियाओं में से किसी चित्ताकर्षक क्रिया में न लिपट जायँ। हम फिर आपसे कहते हैं कि सही रीति से कार्य आरंभ कीजिए तो सही नतीजा मिलेगा; परंतु यदि आप नींव ही के साथ लापरवाही करेंगे तो आपका सारा भवन, शीघ्र ही या देर में, ढह जायगा।

योगियों की पूरी साँस कैसे प्राप्त की जाय इसकी शिक्षा देने के लिये यह बेहतर होगा कि पहले केवल श्वास ही के विषय में सरल उपदेश दे दिए जावें और तब इसके पश्चात् उसके संबंध में साधारण ध्यान देने योग्य बातें बतलावें और तब आगे चलकर छाती, मांसपेशियों और फेफड़ों को, जो अधूरी साँस लेने से संकुचित दशा में पड़े हुए हैं, पूरा विकसित करने के लिये अभ्यास अर्थात् कसरतें दें। ठीक इसी स्थान पर हम यह कह दिया चाहते हैं कि यह पूरी साँस ज़बरदस्ती की, या अस्वाभाविक बात नहीं है, किंतु, इसके विपरीत मूल नियमों पर लौटना, प्रकृति के मार्ग पर वापस आना है। स्वस्थ युवक जंगली और स्वस्थ सभ्यता का बच्चा दोनों इसी प्रकार साँस लेते हैं; परंतु सभ्य मनुष्य ने जीवन की अस्वाभाविक रीतियों को रहन, चलन और वस्त्र पहनने आदि में ग्रहण कर लिया है और अपनी नैसर्गिक स्थिति को खो दिया है। और

हम पाठकों को यह भी स्मरण दिलाया चाहते हैं कि पूरी साँस का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक श्वास में फेफड़े पूरी तरह से हवा से भरे जायँ। मनुष्य श्वास द्वारा हवा की साधारण ही मात्रा, इस पूरी साँस की क्रिया द्वारा खींचकर, चाहे हवा की मात्रा थोड़ी हो या बहुत हो, फेफड़े के सब भागों में वितरित कर सकता है। परंतु दिन में कई बार तो अवश्य, जब-जब अवसर मिले, शरीर-यंत्र को अच्छी तरतीब और दशा में रखने के निमित्त ख़ूब हवा भरकर पूरी-पूरी साँस लेना ही होगा।

नीचे लिखी हुई सादी कसरत से आपको साफ़ विदित हो जायगा कि पूरी साँस क्या चीज़ है—

(१) अकड़कर सीधे खड़े हो जाओ या बैठो। नाक के द्वारा धीरे-धीरे हवा भीतर खींचो, पहले फेफड़ों के नीचेवाले भाग को हवा से भरो, जो पेट और छाती को पृथक् करनेवाली चद्दर को काम में लाने से होता है, जिससे पेट के अवयवों पर थोड़ा दबाव पड़ता है और पेट का अगला भाग ज़रा बाहर आगे की ओर निकल आता है, तब फेफड़ों के मध्य भाग में, नीचेवाली पसलियों, छाती की हड्डी और छाती को फैलाकर हवा भरो। फिर ऊपरी छाती को आगे निकालकर, और इस तरह से छाती को ऊपर उठाकर जिसके साथ ऊपरी ६ या ७ जोड़े पसलियों के भी हों, फेफड़ों के ऊपरी भाग में हवा भरो। अंतिम क्रिया में पेट का नीचेवाला भाग कुछ भीतर की ओर दब जायगा, जिस गति से फेफड़ों को आधार मिल जायगा और फेफड़ों के ऊँचे-से-ऊँचेवाले भाग के भरने में भी सहायता मिल जायगी।

पहले पढ़ने में तो ऐसा मालूम होगा कि इस श्वास में पृथक् पृथक् तीन गति हैं। परंतु यह बात सही नहीं है। श्वास का खींचना लगातार होता रहता है, छाती का पूरा खोखला, नीचे दबी हुई पूर्व-कथित चद्दर से लेकर ऊपर छाती के सबसे ऊपरवाले

भाग तक, जो हँसली की हड्डी के स्थान में है, समगति से फैलता जाता है। हिचक-हिचककर साँस मत खींचना। धीमी लगातार एक क्रिया बनाने का यत्न करो। अभ्यास द्वारा, इस साँस की क्रिया को तीन भागों में बाँटने की इच्छा हट जायगी और एक रस लगातार साँस हो जायगी। थोड़े ही अभ्यास के बाद आप दो सेकंड में पूरी साँस भीतर खींच सकेंगे।

(२) श्वास को भीतर ही कुछ क्षण तक रोक रक्खो।

(३) छाती को स्थिर दशा में रखकर धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालो, श्वास बाहर निकलते समय ज्यों-ज्यों हवा बाहर निकले त्यों-त्यों पेट भीतर दबता जाय, जब हवा कुल निकल जाय छाती और पेट को ढीला कर दो। थोड़े अभ्यास से कसरत का यह भाग आसान हो जायगा; और जब एक बार गति प्राप्त हो जायगी तब पश्चात् तनिक इच्छा करने से यह आप-से-आप हुआ करेगी।

यह बात देखने में आवेगी कि साँस के इस तरीक़े से श्वास लेने का सारा यंत्र काम में लाया जाता है, और फेफड़ों के कुल भागों को जिनमें दूर-से-दूर की भी हवा की कोठरी शामिल है, कसरत मिल जाती है। छाती का खोखला चारो ओर फैल जाता है। आप यह भी देखेंगे कि पूरी साँस वस्तुतः नीची, मध्य और ऊँची तीनों साँसों की मिलावट है जो ऊपर दिए हुए क्रम से एक दूसरे के पश्चात् शीघ्रता से इस तरह जारी रहती है कि जिससे एक सम, लगातार, पूरी साँस बन जाती है।

यदि आप बड़े शीशे के सम्मुख इस श्वास का अभ्यास करेंगे तो आपको बड़ी सहायता मिल जावेगी, और यदि आप हाथों को पेट के ऊपर रक्खे रहेंगे तो आपको गति भी मालूम देगी। श्वास खींचने के अंत में कभी-कभी कंधों को थोड़ा ऊपर उठा देना अच्छा होता है, इस तरह हँसली की हड्डी उठ के जाने से दहने फेफड़े की

ऊपरी छोटी ललरी में भी हवा प्रवेश कर जाती है ; यही स्थान कभी-कभी ट्यूबरक्यूलोसिस (Tuber culosis)-नामक बीमारी के फैलने की जगह है।

अभ्यास के शुरू में पूरी साँस को प्राप्त करने में कुछ थोड़ी बहुत दिक़्क़त मालूम देगी, परंतु थोड़े ही अभ्यास से आप पक्के हो जायँगे ; और जब आप इसे एक बार प्राप्त कर लेंगे तब फिर साँस की पुरानी रीतियों में न जायँगे।

पंद्रहवाँ अध्याय

सही साँस लेने का प्रभाव

पूरी साँस लेने से जो लाभ होते हैं उनकी महिमा जितनी ही कही जाय थोड़ी है। जिस शिष्य ने पहले के सफ़हों को ध्यान से पढ़ लिया है उसको तो हम समझते हैं कि इन लाभों को गिनाने की शायद ही आवश्यकता हो।

पूरी साँस के अभ्यास से पुरुष या स्त्री क्षयी रोग और अन्य फेफड़ों के रोगों से निर्भय हो जाते हैं, सर्दी ज़ुकाम होने की संभावना ही नहीं रहती और इसी प्राकर श्वास की नलियों के रोगों का भय जाता रहता है। क्षयी रोग क्षीण जीवट के कारण, जो श्वास में कम हवा खींचने से हो जाता है, होता है। जीवट की क्षीणता से शरीर-यंत्र, कीटाणुओं के हमलों के लिये अपना द्वार खोल देता है। अधूरी साँस लेने से फेफड़ों का एक बड़ा भाग निष्क्रिय हो जाता है, और ऐसे ही भाग कीटाणुओं को न्योता देते हैं, जो पहले निर्बल रेशों पर हमला करके बहुत शीघ्र बर्बादी की धूम मचा देते हैं। फेफड़ों के अच्छे स्वस्थ रेशे कीटाणुओं से लड़ जाते हैं, और फेफड़ों के रेशों को अच्छे और स्वस्थ बनाने का एक-मात्र उपाय यही है कि फेफड़ों से समुचित कार्य लिया जाय।

क्षयी रोगवाले मनुष्य प्रायः सब संकीर्ण छाती के होते हैं। इसका क्या अर्थ है? इसका केवल यही अर्थ है कि ये मनुष्य अनुचित रीति से साँस लेने की आदत में पड़ गए थे और इसलिये इनकी छाती न तो विकसित हो सकी और न फैल सकी। जो मनुष्य पूरी साँस का अभ्यास रखता है उसकी पूरी चौड़ी छाती होती है, संकीर्ण

छातीवाला मनुष्य भी यदि इस रीति से साँस लेने का अभ्यास करेगा तो उसकी छाती भी विकसित होकर स्वाभाविक विस्तार को पहुँच जावेगी। ऐसे मनुष्य यदि अपने जीवन का आदर करते हैं तो उन्हें छाती के खोखले को विकसित करना चाहिए। जब कभी आपको मालूम हो कि आप अनुचित रीति से सर्दी खा रहे हैं और ज़ुकाम होने की संभावना है तो आप ख़ूब ज़ोर से पूरी साँस का अभ्यास करके ज़ुकाम को रोक सकते हैं। यदि बहुत सर्दी खा गए हों तो कुछ मिनट तक ख़ूब अच्छी तरह पूरी साँस लीजिए जिससे आपका सारा शरीर तमतमा जायगा। बहुत-से ज़ुकाम पूरी साँस और अधूरे भोजन द्वारा अच्छे किए जा सकते हैं।

रुधिर की उत्तमता अधिकांश उसकी फेफड़ों में उचित रीति से आक्सीजन से मिश्रित होने पर अवलंबित है, यदि उसमें आक्सीजन थोड़ी मात्रा में मिलता है तो वह ख़राब हो जाता है, और अनेक प्रकार की गंदगियों से भर जाता है, और शरीर-यंत्र पोषण के अभाव से हानि उठाता है और रुधिर से गंदगियों के न दूर होने के कारण वस्तुतः विषैला हो जाता है। चूँकि सारा शरीर, प्रत्येक इंद्रिय और प्रत्येक अवयव पोषण के लिये रुधिर पर अवलंबित हैं, इसलिये अस्वच्छ रुधिर का प्रभाव सारे शरीर-यंत्र पर अवश्य बहुत बुरा असर डालेगा। उपाय बहुत सरल है—योगी की पूरी साँस का अभ्यास कीजिए।

अनुचित साँस लेने से आमाशय और अन्य पोषण के अवयव हानि उठाते हैं। आक्सीजन की कमी के कारण केवल वे अपुष्ट ही नहीं रहते, किंतु, चूँकि पचने और शरीर में अपनाए जाने के पहले भोजन का रुधिर में से आक्सीजन लेना अत्यंत आवश्यक है, इसलिये यह बात स्पष्ट है कि अधूरी साँस से पाचन और अपनाने की क्रियाएँ कितनी निर्बल हो जाती हैं। और जब अपनाना अर्थात

रसग्रहण की क्रिया स्वाभाविक और ठीक नहीं रहती, तब शरीर के पोषण में दिन-पर-दिन कमी होती जाती है, भूख मंद पड़ जाती है, शारीरिक बल घट जाता है और शक्ति क्षीण हो जाती है और मनुष्य सूखने और हीन होने लगता है। ये सब बातें उचित साँस के अभाव से होती हैं।

अनुचित साँस से नाड़ियाँ अर्थात् ज्ञान और शक्ति के तंतु भी हानि उठाते हैं, क्योंकि मस्तिष्क, मेरुदंड, नाड़ीकेंद्र और स्वयं नाड़ियाँ भी, जब रुधिर द्वारा अधूरा पोषण पाती हैं तब शक्ति की धाराओं को उत्पन्न करने, संचय करने और प्रवाहित करने का अयोग्य औज़ार बन जाती हैं। और यदि पुष्कल आक्सीजन फेफड़ों द्वारा ग्रहण न किया जायगा तो वे अवश्य अपुष्ट रह जावेंगी। इस विषय का एक और भी पटल है कि यदि उचित साँस न ली जायगी तो नाड़ियों की शक्ति धाराएँ, बल्कि यों कहिए कि स्वयं वह शक्तियाँ जिनसे कि धाराएँ उत्पन्न होती हैं, क्षीण हो जाती हैं; परंतु यह एक पृथक् ही विषय है जिसका वर्णन इस किताब के अन्य अध्यायों में किया गया है; और यहाँ हमारा यह अभिप्राय है कि आपके ध्यान को इस बात की ओर आकर्षित करें कि अनुचित साँस के कारण नाड़ीजाल की कारीगरी शक्ति संचालन करने की क्रिया में असमर्थ होती जाती है।

पूरी साँस के अभ्यास करने के अभ्यास में श्वास द्वारा हवा भीतर खींचते समय, छाती और पेट को पृथक् करनेवाली चद्दर सिकुड़ती है और यकृत्, आमाशय तथा अन्य अवयवों पर हलका दबाव डालती है; जो क्रिया फेफड़ों की गति के ताल से मिलकर इन अवयवों को मुलायमियत से मर्दन किया करती है, और उनकी क्रियाओं को उत्तेजित करती है। और उनके स्वाभाविक कार्यों को उत्साहित करती है। प्रत्येक श्वास का खींचना इस भीतरी कसरत में सहायता

पहुँचाता है और पोषण तथा मलत्याग के अवयवों में स्वाभाविक रुधिर संचार करके मदद करता है। ऊँची और मध्य साँसों में इस भीतरी मर्दन के लाभों से अवयव वंचित ही रह जाते हैं।

आजकल पश्चिमी संसार शारीरिक शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दे रहा है, यह बड़ी अच्छी बात है। परंतु अपने इस प्रबल उत्साह में वह इस बात को न भूल जाय कि बाहरी ही मांसपेशियों की कसरत ही सब कुछ नहीं है। भीतरी अवयवों को भी व्यायाम की आवश्यकता है, और इस व्यायाम के लिये प्रकृति का उद्देश पूरी साँस का लेना है।

प्रकृति का प्रधान औज़ार, इस व्यायाम के लिये, छाती और पेट के बीचवाली मांस की चद्दर है। इसकी गति से पोषण और मलत्याग के प्रधान-प्रधान अवयव संचालित होते रहते हैं; और यह प्रत्येक श्वास और प्रश्वास में उन्हें दबाती और मर्दन करती है, उनमें रुधिर प्रवाहित करती और फिर निचोड़ डालती है, जिससे अवयवों में शक्ति भरी रहती है। कोई अवयव या शरीर का भाग क्यों न हो, यदि उसका व्यायाम न होगा तो वह शनैः-शनैः बेकाम हो जायगा, और अपना काम न करेगा; और चद्दर की क्रिया द्वारा भीतरी व्यायाम को न कराने से बीमारी की दशा उत्पन्न हो जाती है, पूरी साँस कथित चद्दर को मुनासिब हरकत देती है और मध्य तथा ऊपरी छाती को काम देती है। यह अपनी क्रियाओं द्वारा सच-मुच "पूरी" है।

केवल पश्चिमी ही शरीरशास्त्र की दृष्टि से, बिना पूर्वीय विज्ञान और दर्शनों के संबंध के, यह योगियों की पूरी साँस की क्रिया, प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के लिये, जो स्वास्थ्य को प्राप्त और संचित किया चाहता है, अत्यंत आवश्यक है। इसकी सरलता ही के कारण सहस्रों मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देते, और पेचीदे तथा

ख़र्चीले तरीक़ों से स्वास्थ्य की तलाश में भंडार का भंडार धन ख़र्च कर देते हैं। स्वास्थ्य तो द्वार पर उपस्थित है, और वे ध्यान नहीं देते। सच है जिस पत्थर को थवई अस्वीकार करता है, वही पत्थर स्वास्थ्य-मंदिर के प्रधान कोने पर का पत्थर है।

सोलहवाँ अध्याय

श्वास के अभ्यास

हम नीचे श्वास की तीन रीतियाँ बतलाते हैं, जो योगियों को बहुत प्यारी हैं। पहली तो विख्यात योगियों की, साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया है जिसके द्वारा योगियों के फेफड़े इतने सुदृढ़ और बलवान् हो जाते हैं। वे लोग इस साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया द्वारा प्रत्येक श्वास के अभ्यास को समाप्त करते हैं, और हमने इस किताब में इसी तरीक़े को अनुसरण किया है। हम योगियों के उस अभ्यास को भी देते हैं, जिससे नाड़ियों में शक्ति संचालित होती है, और जो अभ्यास युगों से उनमें प्रचलित चला आता है, और जिसमें पश्चिमी स्वास्थ्याचार्य लोग कुछ भी अधिक न जोड़ सके, यद्यपि कुछ लोगों ने योगाचार्यों से लेकर इसे अपनी पद्धति में मिला लिया है। हम योगियों की आवाज़ साफ़ करनेवाली कसरत को भी देते हैं, जो अच्छे पूर्वी योगियों की मधुर और प्रबल वाणी का कारण है। हम तो यह समझते हैं कि यदि इस किताब में इन तीन कसरतों के अलावा और कुछ न होता तो भी यह किताब हमारे शिष्यों के लिये बहुमूल्य होती। इन कसरतों को हमारी ओर से उपहार या प्रसाद समझकर ग्रहण कीजिए और इनका अभ्यास कीजिए।

योगी की साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया

योगी लोग एक प्रकार की श्वासक्रिया का, बड़े मन से, उस समय अभ्यास करते हैं जब उन्हें फेफड़ों को साफ़ करने या फेफड़ों

में हवा को प्रवाहित कर देने की आवश्यकता होती है। वे अपनी और श्वासक्रियाओं के प्रत्येक अभ्यासों के अंत में भी इसे करते हैं, और हमने इस किताब में इसी रीति का अनुसरण किया है। यह सफ़ाई की श्वासक्रिया फेफड़ों को साफ़ करती है और उनमें हवा प्रवाहित कर देती है; और यह फेफड़ों की हवावाली कोठरियों को उत्तेजित करती है और श्वास लेने के अवयवों को चौकन्ना बना-कर उनको स्वस्थ दशा में रखने की चेष्टा करती है। इन बातों के अतिरिक्त यह क्रिया सारे शरीर को बहुत ताज़ा कर देनेवाली पाई गई है। वक्ता लोगों और गवैयों के जब श्वास के अवयव थक जावें तब इसे वे बहुत सुखदायिनी पावेंगे।

(१) पूरी साँस भीतर खींचो।

(२) कुछ सेकंड तक हवा को भीतर ही रोक रक्खो।

(३) अपने ओठों को वैसा बना लो जैसा सीटी बजाने में बनाते हो (परंतु गालों को मत फुलाओ) तब ओठों के बीचवाले छिद्र से बड़े ज़ोर से थोड़ी हवा बाहर फेंको। क्षण-भर ठहर जाओ, हवा रोके रहो, और फिर थोड़ी और हवा ज़ोर से फेंको। तब तक थोड़ा रुक-रुककर यही क्रिया करते जाओ, जब तक कुल हवा निकल न जाय। याद रक्खो कि ओठों के बीच के छिद्र से हवा निकालने में बहुत बड़ा ज़ोर लगाना चाहिए।

जब मनुष्य थककर सुस्त हो गया हो उस समय यह क्रिया बहुत ही ताज़गी देनेवाली पाई जायगी। एक बार परीक्षा करने से शिष्य उसके गुणों को भली भाँति समझ जायगा। इस कसरत का तब तक अभ्यास करते जाओ जब तक यह स्वाभाविक रीति से और सरलता-पूर्वक न होने लगे; क्योंकि यह इस किताब में दी हुई अनेकों कसरतों में प्रत्येक के अंत में की जाती है, और इसलिये इसे बहुत अच्छी तरह से सिद्ध कर लेना चाहिए।

योगियों की नाड़ी-बलविधायिनी श्वासक्रिया

यह योगियों की भली भाँति जानी हुई कसरत है; वे इसे मनुष्य के लिये सबसे बड़ी नाड़ियों को उत्तेजित करनेवाली और शक्ति देने-वाली क्रिया (महौषधि) समझते हैं। इसका अभिप्राय नाड़ीजाल को उत्तेजित करना और नाड़ीबल शक्ति, तथा जीवट को विकसित और पुष्ट करना है। इस अभ्यास से नाड़ीकेंद्रों में उत्तेजक दबाव का प्रभाव पड़ता है, जिससे सारा नाड़ीजाल उत्तेजित और शक्तिसंपन्न हो जाता है, और जिससे सारे शरीर में नाड़ीबल का अधिक प्रभाव फैल जाता है।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) पूरी साँस खींचो और उसे रोक रक्खो।

(३) अपनी भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, वे कुछ ढीली रहें, बहुत तनी न रहें, उनमें केवल इतना ही बल दिया जाय कि वे फैली रहें।

(४) धीरे-धीरे हाथों को कंधों की ओर खींचो, शनैः-शनैः मांस-पेशियों को संकुचित करते जाओ और उनमें बल देते जाओ, जिससे कि कंधों तक पहुँचते-पहुँचते मुट्ठियाँ इतनी कड़ी बँध जायँ कि उनमें कँपकँपी की गति आ जाय।

(५) तब मांसपेशियों को कड़ी ही रक्खे हुए, मुट्ठियों को धीरे-धीरे आगे फैलाओ, और बड़ी तेज़ी से पीछे लाओ (कड़ी ही रक्खे हुए) ऐसा कई बार करो।

(६) मुँह की राह ज़ोर से हवा छोड़ दो।

(७) फेफड़ों को साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया कर डालो।

इस कसरत की ख़ूबी मुट्ठियों की पीछे खींचनेवाली तेज़ी पर, मांसपेशियों में लगाए हुए ज़ोर पर और फेफड़ों को हवा से भरे रहने पर अवलंबित है। इस कसरत की परीक्षा ही करने से इसकी

महिमा का अनुभव होगा। यह विश्राम देने में अद्वितीय है, जैसा कि पश्चिमी मित्र कहा करते हैं।

योगियों की वाणीविधायिनी श्वासक्रिया

योगी लोग वाणी शुद्ध करने के लिये भी एक रीति की श्वास-क्रिया करते हैं। वे अपनी आश्चर्यजनक आवाज़ के लिये विख्यात होते हैं, जो दृढ़, सुचिक्कन, साफ़ और तुरही के शब्द की भाँति दूर तक पहुँचनेवाली होती है। वे इसी विशेष रूप की श्वासक्रिया का अभ्यास किए हुए हैं जिससे उनकी आवाज़ मधुर, सुंदर लोचदार हो गई और उसमें वह वर्णनातीत विशेष प्रवाहिनी होने का गुण आ गया है और इतनी शक्ति भर गई है। नीचे दी हुई कसरत एक समय में उन सब गुणों को देवेगी यदि शिष्य जी लगाकर इस क्रिया का अभ्यास करेंगे। यह बात समझ रखना चाहिए कि इस रीति की श्वासक्रिया का कभी-ही-कभी अभ्यास करना चाहिए और इसे श्वास लेने का एक तरीक़ा ही न बना लेना चाहिए।

(१) पूरी साँस बहुत धीरे-धीरे पर लगातार नाक द्वारा खींचो, और श्वास खींचने में जितना समय लेते बने, लो।

(२) कुछ सेकंड तक उसे रोक रक्खो।

(३) बड़े ज़ोर से एक ही झोंके में कुल हवा ख़ूब मुँह फैलाकर छोड़ दो।

(४) साफ़ करनेवाली श्वासक्रिया द्वारा फेफड़ों को आराम दे दो।

बोलने और गाने में कैसे शब्द उत्पन्न किया जाता है उसके विषय में योगियों के गहन विचारों में प्रवेश न करके हम यह कहना चाहते हैं कि तजरबे से उन्हें विदित हुआ है कि आवाज़ का स्वर, राग और शक्ति केवल गले के शाब्दिक अवयवों ही पर अवलंबित नहीं हैं, किंतु, चेहरे की मांसपेशियाँ आदि भी इस विषय में अधिक

प्रभाव रखती हैं। बहुत-से चौड़ी छातीवाले केवल धीमी आवाज़ पैदा करते हैं और अन्य छोटी छातीवाले आश्चर्यजनक बल और गुण की आवाज़ पैदा करते हैं। यह एक मनोरंजक उदाहरण परीक्षा करने के योग्य है। एक आइने के सामने खड़े हो, और मुँह बटोरकर सीटी बजाओ और मुँह की सूरत और चेहरे की आकृति को स्मरण रक्खो, तब बोलो अथवा गाओ, जैसा तुम स्वभावतः बोला या गाया करते हो और तब उनके अंतर पर ध्यान दो। तब फिर कुछ क्षण तक सीटी बजाओ और तब बिना ओठों और चेहरे की स्थिति बदले हुए कुछ गाओ और देखो कि कैसा लचीला, मधुर, साफ़ और सुंदर स्वर उत्पन्न होता है।

नीचे लिखी हुई योगियों की सात कसरतें फेफड़ों, मांसपेशियों, ग्रंथियों और हवा की कोठरियों आदि को विकसित करनेवाली हैं। वे बहुत ही सरल पर आश्चर्यजनक रीति से लाभदायिनी हैं। इसकी सरलता के कारण तुम इनसे विमुख मत हो, क्योंकि ये योगियों की सावधानी की परीक्षाओं और अभ्यासों का प्रतिफल हैं और अनेक पेचीदा कसरतों का सारांश हैं; अनेक कसरतों के अनावश्यक भागों को छोड़कर केवल आवश्यक भागों से ही ये कसरतें बनी हैं।

(१) श्वास का रोकना

यह बहुत ही मुख्य कसरत है जो श्वास लेनेवाले अवयवों और फेफड़ों को विकसित और पुष्ट करती है और इसके अधिक अभ्यास से छाती भी फैलती है। योगियों को यह बात विदित हुई है कि कभी-कभी फेफड़ों को हवा से ख़ूब भरकर श्वास को रोक रखने से बड़ा ही लाभ होता है, केवल श्वास ही लेने के अवयवों को नहीं, किंतु, पोषण के अवयवों, नाड़ीजाल और रुधिर को भी। उन्हें यह विदित हो गया है कि श्वास को समय-समय पर रोक रखने से उस

हवा की सफ़ाई हो जाती है जो पहली साँसों की हवा फेफड़ों में शेष रह गई रहती है ; और रुधिर में अच्छी तरह से आक्सीजन मिश्रित हो जाता है। वे यह भी जानते हैं कि इस प्रकार से रोकी हुई हवा कुल रद्दी पदार्थों को बटोर लेती है और जब श्वास बाहर निकाली जाती है तो अपने साथ शरीर-यंत्र के इन निकम्मे द्रव्यों को बाहर लिए जाती है और फेफड़ों को उसी प्रकार साफ़ करती है जैसे अँत-ड़ियों को जुल्लाब साफ़ करता है। योगी लोग इस कसरत का उप-देश आमाशय, यकृत् और रुधिर के अनेक विकारों में करते हैं, और यह भी जाना गया है कि इससे साँस का बदबूपन, जो फेफड़ों में कम हवा जाने से उत्पन्न होता है, दूर हो जाता है। हम शिष्यों से आग्रह करते हैं कि वे इस अभ्यास पर अच्छी तरह से ध्यान दें क्योंकि इसमें बड़े-बड़े गुण हैं। नीचे लिखी हुई शिक्षाओं से इस क्रिया का साफ़ अनुभव होगा—

(१) सीधे खड़े हो।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो।

(३) तब तक श्वास को भीतर ही रोके रहो जब तक उसे आराम से रोक सको।

(४) खुले मुँह से श्वास को बाहर निकाल दो।

(५) साफ़ करनेवाली साँस की क्रिया कर डालो।

पहले तुम बहुत थोड़े अर्से तक श्वास को भीतर रोक सकोगे, परंतु थोड़े अभ्यास से तुम्हें बहुत उन्नति जान पड़ेगी। यदि अपनी उन्नति जानना चाहते हो तो घड़ी ले लो।

(२) फेफड़ों की कोठरियों को उत्तेजित करना

यह कसरत फेफड़ों की हवावाली कोठरियों को उत्तेजित करने के अभिप्राय से की जाती है; परंतु प्रारंभिक शिष्यों को इसमें अधिकता न करनी चाहिए और बड़े ज़ोर से तो इसे कभी भी न करना चाहिए।

किसी-किसी को पहले इस क्रिया से चक्कर आने लगेगा, ऐसी दशा में उन्हें कसरत छोड़कर थोड़ा उसी जगह टहल लेना चाहिए।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) धीरे-धीरे शनैः-शनैः श्वास भीतर खींचो।

(३) श्वास भीतर खींचते समय हाथों की अँगुलियों के छोरों से छाती को ज़रा-ज़रा ठोंकते जाओ और ठोकने के स्थान को बदलते रहो।

(४) जब फेफड़े भर जावें हवा को भीतर रोक रक्खो और छाती पर हथेलियों से धीरे-धीरे थापी दो।

(५) साफ़ करनेवाली क्रिया कर डालो।

यह कसरत सारे शरीर को सुख देनेवाली और उत्तेजित करनेवाली है और यह योगियों का विख्यात अभ्यासहै। अधूरी साँस लेने से फेफड़ों की बहुत-सी हवा की कोठरियाँ क्रियाहीन हो जाती हैं और इसी से मृतप्राय हो जाती हैं। जिसने बरसों से अधूरी साँस लिया है उसे इन सब बिगड़ी हुई हवा की कोठरियों से पूरी साँस द्वारा एकबारगी पूरा काम लेना और उन्हें कार्य में उत्तेजित करना बहुत सरल न होगा, परंतु इस कसरत से धीरे-धीरे वह अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। यह कसरत अध्ययन और अभ्यास के योग्य है।

(३) पसलियों को लचीली बनाना

हम समझा आए हैं कि पसलियाँ मुलायम हड्डी (कुर्री) द्वारा जोड़ी गई हैं, जिनमें बहुत फैलाव हो सकता है। उचित साँस लेने में पसलियाँ प्रधान काम करती हैं, और उन्हें कभी-कभी विशेष अभ्यास दे देने से और उनके लचीलेपन को ठीक रखने से अच्छा ही होगा। अस्वाभाविक रीति से और बैठने और खड़े होने के कारण, जैसा कि रिवाज हो गया है, पसलियाँ सख़्त और बेलचीली हो जाती हैं। इस कसरत से वह दोष दूर हो जायगा।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) हाथों को दोनों बग़लों पर एक-एक करके इतने ऊँचे काँखों के पास रक्खो जितने ऊँचे आराम से रख सको, अँगूठे पीछे की ओर हों, हथेलियाँ छाती की बग़लों पर हों और अँगुलियाँ आगे की ओर छाती पर हों।

(३) पूरी साँस भीतर खींचो।

(४) हवा को भीतर ही थोड़ी देर रोक रक्खो।

(५) तब धीरे-धीरे छाती को दबाना शुरू करो और साथ ही श्वास को भी छोड़ते जाओ।

(६) सफ़ाई की क्रिया कर डालो।

इस अभ्यास को थोड़ा ही करना, इसमें अधिकता न करना।

(४) छाती का फैलाना

अपने काम पर झुके रहने से छाती संकीर्ण हो जाया करती है, इस कसरत से स्वाभाविक दशा प्राप्त होती है और छाती फैलती है।

(१) सीधे खड़े हो।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो।

(३) हवा को भीतर ही रोक रक्खो।

(४) दोनों हाथों को आगे फैलाओ और दोनों बंद मुट्ठियों को कंधों की उँचाई के समान उँचाई पर रक्खो।

(५) ख़ूब झोंका देकर भुजाओं को सीधा पीछे बग़लों की ओर कंधों की सीध में लाओ।

(६) तब फिर स्थिति ४ में लाओ; फिर स्थिति ५ में ले जाओ। ऐसा कई बार करो।

(७) खुले मुँह से ज़ोर से साँस छोड़ दो।

(८) सफ़ाई की क्रिया कर डालो।

इसका कम-ही-कम अभ्यास करना, अतिशय न करना।

(५) टहलनेवाली कसरत

(१) सिर ऊँचा, ठुड्डी तनिक भीतर खिंची हुई, कंधे पीछे दबे हों ऐसी स्थिति में बराबर क़दमों से टहलो ।

(२) पूरी साँस भीतर खींचो, गिनते जाओ (मन-ही-मन) १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, एक गिनती एक क़दम पर जिससे ८ की गिनती तक श्वास का खींचना पूरा हो जाय ।

(३) नाक द्वारा धीरे हवा को छोड़ो, पहले की भाँति गिनते जाओ—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८—एक क़दम पर एक गिनती।

(४) श्वासों के बीच में बिना श्वास के रहो, चलना जारी रक्खो और गिनते जाओ १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ एक क़दम पर एक गिनती ।

(५) तब तक करते जाओ जब तक थकावट न मालूम होने लगे । फिर थोड़े अर्से तक आराम कर लो, और फिर ख़ुशी हो तो शुरू करो । दिन में कई बार ऐसा करो ।

कोई-कोई योगी १, २, ३, ४, की गिनती तक श्वास को भीतर ही रोके रहते हैं और फिर ८ तक की गिनती में छोड़ते हैं । जो तरीक़ा अधिक पसंद पड़े उसी का अभ्यास करो ।

(६) प्रातःकाल की कसरत

(१) जंगी तरीक़े से सीधे खड़े हो, सिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे दबे, घुटने कड़े और हाथ बग़लों में हों ।

(२) पैर की अँगुलियों पर धीरे-धीरे अपने शरीर को उठाओ, साथ-ही-साथ पूरी साँस भी भीतर खींचते जाओ ।

(३) श्वास को भीतर ही कुछ सेकंड तक रोक रक्खो, उसी स्थिति में बने रहो ।

(४) धीरे-धीरे पहली स्थिति में आओ, साथ ही धीरे-धीरे नाक द्वारा श्वास भी छोड़ते जाओ ।

(५) सफ़ाईवाली साँस की क्रिया कर डालो।

(६) कई बार इस क्रिया को करो, कभी अकेली बाईं टाँग से काम लो, कभी अकेली दाहनी टाँग से।

(७) रुधिरसंचार का उत्तेजित करना

(१) सीधे खड़े हो।

(२) पूरी साँस खींचो और रोको।

(३) थोड़ा आगे झुको और एक छड़ी या बेंत को दृढ़ता से पकड़ो, और शनैः-शनैः अपने कुल बल को उस पकड़ में लगा दो।

(४) पकड़ को छोड़ दो, पहली स्थिति में आ जाओ और धीरे-धीरे श्वास को छोड़ो।

(५) कई बार ऐसा करो।

(६) सफ़ाईवाली क्रिया से समाप्त कर डालो।

यह कसरत विना छड़ी और बेंत के भी हो सकती है; केवल कल्पित छड़ी को पकड़ो परंतु बल पूरा लगाओ। यह कसरत रुधिर-संचार को उत्तेजित करने के कारण योगियों को बहुत प्यारी है, क्योंकि इससे रुधिरापवाहक धमनियों का रुधिर छोरों की ओर दौड़ता है, और रुधिरोपवाहक शिराओं का रुधिर हृदय और फेफड़ों की ओर दौड़ता है, जिससे यह उस आक्सीजन को ग्रहण कर सके जो हवा के साथ श्वास द्वारा खींचा गया है। अधूरे संचार की दशा में फेफड़ों में पूरा रुधिर ही नहीं होगा कि जो आक्सीजन को ग्रहण कर सके और शरीर-यंत्र पूरी साँस का पूरा लाभ नहीं उठा सकता। ऐसी दशाओं में विशेष करके, इस कसरत का कभी-कभी पूरी साँस की कसरत के साथ अभ्यास कर लेना बहुत लाभदायक होगा।

सत्रहवाँ अध्याय

नाक और मुँह से श्वास लेना

योगियों के श्वासविज्ञान में पहली शिक्षाओं में सबसे प्रधान शिक्षा यह है कि नाक द्वारा सर्वदा साँस लेना चाहिए, और मुँह के द्वारा साँस लेने की आदत छोड़ देना चाहिए।

श्वास लेने के अवयव मनुष्य के शरीर में ऐसे बने हुए हैं कि वह नाक और मुँह दोनों द्वारों से साँस ले सकता है, परंतु किस द्वार से वह साँस ले यह विषय बहुत ही प्रधान है, क्योंकि एक द्वार से साँस लेने से तो स्वास्थ्य और बल का लाभ होता है और दूसरे द्वार से लेने से रोग और निर्बलता मिलती है।

मनुष्य के लिये साँस लेने का उचित तरीक़ा नाकों ही द्वारा साँस लेने का है, इस बात की शिक्षा देने की आवश्यकता न पड़ती, परंतु खेद है कि इस सीधी सादी बात में भी सभ्य मनुष्यों की मूर्खता आश्चर्यजनक है। हम सब प्रकार की जीविका के मनुष्यों में ऐसे मनुष्यों को पाते हैं जिनकी आदत मुँह ही से साँस लेने की है, और ये मनुष्य अपने बच्चों को भी मुँह से साँस लेने की पूरी इजाज़त-सा दे देते हैं जिससे उन्हें भी मुँह ही से साँस लेने की आदत पड़ जाती है।

सभ्य मनुष्यों की बहुत-सी बीमारियाँ निश्चय इसी मुँह से साँस लेने की प्रचलित रीति के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। जिन बच्चों को मुँह से साँस लेने की सुविधा मिल जाती है, वे क्षीण जीवट और निर्बल संगठन के साथ वृद्धि पाते हैं, और यौवनावस्था में स्वास्थ्य में गिर जाते हैं और जीर्ण रोगी हो जाते हैं। वहशी मनुष्य की माता बेहतर बर्ताव करती है, क्योंकि वह स्वाभाविक प्रवृत्ति

का अनुसरण करती है, और वह अपने बच्चों को ऐसी रीति से रखती है कि वे अपने छोटे ओठों को बंद किए रहते हैं और नाक ही से साँस लेते हैं। जब बच्चा सो जाता है तो वह उसके सिर को आगे की ओर थोड़ा झुका देती है, जिस स्थिति से बच्चे का मुँह बंद हो जाता है। और उसे नथनों ही से साँस लेना आवश्यक हो जाता है। यदि हम लोगों की सभ्य माताएँ भी इसी तरकीब को ग्रहण कर लेतीं तो मनुष्य जाति का बड़ा उपकार हो जाता।

मुँह से साँस लेने की घृणित आदत से बहुत-सी सांपर्किक बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं, इसी कारण से ज़ुकाम और फेफड़े-संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न होती पाई गई हैं। बहुत-से मनुष्य जो दिखावट के लिये दिन को मुँह बंद किए रहते हैं, रात को मुँह ही से साँस लेते हैं और इस तरह बहुधा बीमारी बुला लेते हैं। सावधानी से की गई वैज्ञानिक परीक्षाओं द्वारा जाना गया है कि वे जंगी सिपाही और जहाज़ी जो अपना मुँह खोलकर सोते हैं, सांपर्किक बीमारियों के आक्रमण में उन लोगों की अपेक्षा अधिक पड़ा करते हैं, जो नथनों द्वारा उचित साँस लेते हैं। एक उदाहरण में यह वर्णन किया गया है कि एक बार एक जंगी जहाज़ में जो विदेश में था, शीतला की बीमारी वबा रूप में फैली, और इस बीमारी से जितनी मौतें हुईं सब उन्हीं मनुष्यों की हुईं जो मुँह से साँस लेनेवाले थे, नाक से साँस लेनेवाला एक मनुष्य भी न मरा।

श्वास लेने के अवयवों की रक्षा करने के साधन छन्ना और धूलनिवारक आदि नथनों ही में बने हैं। जब साँस मुँह से ली जाती है, तो मुँह से लेकर फेफड़ों तक हवा को छाननेवाली या हवा की धूल और अन्य पदार्थों को रोक रखनेवाली कोई चीज़ नहीं है। मुँह से फेफड़ों तक धूल धक्कड़ और गंदी चीज़ों के लिये साफ़ रास्ता है और श्वास लेने का सारा औज़ार अरक्षित है।

इसके अतिरिक्त ऐसी अनुचित साँस से बहुत सर्द हवा भी फेफड़ों तक पहुँच जाती है। और उन्हें हानि पहुँचाती है। श्वास के अवयवों का सूक्ष्म जाना प्रायः मुँह से ठंडी हवा की साँस लेने से होता है। जो मनुष्य रात को मुँह से साँस लेता है वह सबेरे उठते ही मुँह में जलन और गले में सूखेपन का अ ुभव करता है। वह प्रकृति के नियमों में से एक प्रधान नियम का उल्लंघन कर रहा है और बीमारी का बीज बो रहा है।

एक बार फिर स्मरण कर लीजिए कि श्वास के अवयवों को रक्षित रखने के लिये मुँह में कोई साधन नहीं है; सर्द हवा, धूल धक्कड़, तरह-तरह की ख़राब चीज़ें और कीटाणु सरलता से उस द्वार में होकर फेफड़ों तक पहुँच सकते हैं। इसके विपरीत नथनों और नाक के भीतर की नलियों में प्रकृति ने इस विषय के संबंध में बड़ी सावधानी से इंतज़ाम कर दिया है। नथने बहुत संकीर्ण हुआ करते हैं और घूम-घुमाव के साथ नालियों द्वारा बने हैं, और द्वार पर ऐसे खड़े-खड़े अनगिनत बाल रखते हैं जो हवा को कूड़े करकट से साफ़ करने के लिये छन्ना और चलनी का काम देते हैं, जब श्वास बाहर आती है तब इस कूड़े करकट को लेती आती है। नथने केवल इसी मुख्य बात को नहीं करते, किंतु वे श्वास में ली हुई हवा को गरम कर देने का भी एक प्रधान काम करते हैं। लंबी, तंग और टेढ़ी-मेढ़ी नलियाँ गरम लसलसी झिल्ली से मढ़ी होती हैं, और जब हवा इनमें आती है तो गरम हो जाती है, जिससे वह गले और फेफड़ों के नाज़ुक अवयवों को हानि पहुँचावे।

मनुष्य को छोड़कर और कोई जानवर मुँह खोलकर नहीं सोता और न मुँह से साँस लेता, और असल में यह विश्वास किया जाता है कि केवल सभ्य ही मनुष्यों ने प्रकृति की क्रियाओं का अवहेलन किया है, और वहशी जातियाँ तो सर्वदा सही साँस लेती हैं। यह

संभव है कि मनुष्यों ने यह अस्वाभाविक आदत अस्वाभाविक रहन, निर्बलकारी विलास और अधिक उष्णता के कारण प्राप्त की हो।

नथनों के साफ़ करने, छानने और चालनेवाले यंत्र के कारण हवा गले और फेफड़ों के नाज़ुक अवयवों में जाने के योग्य हो जाती है; क्योंकि जब तक वह प्रकृति के साफ़ करनेवाले यंत्र से साफ़ नहीं की जाती तब तक वह इन अवयवों में पहुँचने के योग्य नहीं होती। जो कूड़ा करकट नथनों की चलनियों और आर्द्र झिल्लियों द्वारा रोक लिए जाते हैं, वे बाहर आनेवाली साँस के साथ बाहर निकाल दिए जाते हैं, और यदि वे बहुत शीघ्रता से एकत्र हो जायँ या चलनियों से बचकर भीतर चले जायँ तो प्रकृति छींक पैदा करके, जो धक्का देकर इन्हें बाहर निकाल फेकती है, हमारी रक्षा करती है।

हवा जब फेफड़ों में प्रवेश करती है तो बाहरी हवा से उतना भिन्न हो जाती है, जितना भभके से साफ़ किया हुआ पानी चहबच्चे के पानी से भिन्न होता है। नथनों की पेचीदा साफ़ करनेवाली कारीगरी, जो हवा की गंदगियों और मैल को बाहर ही पकड़कर रोक रखती है, उतनी ही प्रधान है, जितनी मुँह की क्रिया छोटे फलों के बीज और मछलियों के काँटों आदि को पकड़कर आमाशय में जाने से रोक रखने में प्रधान है।

मुँह से श्वास लेने में और एक यह दोष है कि नथनों की नलियाँ कम व्यवहार में आने के कारण साफ़ और निष्कंटक नहीं रह सकतीं और वे मैली होकर बंद पड़ जाती हैं और बीमारी में मुब्तिला हो जाती हैं। जैसे आवागमन न होने से सड़कों पर घास और झाड़झंखाड़ उग आते हैं, वैसे ही व्यवहार में न लाए जाने से नथने भी कूड़े करकट से भर जाते हैं।

जिस मनुष्य को नाक ही से साँस लेने की आदत है वह बंद और जबदी हुई नाकों से दुःखी नहीं हो सकता; परंतु उनके लाभ के

लिये, जो थोड़ा बहुत मुँह से साँस लेने के आदी हैं, और जो स्वाभाविक और सही तरीक़े से साँस लिया चाहते हैं नथनों के साफ़ करने का रास्ता बतला देना अच्छा होगा कि नथने साफ़ और कूड़ा करकट से रहित हो जायँ।

योगियों की प्रचलित रीति यह है कि नाक से थोड़ा पानी ऊपर को चढ़ा लें और उसे गले में उतार दें, जहाँ से वह मुँह की राह बाहर निकाल दिया जा सकता है। कोई हिंदू योगी पानीभरे बर्तन में अपना चेहरा डुबो देते हैं और नाक से पानी खींचते हैं, परंतु इस तरीक़े में अधिक अभ्यास की आवश्यकता है, और पहली रीति इससे अधिक आसान और इतनी ही लाभदायक है।

दूसरी अच्छी विधि यह है कि खिड़की खोल लें और उसके पास बैठकर ख़ूब स्वच्छंदता से साँस लें, एक नथने को उँगली या अँगूठे से बंद करके दूसरे से हवा भीतर खींचें, फिर उसे बंद करके पहले से हवा खींचें। इसी प्रकार नथनों को बदलते हुए बड़ी देर तक साँस लेते रहें। यह रीति भी नथनों को बाधाओं से रहित बना देगी।

हमने शिष्यों से नाक द्वारा साँस लेने का, यदि उनकी आदत ऐसी न हो तो, आग्रह करते हैं और उन्हें समझाए देते हैं कि इस बात को बहुत छोटी बात समझकर इसमें लापरवाही न करें।

अठारहवाँ अध्याय

शरीर के अणुजीव

हठयोग यह शिक्षा देता है कि जैसे भौतिक जड़ पदार्थ परमाणुओं से बने हैं वैसे ही यह शरीर देहाणुओं (Cells) से बना है, और प्रत्येक देहाणु अपने में एक अणुजीव धारण किए है, जो देहाणु की क्रियाओं पर शासन करता है। ये जीव, अल्पमात्रा में विकाश पाए हुए चैतन्य मानस के अल्प अंश को धारण करते हैं जिसकी चेतना से प्रत्येक देहाणु अपना कार्य उचित रीति से करता है। ये चेतनांश मनुष्य के केंद्रवर्ती मन के आधीन होते हैं, इसमें संदेह नहीं; और जब कभी चेतनापूर्वक या अचेतनावस्था में सदर से आज्ञा होती है तो उसका पालन करते हैं। ये अणुजीव चेतनाएँ अपने-अपने कार्यों में पूरी योग्यता दिखलाती हैं। इन देहाणुओं की चुननेवाली क्रिया, जिसके द्वारा ये रुधिर से आवश्यक पोषण को तो खींच लेते हैं, और अनावश्यक द्रव्यों को छोड़ देते हैं, इस चेतना का एक अच्छा उदाहरण है, पाचन और रसाकर्षण आदि की क्रिया देहाणुओं की चैतन्यता दिखलाती है, ये देहाणु चाहे पृथक्-पृथक् या अनेक समुदायों में गोल बाँधे हों। क्षत अर्थात् ज़ख़्म का पूरा करना, देहाणुओं का शरीर के उस ओर दौड़ना जहाँ उनकी अत्यंत आवश्यकता है, और ऐसे सैकड़ों उदाहरण जो परीक्षा करने-वालों को विदित हैं, योगियों को यह सूचित करते हैं कि प्रत्येक देहाणु में जीव है। योगी की दृष्टि में प्रत्येक देहाणु एक जीवित वस्तु है जो अपना स्वतंत्र जीवन निर्वाह कर रही है। ये देहाणु किसी अभिप्राय से समुदाय बाँध लिया करते हैं, और प्रत्येक

समुदाय अपनी सामुदायिक चैतन्यता दिखलाता है, जब तक कि वह समुदाय बँधा रहता है; ये समुदाय फिर एकत्रित होकर बड़े पेचीदा-पेचीदा संगठन बनाते हैं, जिन संगठनों में कुछ उच्च कोटि की चेतनाएँ हुआ करती हैं।

जब पार्थिव शरीर की मृत्यु होती है तब ये देहाणु पृथक् और छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और तब सड़ना शुरू हो जाता है। वह बल, जिससे ये देहाणु एकत्र रक्खे गए थे, अब चला गया; और अब ये देहाणु स्वतंत्र हो गए कि अपनी-अपनी राह लें अथवा नए समूह स्थापित करें। कुछ तो आस-पास के पौधों के शरीर में चले जाते हैं, और अंत में घूम-फिरकर किसी जानवर के शरीर में आ जाते हैं; दूसरे पौधों ही की देह में बने रहते हैं, कुछ ज़मीन में पड़े रहते हैं; परंतु इन देहाणुओं के जीवन में अनंत और अनवरत परिवर्तन हुआ करते हैं। एक नामी लेखक ने कहा है कि "मौत केवल जीवन का रूपांतर है, और एक पार्थिव रूप का नाश होना दूसरे के बनने की प्रस्तावना है।" हम इस देहाणु जीवन की प्रकृति और क्रियाओं का संक्षिप्त वर्णन अपने शिष्यों को सुना देंगे कि शरीर के इन जीवाणुओं का जीवन कैसा होता है।

शरीर के देहाणुओं में तीन तत्त्व होते हैं—(१) द्रव्य, जिसे वे मनुष्य के खाए हुए अन्न से प्राप्त करते हैं; (२) प्राण अर्थात् जीवट शक्ति, जिससे वे कार्य करने में समर्थ होते हैं, और जिसे वे हमारे खाए हुए अन्न, पिए हुए पानी और साँस ली हुई हवा से लाभ उठाते हैं; (३) चेतना या चित्त जो सर्वव्यापक मन से ग्रहण किया जाता है। हम पहले इन अणुओं के जीवन के भौतिक अंग का वर्णन करेंगे।

जैसा हम ऊपर कह आए हैं, प्रत्येक जीवित शरीर नन्हे-नन्हे देहाणुओं का समूह है। यह शरीर के प्रत्येक भाग के संबंध में—

सख़्त हड्डियों से लेकर मुलायम-से-मुलायम रेशों तक—दाँत की कड़ी मढ़न से लेकर आर्द्र झिल्ली के नाज़ुक भागों तक—सही है। इन देहाणुओं की भिन्न-भिन्न शकलें होती हैं, जो उनके विशेष कार्यों तथा क्रियाओं के अनुकूल होती हैं। प्रत्येक देहाणु, सब प्रकार से पृथक्-पृथक् व्यक्ति होते हैं, यद्यपि ये देहाणु समूह की चेतना के आधीन होते हैं; बड़ा समूह छोटे समूह पर शासन करता है; और अंत में मनुष्य का केंद्रस्थ मन सबके ऊपर निरीक्षण रखता है। संगठन का कार्य, या कम-से-कम उसका अधिकांश भाग, प्रवृत्ति-मानस के अधिकार में होता है।

ये देहाणु सर्वदा कार्य में लगे रहते हैं, शरीर के सब कर्तव्यों का पालन किया करते हैं, प्रत्येक के ज़िम्मे अलग-अलग काम होता है जिसे वे अपनी योग्यतानुसार पूरा-पूरा करते रहते हैं। कुछ देहाणु फ़ालतू रहते हैं और वे आज्ञा की प्रतीक्षा किया करते हैं और अकस्मात् जो कार्य आ जाय उसे करने के लिये तैयार रहते हैं। अन्य देहाणु क्रियाशील कामकाजी होते हैं और नाना प्रकार के स्रावों और द्रवों को बनाया करते हैं, जिनकी आवश्यकता देह की भिन्न-भिन्न क्रियाओं में पड़ा करती है। कुछ देहाणु एकस्थानीय होते हैं—दूसरे आज्ञा की प्रतीक्षा में स्थायी रहते हैं पर आज्ञा पाते ही गमन कर देते हैं। कुछ देहाणु सर्वदा यात्रा किया करते हैं; इनमें कुछ यात्रा ही करते काम करते हैं और कुछ अणु अंतर दे देकर यात्रा करते हैं। इन यात्री अणुओं में कुछ तो भारवाहक होते हैं, कुछ यात्रा किया करते हैं, और मार्ग में जहाँ आवश्यकता देखते हैं वहाँ कार्य करके फिर आगे बढ़ते हैं, कुछ सफ़ाई के काम में लगे रहते हैं; कुछ के ज़िम्मे पुलिस का काम रहता है। देहाणुओं का जीवन, जब उनके कुल समूहों पर दृष्टि डाली जाय तो एक उपनिवेश की गवर्नमेंट के समान दिखलाई पड़ता है, जो गवर्नमेंट की सहकारिता और सह-

योगिता के सिद्धांतों पर चलाई गई हो। प्रत्येक देहाणु अपने कार्य को समूह-भर के लाभ के लिये करता है, प्रत्येक अणु सबकी भलाई के लिये काम करता है, और सब मिलकर परस्पर भलाई का काम करते हैं। नाड़ीजाल के देहाणु शरीर के प्रत्येक भाग की ख़बर मस्तिष्क को पहुँचाते हैं, और मस्तिष्क की आज्ञा शरीर के प्रत्येक आवश्यक भागों में पहुँचाते हैं, ये तारबर्क़ी के जीवित तार हैं। नाड़ियाँ नन्हे-नन्हे देहाणुओं से बनी हुई हैं, इन देहाणुओं में सूँड़ के सदृश कुछ भाग निकला रहता है, एक की सूँड़ दूसरे को और दूसरे की तीसरे को स्पर्श किए रहती हैं, इस प्रकार श्रृंखला बन जाती है और इसी श्रृंखला द्वारा प्राण गति करता है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में लाखों-लाखों, करोड़ों-करोड़ों, देहाणु भारवाहक, चलते कामकाजी, पुलिसमैन, सिपाही आदि का काम करते रहते हैं; यह अनुमान किया गया है कि एक घन इंच रुधिर में कम-से-कम ७२०००००००० केवल लाल-लाल देहाणु हैं। औरों के लेखे को छोड़िए! यह बड़ी विस्तृत जाति है।

रुधिर के लाल देहाणु, जो भारवाहक होते हैं, रुधिरापवाहक धमनियों और रुधिरोपवाहक शिराओं में बहा करते हैं, फेफड़ों से आक्सीजन लेकर शरीर के अंगों और प्रत्यंगों में पहुँचाया करते हैं, जिससे उन अंगों-प्रत्यंगों को जीवन और शक्ति मिला करती है। जब रुधिरोपवाहक शिराओं द्वारा ये वापस आते हैं तो देह-यंत्र के निकम्मे द्रव्यों को लेते आते हैं, जिन्हें फेफड़ा बाहर फेंक देता है। तिजारती जहाज़ की भाँति ये जाते और आते दोनों सफ़र में बोझा लादते हैं। अन्य देहाणु धमनियों और शिराओं की दीवारों और रेशों में होकर घुस जाते हैं और मरम्मत आदि का कार्य, जिसके लिये वे भेजे गए हैं, करने लगते हैं।

रुधिर के लाल देहाणुओं अर्थात् भारवाहकों के अतिरिक्त और भी

हम लोगों के जीवन के प्रत्येक क्षण में ये देहाणु उत्पन्न हुआ और मरा करते हैं। ये देहाणु खूब बढ़कर तब फिर भागों में विभक्त हो

कई प्रकार के देहाणु रुधिर में होते हैं। इनमें पुलिसमैन और सिपाही बड़े ही मनोरंजक होते हैं। इन देहाणुओं का कार्य है कि ये देह-यंत्र को उन कीटाणुओं से सुरक्षित रक्खें जिनसे शरीर में बीमारी या पीड़ा पहुँचने की आशंका हो। ज्यों ही कोई पुलिस देहाणु ऐसे कीटाणु को पाता है त्यों ही वह इससे लिपट जाता है और इसे निगल जाने की चेष्टा करता है, यदि यह बहुत बड़ा न हो। यदि यह बहुत बड़ा हुआ तो वह अन्य देहाणुओं को मदद के लिये बुलाता है, और यह संयुक्त सेना उस कीटाणु को पकड़े-पकड़े देह-यंत्र के किसी छिद्र के पास ले जाती है और उसे बाहर निकाल देती है। फोड़े, फुंसियाँ आदि इसी प्रकार के कीटाणुओं के निकाले जाने के उदाहरण हैं, जहाँ ये शरीर-यंत्र के पुलिसमैन विषैले कीटाणुओं को निकालते हैं।

रुधिर के लाल कीटाणुओं को बहुत काम करना पड़ता है। वे शरीर के अंगों में आक्सीजन पहुँचाते हैं, वे अन्न से ग्रहण किए हुए पोषण को शरीर के उन अंगों में पहुँचाते हैं जहाँ नई रचना या मरम्मत के लिये इसकी आवश्यकता होती है। वे पोषण में से उन्हीं-उन्हीं तत्वों को खींच लेते हैं जिनसे आमाशयिक द्रव, लार, पेनक्रियाटिक द्रव, पित्त, दूध इत्यादि-इत्यादि बनते हैं और फिर इन पदार्थों को कार्य के अनुकूल उचित परिमाण में मिलाते हैं। वे हज़ारों काम किया करते हैं और सर्वदा काम में लगे रहते हैं, जैसे चींटियाँ सर्वदा काम में लगी रहती हैं; पूर्वीय आचार्य बहुत दिनों से इन अणु जीवों को जानते आए हैं और इनके अस्तित्व और इनकी क्रियाओं के विषय में अपने शिष्यों को शिक्षा देते आए हैं। परंतु यह बात पश्चिमी विज्ञान के लिये शेष रह गई है कि वह इसका बृहत् और सुविस्तृत वर्णन करे।

हम लोगों के जीवन के प्रत्येक क्षण में ये देहाणु उत्पन्न हुआ और मरा करते हैं। ये देहाणु ख़ूब बढ़कर तब फिर भागों में विभक्त हो

जाने के कारण दूसरे देहाणुओं को जन्माते हैं, पहला देहाणु फूलने लगता है और फूलते-फूलते दो भागों में हो जाता है, और बीच में जोड़नेवाली कमर रहती है, फिर यह कमर टूट जाती है और एक देहाणु के स्थान में दो देहाणु हो जाते हैं। फिर नया देहाणु दो भागों में विभक्त होता है; इस प्रकार क्रिया जारी रहती है।

ये देहाणु शरीर को अपने आप नया बनाए रखने की क्रिया करने के लिये समर्थ बनाए रहते हैं। मानव शरीर का प्रत्येक भाग लगातार परिवर्तित हो रहा है और इसके रेशे बदल जाया करते हैं। हमारा चमड़ा, हड्डियाँ, बाल, मांसपेशियाँ इत्यादि सबमें अनवरत मरम्मत हुआ करती है और ये ठीक बनाई जाया करती हैं। हमारे नखों को नए हो जाने में क़रीब-क़रीब चार महीने लगते हैं; चमड़े के नए होने में ४ सप्ताह लगते हैं। हमारे शरीर का प्रत्येक अंग लगातार रद्दी हुआ करता और नया बना करता है, मरम्मत जारी रहती है। और ये नन्हे-नन्हे कारीगर देहाणु उन मज़दूरों के दल हैं, जो इस आश्चर्यजनक कार्य को किया करते हैं। इन नन्हे-नन्हे कारीगरों के करोड़ों-करोड़ों के दल घूम-घूमकर और एक जगह पर स्थित हो होकर हमारे शरीर में रद्दी रेशों की जगह पर नई सामग्री जुटाया करते और पुराने निकम्मे हानिकारक कणों को शरीर-यंत्र के बाहर किया करते हैं।

नीच जंतुओं में प्रकृति प्रवृत्तिमानस को पूरा अवकाश और विस्तृत क्षेत्र देती है; परंतु ज्यों-ज्यों जीवन उच्च पदवी धारण करता है (अर्थात् ऊँची योनि में आता है) त्यों-त्यों बुद्धि विकसित होने लगती है और प्रवृत्तिमानस का क्षेत्र संकुचित होता जाता है। उदाहरण के लिये कीड़ों और मकोड़ों को देखो, तो वे नई टाँगों, पंजों इत्यादि के जमा लेने में समर्थ होते हैं। घोंघे तो अपने सिर के कुछ भागों को भी नया बना लेते हैं, यहाँ तक कि यदि उनकी आँखें नष्ट हो

जायँ, तो नई आँखें भी पैदा कर लेते हैं। कोई-कोई मछलियाँ अपनी नई पूँछ पैदा कर लेती हैं। छिपकली आदि नई पूँछें, हड्डियाँ, मांसपेशियाँ और अपनी रीढ़ की हड्डी के भी कुछ भागों को नया पैदा कर लेती हैं। नीचातिनीच जंतु को अपने खोए हुए अंग को फिर से पैदा करने की अधिक-से-अधिक सामर्थ्य है, और वे अपने को बिलकुल नया बना सकते हैं यदि उनके शरीर का छोटा-से-छोटा भाग भी बचा हो, जिस पर वे नए भागों को पैदा कर सकें। उच्च जंतु ज्यों-ज्यों उँचाई की सीढ़ी पर चढ़ते हैं, त्यों-त्यों उनकी यह शक्ति क्षीण होती जाती है। चूँकि मनुष्य सबसे ऊँचा है, इसलिये इसने तो अपनी रहन आदि की कुरीतियों से सबसे अधिक शक्ति खो दी। कुछ अधिक सिद्ध योगियों ने इस प्रकार के कुछ आश्चर्यजनक कार्य कर दिए हैं, और कोई भी हो, यदि धैर्य के साथ अभ्यास करता रहे तो, प्रवृत्तिमानस और देहाणुओं पर अधिकार जमाकर शरीर के रोगी अंगों और निर्बल भागों को चंगा कर सकता है।

साधारण मनुष्य को भी चंगा करने की शक्ति है और यह शक्ति सर्वदा काम करती है, पर अधिकांश मनुष्य इस पर ध्यान नहीं देते। किसी ज़ख़्म के अच्छे होने के उदाहरण पर विचार कीजिए। आइए देखें कि ज़ख़्म किस तरह पूरा होता है। यह बात आपके ध्यान देने और अध्ययन करने के योग्य है। यह इतनी प्रकट बात है कि हम इस पर ध्यान ही नहीं देते; परंतु यह इतनी आश्चर्यजनक बात है कि इस पर ग़ौर करने से शिष्य को विदित हो जायगा कि ज़ख़्म को चंगा करने में चेतनता की कितनी बड़ी महिमा प्रकट होती है।

कल्पना कीजिए कि किसी मनुष्य का शरीर ज़ख़्मी हुआ है—अर्थात् कहीं कट गया है या किसी बाहरी चीज़ के लग जाने से फट गया है। रेशे, पंछा और रुधिर बहाने की नलियाँ, द्रवस्रावी

मांसखंड, मांसपेशियाँ, नाड़ियाँ और कभी-कभी हड्डियाँ खंडित हो जाती हैं और उनकी शृंखला टूट जाती है। ज़ख़्म से रुधिर बहने लगता, उसका मुँह विवृत हो जाता और पीड़ा होने लगती है। नाड़ियाँ इस समाचार को मस्तिष्क में पहुँचाती हैं और तुरंत सहायता पाने के लिये शोर मचाती हैं, और प्रवृत्तिमानस शरीर में इधर-उधर ख़बरें भेजने लगता है और मरम्मत करनेवाले देहाणुओं की उपयुक्त सेना को तलब करता है, जो झपटकर ख़तरे के मुक़ाम पर पहुँचती है। इस अर्से में ज़ख़्मी रुधिर की नलियों से बह-बहकर रुधिर, भीतर घुसे हुए बाहरी पदार्थों को धो बहाता है या धो बहाने की चेष्टा करता है; ये बाहरी पदार्थ धूल, मैला और कीटाणु इत्यादि हुआ करते हैं और यदि भीतर रह जायँ, तो विष उत्पन्न कर दें। रुधिर जब बाहर की हवा के संपर्क में आता है, तो जम जाता है, और सरेस की भाँति लसलसा पदार्थ बन जाता है, और ज़ख़्म पर पपड़ी डाल देने की नींव डालता है। करोड़ों देहाणु, जिनका कर्तव्य मरम्मत करना है, मौक़े पर दौड़कर पहुँचते हैं और रेशों को जोड़ने लग जाते हैं, और अपने काम में आश्चर्यजनक चैतन्यता और कर्मण्यता दिखाते हैं। ज़ख़्म के दोनों ओर के रेशों, नाड़ियों, रुधिर की नलियों के देहाणु बढ़ने लगते हैं और करोड़ों नए देहाणुओं को पैदा कर देते हैं, जो दोनों ओर से आगे बढ़कर अंत में ज़ख़्म के बीच में मिल जाते हैं। पहले तो इन देहाणुओं का बढ़ना बेक़ायदे और निष्प्रयोजन की वृद्धि-सा प्रतीत होता है; परंतु थोड़े ही अर्से में शासक मानस और उसके अधीनस्थ प्रभाव केंद्रों का हाथ प्रकट होने लगता है। रुधिर की नलियों के नए देहाणु उस पार के उसी प्रकार के देहाणुओं से मिलने लगते हैं और नई नाली बन जाती है, जिसमें रुधिर फिर बहने लगे। जोड़नेवाले रेशों के देहाणु अपनी ही भाँति के अन्य देहाणुओं से मिल जाते हैं

और चारों ओर से ज़ख़म को भरने लगते हैं। नाड़ियों के नए देहाणु प्रत्येक पृथक् सिरों पर बनने लगते हैं और बाल-सदृश रेशों को आगे बढ़ाकर शनैः-शनैः तार जोड़ देते हैं और फिर विना बाधा के समाचार आने-जाने लगते हैं। जब यह भीतरी कुल काम समाप्त हो जाता है, और रुधिर की नालियाँ, नाड़ियाँ और जोड़नेवाले रेशे जब अच्छी तरह से मरम्मत हो जाते हैं तब चमड़े के देहाणु काम ख़तम करने में लिपट जाते हैं, और चमड़े के नए देहाणु बनने लगते हैं और ज़ख़म के ऊपर नया चमड़ा बन जाता है, जो ज़ख़म कि अब तक पूरा हो गया रहता है। ये सब बातें बड़ी तरतीब से होती हैं, जिससे चेतना और सुरीति झलकती है। ज़ख़म के चंगा होने में जो ज़ाहिरा बड़ा सादा काम मालूम देता है—सावधान निरीक्षक सर्वव्यापक प्रकृति की चैतन्यता को प्रत्यक्ष देखता है—सृष्टिक्रिया का प्रत्यक्ष उदाहरण पाता है। प्रकृति सर्वदा इच्छुक रहती है कि अपने पर्दे को हटा ले और हम लोगों को भीतरी कोठरी की कार्रवाइयों को देखने दे; परंतु हम बेचारे मूर्ख लोग उसके निमंत्रण की परवाह नहीं करते, बरन् विना ध्यान दिए ही चले जाते हैं और मूर्खता की बातों तथा हानिकारक कामों में अपने मानसिक बल को नष्ट करते हैं।

यहाँ तक तो देहाणु के विषय में हुआ। देहाणु का मानस सर्वव्यापक मानस का—जो चित्त का महत् भंडार है—अंश है, और देहाणुओं के केंद्रस्थल के मानस से संबंध रखता है और उन्हीं के द्वारा प्रेरित हुआ करता है; ये केंद्रस्थल के मानस और उच्चमानस के आधीन होते हैं, यह सिलसिला तब तक चला जाता है, जब तक अंत में मनुष्य के प्रवृत्तिमानस तक नहीं पहुँच जाता। परंतु देहाणु मानस विना अन्य दोनों तत्त्वों—भौतिक द्रव्य और प्राण के—अपने को प्रकट करने में समर्थ नहीं हो सकता। इसे अच्छी तरह से पचाए हुए अन्न से ताज़ी सामग्री ग्रहण करने की आवश्यकता होती है कि वह अपने प्रकट होने का

साधन बना ले। इसको प्राण अर्थात् जीवट-शक्ति की भी आवश्यकता होती है कि यह गति और कार्य कर सके। जीवन की तत्त्वत्रयी—मानस, द्रव्य और शक्ति—देहाणु तथा मनुष्य दोनों में आवश्यक है।

हम पहले के अध्यायों में पाचन के विषय में और रुधिर में पुष्कल पोषणकारी सुपक्व सामग्री उपस्थित करने की प्रधानता में, जिससे वह शरीर की मरम्मत और उसके भागों की रचना अच्छी तरह कर सके, बहुत कुछ कह आए हैं। इस अध्याय में हम यह बतला गए हैं कि कैसे देहाणु उस सामग्री को शरीर के बनाने में व्यवहार करते हैं—कैसे वे उसका व्यवहार अपने ही बनाने में करते हैं और फिर कैसे वे अपने ही को बना लेते हैं। स्मरण रक्खो कि ये देहाणु, जो ईंटों की भाँति प्रयुक्त होते हैं, अपने चारों ओर अन्न से प्राप्त सामग्री को लपेट लेते हैं और अपने लिये मानो शरीर बना लेते हैं; तब ये थोड़ा प्राण ले लेते हैं और उस जगह पहुँचते हैं, जहाँ इनकी आवश्यकता होती है, जहाँ ये अपने को बनाते हैं और स्वयं अपने नए रेशे, हड्डी या मांसपेशी आदि का भाग बन जाते हैं। अपनी देह बनाने के लिये विना समुचित सामग्री पाए ये देहाणु अपना काम नहीं कर सकते, सच तो यह है कि जी ही नहीं सकते। वे मनुष्य जो अपने ही आचरणों से क्षीण हो गए हैं और जो अधूरे पोषण का दुःख भोग रहे हैं, उनके शरीर में काफ़ी देहाणु नहीं होते और इसलिये उनके शरीर की क्रिया उचित रीति से नहीं होती। देहाणुओं को सामग्री मिलनी चाहिए कि जिससे वे देह बना सकें, और एक ही तरीक़ा है जिससे उनको सामग्री मिल सकती है—कि भोजन से पोषण प्राप्त किया जाय। जब तक देह-यंत्र में काफ़ी प्राण न होगा, तब तक ये देहाणु अपने कार्यों के करने में पूरी शक्ति नहीं लगा सकते, जिससे सारे शरीर में जीवट की कमी प्रकट होने लगती है।

कभी-कभी मनुष्य की बुद्धि इस प्रवृत्तिमानस को इतना तंग कर देती है और इतना घुड़कती है कि बेचारा बेहूदा मार्ग ग्रहण कर लेता है और बुद्धि से भय खाने लगता है और अपने नित्य के कार्यों को उचित रीति से नहीं कर सकता तथा देहाणु ठीक नहीं पैदा किए जाते। ऐसी दशाओं में जब बुद्धि असल बात को समझ जाती है, तब अपनी पिछली भूलों को सुधारना चाहती है और प्रवृत्तिमानस को ढाढ़स देने लगती है कि "तुम तो अपने काम को बहुत अच्छी तरह समझते हो, और अब तुम्हें अपना राज करने का पूरा अधिकार मिलेगा, निश्चय रक्खो।" और फिर इसके बाद हिम्मत दिलाने, तारीफ़ करने और उसमें विश्वास रखने के शब्द कहे जाते हैं, तब प्रवृत्तिमानस अपने चित्तस्थैर्य को धारण कर लेता है और अपने घर का प्रबंध करने लगता है। कभी-कभी यह प्रवृत्तिमानस अपने मालिक तथा अन्य बाहरियों के विपरीत पूर्व विचारों से इतना अभिभूत हो जाता है कि वह घबरा उठता है और फिर इसके असली अवस्था में आने में बहुत समय लगता है कि यह ठीक शासन कर सके। ऐसी दशा में अक्सर यह होता है कि मातहती के देहाणु, केंद्रों के मानस, वस्तुतः बग़ावत कर जाते हैं और सदर की आज्ञाओं को नहीं मानते। इन दोनों दशाओं में मनुष्य के दृढ़ संकल्प की—निश्चित आज्ञा की—ज़रूरत पड़ती है कि सारे शरीर में फिर से अमन-चैन फैल जाय और मुनासिब काम होने लगे। स्मरण रखिए कि प्रत्येक इंद्रिय अवयव और भाग में किसी-न-किसी प्रकार की चेतना होती है और दृढ़ इच्छा की अच्छी प्रबल आज्ञा से विकृत अवस्थाओं में भी प्रायः सुधार हो जाता है।

उन्नीसवाँ अध्याय

शासनातीत अंगों पर अधिकार

इस किताब के पिछले अध्याय में हम आपको समझा आए हैं कि मानव शरीर करोड़ों नन्हे-नन्हे देहाणुओं से बनता है; प्रत्येक के आधीन काफ़ी सामग्री रहती है कि वह अपना काम कर सके; काफ़ी प्राण रहता है कि उसे आवश्यकतानुसार बल मिलता रहे और पर्याप्त चेतना रहती है कि जिससे वह अपने कार्य को ठीक पथ पर कर ले जाय, प्रत्येक देहाणु एक संप्रदाय या वंश से संबंध रखता है, और उस देहाणु की चेतना उस संप्रदाय या वंश के प्रत्येक देहाणु की चेतना से लगाव रखती है; संप्रदाय या वंश की सम्मिलित चेतना समस्त संप्रदायमानस बनती है। ये संप्रदाय भी एक बड़े समुदाय के अंग हुआ करते हैं, और इसी तरह दर्जे-बदर्जे चला जाता है, जब तक सारे शरीर-भर का एक राज्य प्रवृत्तिमानस के अधिकार में होने के दर्जे तक नहीं पहुँच जाता, इन संप्रदायों और समूहों पर शासन रखना प्रवृत्तिमानस के कर्तव्यों में से है और वह प्रायः अपना काम अच्छी ही तरह से करता है, यदि बुद्धि उसमें हस्ताक्षेप न करे, जो कभी-कभी अपने भय के ख़यालात प्रवृत्तिमानस के पास भेज देती है या किसी दूसरे ही प्रकार से उसे मूढ़ बना देती है। कभी-कभी इसके कार्य में बुद्धि इस प्रकार बाधा पहुँचाती है कि वह पार्थिव शरीर को नियमित रखने के लिये देहाणु चेतना को विपरीत और प्रतिकूल आदतें पकड़ा देती है। उदाहरण के लिये कोष्ठबद्ध के रोग पर ध्यान दो, बुद्धि दूसरे काम में फँसे रहने के कारण, शरीर को प्रवृत्तिमानस की आज्ञा (हाजत ज़रूरी) का पालन न करने देगी, जो कि मलाशय के

देहाणुओं की पुकार पर जारी की गई है, और न पानी की माँगों पर ध्यान देगी तो परिणाम यह होगा कि प्रवृत्तिमानस उचित आज्ञाओं का पालन नहीं कर सकता और यह तथा देहाणु संप्रदायों में से कुछ ये दोनों घबराकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। स्वाभाविक आदत के स्थान पर बुरी आदतें पैदा हो जाती हैं और कभी-कभी किसी-किसी देहाणु संप्रदाय में एक प्रकार की बग़ावत उठ खड़ी हो जाती है। इसमें संदेह नहीं कि इसका कारण उनकी स्वाभाविक क्रियाओं में बाधा पहुँचाना रहता है अथवा उनके लिये और विपरीत रिवाजों का पैदा करना होता है, जिससे गड़बड़ उपस्थित हो जाती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे समूहों में से कुछ (और कभी-कभी तो बड़े समूहों में से कुछ) हड़ताल कर देते हैं, और अनभ्यस्त तथा अनुचित कार्य जब उनके ज़िम्मे किए जाते हैं, या उचित से अधिक काम लिया जाता है, या ऐसा ही कोई अन्याय होता है कि उन्हें उचित पोषण नहीं मिलता, तो वे बग़ावत कर देते हैं। ये नन्हे-नन्हे देहाणु उसी तरह से कार्य करते हैं जैसे उसी दशा में मनुष्य कार्य करते हैं; देखनेवाले और जाँच करनेवाले को दोनों की समानता आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। यदि सुप्रबंध न कर दिया जाय, तो यह हड़ताल और बग़ावत फैल जाय; और जब कभी अधूरा ही प्रबंध कर दिया जाता है, तो ये देहाणु काम को तो करने लगते हैं, परंतु अपनी योग्यतानुसार उत्तम कार्य करने के स्थान पर उदासीनता से बहुत थोड़ा काम करते हैं; सो भी जब कभी मन में आता है तब स्वाभाविक दशाओं को पुनः स्थापित करने से, अच्छा और काफ़ी पोषण देने से, उन पर उचित ध्यान रखने से शनैः-शनैः सुव्यवस्था प्राप्त होगी; परंतु दृढ़ संकल्प से सीधा हुक्म देहाणु-समूहों को देने से सुव्यवस्था में शीघ्रता होती है। इस तरीक़े से कितनी जल्दी अमन-चैन फिर स्थापित हो जाती है उसे देखने से आश्चर्य

होता है। ऊँचे योगी शासन से बाहर के देह-यंत्र पर आश्चर्यजनक अधिकार प्राप्त कर लेते हैं और शरीर के प्रत्येक देहाणु पर सीधी हुकूमत रखते हैं। भारतवर्ष के नगरों के योगी भी, जो झूठे योगी से थोड़ा ही बेहतर होते हैं, और जो पैसे के लिये अपनी क्रियाएँ दिखलाया करते हैं, अपने देहाणुओं पर प्रभाव रखने के बहुत ही मनोरंजक उदाहरण दिखला सकते हैं; इनकी कोई-कोई प्रदर्शिनी तो नाज़ुक दिमाग़वालों को घृणास्पद और सच्चे योगियों के लिये दुःख-दायी हो जाती है, जब वे देखते हैं कि ऐसी उत्तम योगक्रिया इस प्रकार भ्रष्ट की जा रही है।

अभ्यास से बलवती बनी हुई दृढ़ इच्छा इन देहाणुओं और इनके समूहों पर केवल साधारण धारणा द्वारा असर डालने में समर्थ हो जाती है; परंतु इस रीति के प्रयोग करने में शिष्यों के लिये अधिक साधना की आवश्यकता है। दूसरे तरीक़े भी हैं, जिनके द्वारा शिष्य अपनी दृढ़ इच्छा को कतिपय शब्दों के ध्यानपूर्वक जाप से एकाग्र करके उसका असर पहुँचा सकता है। पश्चिमी लोगों की स्वतः मंत्रणाएँ और प्रतिज्ञाएँ इसी प्रकार काम देती हैं। शब्दों के ध्यानपूर्वक जाप से ध्यान और आकांक्षा पीड़ा के स्थान पर जम जाती हैं, और शनैः-शनैः हड़तालवाले देहाणुओं में अमन-चैन स्थापित हो जाती है; वहाँ पर कुछ प्राण भी पहुँचा दिया जाता है, इससे देहाणुओं को और भी अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। साथ-ही-साथ पीड़ित स्थान का रुधिर-संचार भी बढ़ जाता है, और इससे देहाणुओं को अधिक पोषण और रचना की सामग्री मिल जाती है।

पीड़ित स्थान पर अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये देहाणुओं को प्रबल आज्ञा देने की बहुत ही सरल विधि हठयोगी लोग अपने शिष्यों को बतलाते हैं, जब तक वे धारणायुक्त आकांक्षा का प्रयोग,

बिना अन्य सहायता के करने में असमर्थ रहते हैं। यह सरल विधि यह है कि बाग़ी अंग या अवयव से "बात की जाय" उसे इस तरह की आज्ञा दी जाय, जैसी स्कूल के लड़कों के एक झुंड या पलटन के रंगरूटों के एक स्काड को दी जाती है। आज्ञा को स्पष्टता और दृढ़ता के साथ दो; अवयव से वही बात कहो, जो तुम उससे कराया चाहते हो, आज्ञा को हाकिमाना तौर से कई बार दुहराओ। उस भाग पर, या पीड़ित भाग के ऊपर के अंग पर मुलायम थापी देने से वहाँ के देहाणुओं का ध्यान उसी प्रकार आकर्षित हो जायगा जैसे किसी मनुष्य के कंधे पर ठोंक देने से वह रुककर तुम्हारी ओर मुँह कर लेता है और तुम्हारी बातों को सुनने लगता है। अब यह मत ख़्याल कर लो कि हम तुम्हें बतलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि देहाणुओं के कान होते हैं और तुम्हारी भाषा को वे समझ जाते हैं; जो बात होती है वह यह है कि हाकिमाना तौर से कहने से तुम्हें उन शब्दों द्वारा प्रकट की हुई मानसिक मूर्ति की कल्पना में सहायता मिलती है, और उसका अभिप्राय सहानुभावी नाड़ी में प्रवृत्तिमानस द्वारा प्रेरित होकर ठीक स्थल पर पहुँच जाता है और देहाणुसमूहों तथा देहाणु-व्यक्तियों पर विदित हो जाता है। जैसा हम ऊपर कह आए हैं, रुधिर और प्राण की अधिक पहुँच भी वहाँ हो जाती है, क्योंकि आज्ञा देनेवाले मनुष्य के धारणासबल ध्यान का उन पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अन्य रोग-निवारक को आज्ञा भी दी जा सकती है; रोगी का प्रवृत्तिमानस उस आज्ञा को ग्रहण करके उसे देहाणुओं की बग़ावत के स्थान पर पहुँचा देता है। यह बात हमारे शिष्यों में बहुतों को लड़कों के खेल-सी प्रतीत होगी; परंतु इसके समर्थन के लिये अच्छे-अच्छे वैज्ञानिक प्रमाण और कारण हैं। योगी लोग इसे देहाणुओं तक आज्ञा पहुँचाने का बहुत ही सरल तरीक़ा समझते हैं। जब तक इसकी परीक्षा न कर लो तब तक इसे फ़ज़ूल समझकर फेंक न दो। यह शताब्दियों

के जाँच में अटल बना हुआ है, और इससे बढ़कर और कोई तरीक़ा अब तक काम करने का नहीं पाया गया है।

यदि तुम अपने शरीर के किसी भाग पर इस तरीक़े का प्रयोग किया चाहते हो, या किसी अन्य के शरीर पर इसको आज़माया चाहते हो, जो कि पूरा काम नहीं कर रहा है, तब उस अंग पर अपनी हथेली से धीरे-धीरे थापी दो और (उदाहरण के लिये) यों कहो कि "सुनो यकृत्, तुम्हें अपना काम अच्छी तरह करना पड़ेगा—तुम इतने सुस्त हो कि मेरे मुआफ़िक़ नहीं हो, मैं दृढ़ आशा करता हूँ कि अब से तुम अच्छा काम करोगे, चलो काम करो, हम कहते हैं इस मूर्खता को छोड़ो।" ठीक ये ही शब्द आवश्यक नहीं हैं, आपको जो शब्द आवें उन्हीं का प्रयोग कीजिए, परंतु उनमें हाकिमाना स्पष्ट भाव और आज्ञा होनी चाहिए कि अवयव अपना काम करने लगे। इसी तरीक़े से हृदय के काम भी उन्नत हो सकते हैं; परंतु हृदय को आज्ञा देने में बहुत मुलायमियत रखनी चाहिए। क्योंकि हृदय के देहाणुसमूह यकृत् के देहाणुसमूहों की अपेक्षा अधिक चेतनाशक्तिवाले हैं और इनके साथ आदर का व्यवहार करना चाहिए। हृदय को स्मरण दिला दीजिए कि "मैं बेहतर काम की आशा करता हूँ"; परंतु आदर से कहिए; यकृत् की भाँति इस पर घुड़की मत चलाइए। सब अवयवों की अपेक्षा हृदय का देहाणुसमूह बहुत चेतना-विशिष्ट है। यकृत् का देहाणुसमूह बड़ा मूर्ख है, उसमें चेतना की कमी है, उसका स्वभाव ख़च्चर का है; हृदय तो अच्छे कुलीन घोड़े की भाँति चैतन्य और चौकन्ना रहता है। अगर आपका यकृत् बग़ावत करे, तो उसको डाँटकर आज्ञा दो, उसके ख़च्चर स्वभाव को याद रक्खो। आमाशय भी ख़ासा चैतन्य है, यद्यपि हृदय की समता में नहीं है; मलाशय बड़ा फ़र्माबर्दार है; यद्यपि इसके साथ बड़ा ज़ुल्म होता है, पर यह

धीर बना रहता है। यदि आप मलाशय को आज्ञा दें कि हम इतने बजे सवेरे रोज़ मल त्यागना चाहते हैं। बजे बतला दीजिए और ठीक उसी वक़्त पर मल त्यागने जाया कीजिए, अपने वचन को पूरा करते रहिए, तो थोड़े ही दिनों में आपको मालूम हो जायगा कि मलाशय आपकी आज्ञा की ठीक पाबंदी कर रहा है। परंतु स्मरण रखिए कि बेचारे मलाशय के साथ बड़ा दुर्व्यवहार हुआ है और उसको आपके वचनों का विश्वास करने में कुछ समय लगेगा। स्त्रियों का अनियमित मासिकधर्म नियमित बनाया जा सकता है और स्वाभाविक आदत प्राप्त की जा सकती है। इसमें थोड़े ही महीने लगेंगे। जिस तारीख़ को मासिकधर्म होना चाहिए उस तारीख़ को स्मरण कर लें, और प्रतिदिन उसी रीति से बर्ताव करके, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, मासिकधर्मवाले देहाणु-समूहों से कहें कि "अब मासिकधर्म के लिये इतने दिन और बाक़ी हैं, तुम तैयार रहना, अपने काम करते जाओ कि जब समय आवे सब ठीक रहे", जब समय बहुत निकट आ जाय, तो कहो कि "समय अब थोड़ा रह गया है, काम ठीक किए जाओ।" मज़ाक़ की भाँति आज्ञा मत दो, किंतु ऐसा कहो कि मानो तुम दिलोजान से कहते हो, और तब उस आज्ञा का पालन होगा। बहुत से अनियमित स्त्रीधर्मों को एक से लेकर तीन महीनों में इस रीति से अच्छा होते पाया है। यह आपको हास्यजनक जान पड़ेगा, पर हम यही कहेंगे कि आप परीक्षा करके उसको जाँच लीजिए। हमको यहाँ इतना अवकाश नहीं है कि प्रत्येक रोग के लिये अलग-अलग प्रयोग बतलावें, पर आप ऊपर लिखी बातों से समझ जाइए कि पीड़ा-स्थल पर किस अवयव या देहाणुसमूह का अधिकार है और तब उसको आज्ञा दीजिए। अगर आप इस बात को न ठीक कर सकें कि कौन अवयव गड़बड़ मचाए है, तो आप कम-से-कम

पीड़ा के स्थल को तो जान सकते हैं, फिर शरीर के उसी भाग को आज्ञा दीजिए। आपके लिये यह आवश्यक नहीं है कि आप प्रत्येक रोगी अवयव के नाम जानें, आपको केवल उस स्थल पर आज्ञा देना चाहिए, यों कहिए "सुनो जी........।" यह किताब रोगों को दूर करने के लिये नहीं उद्दिष्ट है, इसका अभिप्राय रोगों को न आने देकर स्वास्थ्य ठीक रखने का है; परंतु तो भी कुछ थोड़ी बातें बाग़ी अवयवों को मार्ग पर लाकर आपको सहायता पहुँचाने के लिये लिख दी गई हैं।

ऊपर लिखी हुई रीतियों और उनके रूपांतरों के प्रयोग से जो आपको अपने शरीर पर अधिकार प्राप्त होगा, उसको देखकर आपको आश्चर्य होने लगेगा। तुम सिर से रुधिर नीचे बहाकर सिर की पीड़ा दूर कर सकते हो; आप ठंडे हाथ-पाँव में अधिक रुधिर संचार की आज्ञा दे सकते हैं, और रुधिर-संचार करके उसे गरम कर सकते हैं। हाँ, रुधिर के साथ प्राण भी अवश्य जावेगा। आप रुधिर-संचार में समता ला सकते हैं, जिससे सारा शरीर उत्तेजित हो जाय। आप शरीर के थके भाग को विश्राम पहुँचा सकते हैं। सच तो यह है कि यदि आप इस तरीक़े को धैर्य के साथ जाँच लें और ठीक बर्तना सीख लें, तो इतना कार्य इस तरीक़े के प्रयोग से कर सकते हैं, जिसकी हद नहीं। अगर आप यह नहीं ठीक कर सकते कि कौन-सी आज्ञा दें, तो आप उस अंग से यही कहें—"सुनो जी, अच्छे हो जाओ, हम चाहते हैं कि यह पीड़ा हट जाय, हम चाहते हैं कि तुम अच्छा काम करो।" या ऐसे ही और बात कहो। इसमें संदेह नहीं कि इसमें अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता है, पर इनके बिना तो यह क्या, कोई भी बात प्राप्त नहीं होती।

बीसवाँ अध्याय

प्राणशक्ति

जब शिष्य इस किताब को पढ़ेगा, तो उसे मालूम हो जायगा कि हठयोग के आभ्यंतरिक और बाह्य दो पटल हैं। आभ्यंतरिक से हमारा यह अभिप्राय है कि केवल उन्हीं लोगों के लिये, जो विशेष शिक्षा की कुंजी पाए हुए हैं, और बाह्य से हमारा अभिप्राय ऊपरी, सर्वगम्य का है। इस विषय का बाह्यपटल भोजन से उचित पोषण ग्रहण करना, पानी से शरीर-यंत्र की सिंचाई और मैलों की धुलाई करना, सूर्य की किरणों से वृद्धि और स्वास्थ्य का लाभ उठाना, व्यायाम से बल प्राप्त करना, उचित श्वास से लाभ उठाना, स्वच्छ और ताज़ी हवा से फ़ायदा उठाना है। ये बातें पश्चिमी और पूर्वी दोनों दुनियाओं को मालूम हैं, योगी और अयोगी दोनों पर विदित हैं; इनके अभ्यास से लाभ होते हैं, उनसे दोनों अभिज्ञ हैं। परंतु इसका एक और भी पटल है, जो योगियों और थोड़े पूर्वीय लोगों को तो ज्ञात है, पर पश्चिमी लोगों को और उनको, जो योग के विषय से अनभिज्ञ हैं, बिलकुल अज्ञात है। इसके आभ्यंतर पटल का आधार प्राण है। योगी लोग जानते हैं कि मनुष्य अपने भोजन से प्राण और पोषण प्राप्त करता है, पीने के पानी से प्राण प्राप्त करता है और सफ़ाई का काम लेता है; व्यायाम से प्राण और शारीरिक विकाश प्राप्त करता है, सूर्य की किरणों से प्राण और ताप दोनों ग्रहण करता है—हवा से प्राण और आक्सीजन दोनों लेता है। यह प्राण का विषय सारे हठयोग शास्त्र में भिना हुआ है और शिष्यों को इस पर गंभीर विचार करना चाहिए। जब प्राण इतनी प्रधान बात

है, तो इस प्रश्न पर विचार कर लेना चाहिए कि "प्राण क्या वस्तु है ?"

हमने प्राण की प्रकृति और उसके लाभों का वर्णन "श्वास-विज्ञान"-नामक छोटी किताब में कर दिया है। और हम इस किताब के सफ़हों में भी वे ही बातें भरकर इसे पूरा नहीं किया चाहते, जो बातें एक किताब में प्रकाशित हो चुकी हैं। परंतु इस विषय और कतिपय अन्य विषयों को जो एक बार लिखे जा चुके, दुहरा-कर लिखना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि संभव है कि बहुत-से मनुष्य, जो इस किताब को पढ़ रहे हैं, उस किताब को न पढ़े हों। और प्राण का वर्णन न लिखना अनुचित है। और फिर भी हठयोग की पुस्तक और उसमें प्राण का वर्णन ही नहीं, कैसी अनर्थ की बात है। हम इस वर्णन में बहुत अवकाश न लेंगे और इस विषय के कुल भागों के देने का यत्न करेंगे।

सब युगों और देशों के गूढ़ाचारियों ने अपने कुल चुने हुए शिष्यों को सर्वदा यह उपदेश छिपाकर दिया है कि हवा, पानी, भोजन, सूर्य के प्रकाश में और सर्वत्र एक ऐसा तत्त्व या पदार्थ पाया जाता है, जिससे तमाम क्रिया, शक्ति, बल और जीवट प्रकट होते हैं। इस तत्त्व के नाम देने में लोगों में भेद हुआ है और कहीं इसके सिद्धांतों की व्याख्या में भी अंतर पड़ा है, परंतु असल तत्त्व सब गूढ़ उपदेशों और शास्त्रों में पाया जाता है और सैकड़ों वर्ष से पूर्वीय योगियों की शिक्षाओं और अभ्यासों में मिलता है। हमने इसका प्राण ही नाम रक्खा है, जिस नाम से यह हिंदू गुरु और शिष्यों को विदित है, इसका अर्थ परमशक्ति है।

गुप्त साधनों के आचार्य लोग कहते हैं कि प्राण, शक्ति अर्थात् बल का सर्वव्यापक तत्त्व है, और सब शक्ति या बल इसी तत्त्व में उत्पन्न होते हैं अर्थात् इसी तत्त्व से कई रूपों में प्रकट होते हैं। इन

विचारों से हमारी पुस्तक के इस विषय से संबंध नहीं है, और हम इतना ही समझकर आगे बढ़ते हैं कि प्राण शक्ति का तत्त्व है और सब जीवित चीज़ों में पाया जाता है और यही उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न करता है। इसे जीवन का क्रियावान् तत्त्व—या आप पसंद करें, तो जीवट-बल ख़्याल कर सकते हैं। यह सब प्रकार का जीवन काई से लेकर मनुष्य पर्यंत में पाया जाता है—पौधों के सादे जीवन से लेकर जानवरों के उच्चतम जीवन तक में पाया जाता है। प्राण सर्वव्यापक है। यह सब जीवित वस्तुओं में पाया जाता है, और चूँकि रहस्यशास्त्र बतलाते हैं कि जीवन प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक परमाणु में पाया जाता है—कुछ वस्तुओं की ज़ाहिरी निर्जीवता केवल अल्प विकाश के कारण है, इसलिये हम उनके उपदेशों का यह अर्थ समझते हैं कि प्राण सर्वत्र है, सब पदार्थों में है। प्राण को जीवन से न गड़बड़ाना चाहिए—जीव परमात्मा का अंश है और उसी पर द्रव्य और शक्ति आवरण रूप में लिपटती है। प्राण शक्ति का एक रूप है, जिसे जीव अपने पार्थिव विकाश में काम में लाता है। जब जीव शरीर को छोड़ देता है, तब प्राण उसके अधिकार में न रहने से, व्यक्तिगत परमाणुओं की, या परमाणु-समूहों की जिनसे शरीर बना है, आज्ञा का पालन करता है; प्रत्येक परमाणु इतना प्राण ले लेता है कि नए समूह बना सके; अप्रयुक्त प्राण उस महा-भंडार में मिल जाता है, जहाँ से आया था। जब तक जीव अधिकार रक्खे रहता है, तब तक संसक्ति बनी रहती है और जीव की आकांक्षा से परमाणु सब एकत्र बँधे रहते हैं।

प्राण एक ऐसा नाम है, जिससे हम उस सर्वव्यापक तत्त्व का बोध करते हैं, जो सब गति, बल, शक्ति, चाहे वे आकर्षण-शक्ति के रूप में, चाहे बिजली, ग्रहों की चाल और जीवों के उच्च से लेकर नीच जीवन तक में प्रकट है, सबका द्योतक है। यह बल और शक्ति

के सब रूपांतरों का सारांश कहा जा सकता है; यह वह तत्त्व है, जो एक विशेष रीति से कार्य करके उस प्रकार की क्रिया उत्पन्न करता है, जो जीवन के साथ रहती है ।

यह प्रधान तत्त्व प्रत्येक द्रव्य में है, पर तो भी यह द्रव्य नहीं है। यह हवा में है, पर न तो यह हवा है और न हवा का अवयव ही है। यह उस भोजन में है, जिसे हम खाते हैं, परंतु यह वही पदार्थ नहीं है, जो भोजन में पोषणकारी पदार्थ होते हैं। यह पानी में है, परंतु यह पानी के उन रासायनिक तत्त्वों में से एक भी नहीं है, जिनसे पानी बना हुआ है। यह सूर्य के प्रकाश में है, पर न तो यह ताप है न किरण। यह इन सब चीज़ों की शक्ति है—चीज़ें तो केवल इसको वहन करने-वाली हैं।

मनुष्य इसको हवा, भोजन, पानी, सूर्य के प्रकाश आदि से ग्रहण करने और उसे अपने देह-यंत्र के काम में ले आने में समर्थ है। हमारे अभिप्राय को अच्छी तरह से समझ लीजिए। हमारा अर्थ यह नहीं है कि प्राण इन पदार्थों में इसीलिये है कि मनुष्य उसका व्यवहार करें, यह अभिप्राय नहीं है। प्राण तो इन पदार्थों में प्रकृति के नियम के अनुसार है, और मनुष्य की योग्यता इसके ग्रहण करने और काम में लाने की एक गौण-मात्र है। यह शक्ति तो बनी ही रहेगी, चाहे मनुष्य रहे या न रहे।

जानवर और पौधे हवा के साथ इसे भी अपनी श्वास द्वारा खींचते हैं और यदि हवा में प्राण न रहता, तो वे हवा से भरे रहने पर भी मर जाते। इसे आक्सीजन के साथ देह-यंत्र ग्रहण करता है, पर यह आक्सीजन नहीं है।

प्राण वायुमंडल की हवा में और अन्यत्र भी है, यह ऐसी जगहों में प्रवेश कर जाता है, जहाँ हवा की पहुँच नहीं हो सकती। हवा का आक्सीजन जंतुओं के जीवन के क़ायम रखने में प्रधान काम

करता है, और कार्बन वैसा ही कार्य पौधों के जीवन में करता है; परंतु प्राण जीवन के विकाश में एक पृथक् ही कार्य करता है, जो देह, धर्म, विद्या से अलग है।

हम लोग श्वास द्वारा लगातार हवा को खींच रहे हैं, जो प्राण से भरी हुई है, और हवा से ाण को खींचकर वैसे ही अपने कार्य में ला रहे हैं। प्राण वायुमंडल को हवा स्वतंत्र दशा में पाया जाता है; हवा जब स्वच्छ और ताज़ी रहती है, सो उसमें प्राण की पुष्कल मात्रा रहती है। हम लोग हवा से प्राण को और चीज़ों की अपेक्षा अधिक आसानी से ग्रहण कर सकते हैं। सामान्य रीति से श्वास लेने में हम प्राण की सामान्य मात्रा ग्रहण कर सकते हैं; परंतु श्वास को अपने आधीन करके नियमित श्वास से (जिसे योगी की साँस या प्राणायाम कहते हैं) हम अधिक प्राण खींचने में समर्थ हो सकते हैं, जो प्राण मस्तिष्क और नाड़ीकेंद्रों में जमा हो जाता है कि आवश्यकतानुसार काम में लाया जाय। हम प्राण को उसी प्रकार संचय कर सकते हैं, जैसे बिजली संचय करनेवाली बैटरी उसको संचय करती है। योगियों में जो अनेक शक्तियाँ कही जाती हैं, वे इसी प्राण-विषयक ज्ञान और प्राण के संचित भंडार को विचारपूर्वक काम में लाने से होती हैं। योगी लोग जानते हैं कि किस रीति से साँस लेने से प्राण के भंडार के साथ संबंध जुट जाता है, और उसी प्रकार श्वास लेकर अपनी आवश्यकतानुसार प्राण ग्रहण करके संचय किया करते हैं। इस प्रकार वे अपने शरीर ही को बलिष्ठ नहीं बनाते, वरन् मस्तिष्क भी इसी द्वार से अधिक शक्ति ग्रहण करता है, और इससे गुप्त शक्तियाँ जागृत हो सकती हैं और मानसिक शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। जिसको प्राण संचय करने का तरीका जानकर या अनजान में सिद्ध हो गया है, वह अपने शरीर से जीवट और शक्ति प्रवाहित किया करता है, जिसको

वे लोग अनुभव करते हैं, जो उस मनुष्य के संपर्क में आते हैं। ऐसे जीवट और शक्तिवाले मनुष्य दूसरों को भी जीवट दे सकते हैं और उन्हें अधिक शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं। औजसरोगनिवारण इसी प्रकार किया जाता है, यद्यपि बहुत-से प्रयोक्ताओं को यह भी नहीं मालूम रहता कि उनको यह शक्ति कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई।

पश्चिमी वैज्ञानिक इस प्रधान तत्त्व से, जिससे हवा भरी रहती है, बहुत धुँधले रूप से अभिज्ञ हुए हैं; परंतु इसके कोई रासायनिक लक्षण न पाकर, और अपने किसी औज़ार से इसे प्रत्यक्ष न कर सकने पर, वे लोग पूर्वीय लोगों के इस विचार को निरादर की दृष्टि से देखने लगे। वे इस तत्त्व को समझ न सके, इसलिये इसे अस्वीकार करने लगे। ऐसा मालूम होता है कि उन्हें अब कुछ-कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा है कि अमुक स्थान की हवा में "कोई चीज़" है और बीमार मनुष्यों को उनके डॉक्टर लोग उपदेश देते हैं कि उसी स्थान पर अपने खोए हुए स्वास्थ्य को पाने के लिये जाओ।

हवा के आक्सीजन को रुधिर अपनाता है और रुधिर-संचार का यंत्र उसे अपने काम में लाता है। हवा में अंतर्गत प्राण को नाड़ी-जाल अपनाता है और उसे अपने काम में लाता है, जैसे आक्सीजन-मिश्रित रुधिर शरीर के सब अंगों में पहुँचाया जाता है कि जिनसे शरीर बने और सुधरे, वैसे ही प्राण भी नाड़ी-यंत्र के सब भागों में शक्ति और जीवट लेकर पहुँचाया जाता है। यदि हम प्राण को जीवट का क्रियावान् तत्त्व समझ लें, तो हम इस बात की और भी साफ़ भावना कर सकेंगे कि हम लोगों के जीवन में वह कैसा प्रधान काम करती है। जैसे रुधिर का आक्सीजन देह की आवश्यकताओं से ख़र्च हो जाता है, वैसे ही नाड़ी-यंत्र द्वारा लिया हुआ प्राण भी सोचने, इच्छा करने और क्रिया आदि करने से ख़र्च हुआ करता है और

उसको लगातार मुहइया की आवश्यकता बनी रहती है। प्रत्येक ख़्याल, प्रत्येक क्रिया, इच्छा के प्रत्येक प्रयत्न, मांसपेशी की प्रत्येक गति में नाड़ी-बल ख़र्च होता है; और यह नाड़ी-बल वस्तुतः प्राण ही है। किसी मांसपेशी को संचालित करने के लिये मस्तिष्क नाड़ी द्वारा एक प्रेरणा भेजता है, और मांसपेशी संकुचित होती है; बस इतना प्राण वहाँ खर्च हो गया। जब यह स्मरण रहेगा कि जितना प्राण मनुष्य ग्रहण करता है, उसका अधिकांश श्वास में ली हुई हवा से आता है, तो उचित साँस लेने की प्रधानता अच्छी तरह समझ में आ जायगी।

यह बात देखने में आती है कि श्वास के विषय में पश्चिमी वैज्ञानिक-विचार आक्सीजन ही के ग्रहण और रुधिर-संचार द्वारा उसके वितरण तक रह जाते हैं; योगियों के विचार प्राण के ग्रहण की क्रिया और नाड़ी-यंत्र के मार्ग द्वारा उसके विकाश तक पहुँचते हैं। आगे बढ़ने के पहले नाड़ी-यंत्र को समझ लेना लाभदायक होगा।

मनुष्य का नाड़ी-यंत्र दो बड़े विभागों में विभक्त है, अर्थात् मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग और दूसरा सहानुभवी विभाग। मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग में वह नाड़ी-संस्थान है, जो सिर की खोपड़ी और रीढ़ की नाली में सन्निविष्ट है, अर्थात् मस्तिष्क का भेजा या गुद्दी और रीढ़ की गुद्दी इन्हीं के साथ इनसे निकली हुई शाखाएँ भी हैं। यह विभाग मनुष्य की उन क्रियाओं का निरीक्षण करता है, जो संकल्प, चेतना आदि करके जाने जाते हैं। सहानुभवी विभाग में वह नाड़ीजाल है, जो मुख्यतः गले, पेट और पेट के नीचे के खोखले में स्थित है और भीतरी अवयवों में फैला हुआ है। इसका अधिकार अनिच्छापूर्व क्रियाओं पर है जैसे वृद्धि, पोषण आदि।

मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग देखने, सुनने, स्वाद लेने, सूँघने, वेदना आदि की क्रियाओं को करता है। यह गति संचालित करता

है; इसे जीव सोचने, चेतना प्रकाशित करने के काम में लाता है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा जीव बाहरी जगत् से व्यवहार करता है। इस विभाग की उपमा टेलीफ़ोन के तारों से दी जा सकती है; मस्तिष्क तो सदर दफ़्तर है और मेरुदंड तथा अन्य नाड़ियाँ क्रमशः सदर तार और शाखा तार हैं।

मस्तिष्क भेजा अर्थात् गुद्दी का पुंज है; इसके तीन भाग हैं, अर्थात् (१) मस्तिष्क ख़ास जो खोपड़ी के ऊपरी अगले, मध्य और पिछले भागों में रहता है, (२) छोटा मस्तिष्क जो खोपड़ी के निचले और पिछले भाग में रहता है, और (३) मेडुला ओबलांगेटा, जो मेरुदंड का चौड़ा आरंभ है और जो छोटे मस्तिष्क के आगे रहता है।

मस्तिष्क ख़ास या असली मस्तिष्क मन के उस विभाग का अवयव है, जो बुद्धि-विषयक क्रियाओं में प्रकट होता है। छोटा मस्तिष्क ऐच्छिक मांसपेशियों की गतियों पर अधिकार रखता है। मेडुला ओबलांगेटा मेरुदंड का ऊपरी चौड़ा भाग है और उससे तथा छोटे मस्तिष्क से खोपड़ी की नाड़ियाँ निकलकर सिर के अनेक भागों में, इंद्रियों में, गले और पेट के अवयवों तथा श्वास लेने के अवयवों में पहुँचती हैं।

मेरुदंड या रीढ़ की हड्डी की गुद्दी रीढ़ की नाड़ी में भरी रहती है। यह गुद्दी की एक लंबी ढेरी है जिसमें से रीढ़ की हड्डी की गाँठों-गाँठों से शाखाएँ फूट-फूटकर उन नाड़ियों से जा मिलती हैं, जो शरीर के सब भागों में फैली हुई हैं। मेरुदंड टेलीफ़ोन के एक सदर तार की भाँति है, और उसकी शाखाएँ उससे लगी हुई शाखा तारों की भाँति हैं।

सहानुभवी विभाग में दो प्रधान श्रृंखलाएँ नाड़ी-गुच्छकों की हैं, जो मेरुदंड के दोनों बग़लों में अवस्थित हैं; और इनके अतिरिक्त

सिर, गर्दन, छाती और पेट के नाड़ी-गुच्छक भी इन्हीं में नत्थी हैं। नाड़ी-गुच्छक गुद्दी की एक छोटी ढेरी होती है, जिसमें नाड़ी के देहाणु रहते हैं। ये नाड़ी-गुच्छक एक दूसरे से तंतुओं द्वारा लगाव रखते हैं, और इनका लगाव मस्तिष्क-मेरुदंड विभाग से भी चेतनावाहिनी और क्रियावाहिनी नाड़ियों द्वारा है। इन्हीं नाड़ी-गुच्छकों से अनेक तंतु निकल-निकलकर शरीर और रुधिरवाहिनी नालियों आदि के अवयवों से जा मिलते हैं। बहुत-से स्थानों में ये नाड़ियाँ एकत्रित हो जाया करती हैं और वहाँ नाड़ीग्रंथि (चक्र) बन जाती है। सहानुभवी विभाग अनिच्छापूर्वक प्रक्रियाओं पर शासन करता है, जैसे रुधिर-संचालन, श्वास लेना और पाचन आदि।

जिस शक्ति या बल को मस्तिष्क इन नाड़ियों द्वारा शरीर के सब अंगों में भेजता है, उसे पश्चिमी विज्ञानी "नाड़ी-बल" कहते हैं, यद्यपि योगी लोग उसे प्राण का विकाश समझते हैं। ख़ासियत और वेग में वह बिजली की धारा के समान होता है। यह बात देखने में आवेगी कि विना इस नाड़ी-बल के हृदय धड़क नहीं सकता, भिन्न-भिन्न अवयव अपनी क्रिया नहीं कर सकते; सच तो यह है कि विना इसके शरीर-यंत्र बिलकुल निष्क्रिय हो जाता है, जब ये बातें ख़्याल की जावेंगी, तब प्राण के आकर्षण करने का महत्त्व सब पर विदित होगा; तथा इस श्वासविज्ञान की महिमा उससे भी अधिक होगी, जितना पश्चिमी विज्ञान अब कर रहा है।

इस नाड़ी-यंत्र के एक पटल में योगियों की शिक्षाएँ पश्चिमी विज्ञान से बहुत आगे बढ़ जाती हैं। हमारा अभिप्राय उस नाड़ी-ग्रंथि से है, जिसे पश्चिमी विज्ञान सौर्यकेंद्र कहता है, और जिसे वह अन्य नाड़ी-ग्रंथियों में से केवल एक नाड़ी-ग्रंथि समझता है, जिसके गुच्छक शरीर के अनेक भागों में पाए जाते हैं। योगविज्ञान कहता है कि नाड़ी-ग्रंथि वस्तुतः नाड़ी-जाल में सर्व-प्रधान अंग है; यह एक प्रकार

का मस्तिष्क है, जो मानव शरीर में मुख्य कार्य करता है। पश्चिमी विज्ञान इसकी महिमा समझने की ओर थोड़ा-थोड़ा झुका जाता है, परंतु योगी लोग इसकी महिमा सैकड़ों वर्ष से समझे हुए हैं। पश्चिमी वैज्ञानिक इसे पेट का मस्तिष्क भी कहते हैं। यह सौर्यकेंद्र आमाशय के पीछे, उसके गढ़े के ठीक पीछे, मेरुदंड के दोनों ओर होता है। यह सफ़ेद और भूरी गुद्दियों का बना हुआ उसी प्रकार का होता है, जैसी मनुष्य की और गुद्दियाँ हुआ करती हैं। इसका अधिकार मनुष्य के भीतरी सभी प्रधान अवयवों पर है; और जितना ख़्याल किया जाता है, उससे कहीं अधिक बड़ा-बड़ा काम करता है। हम इस सौर्यकेंद्र के विषय में योगियों के विचार का सविस्तर वर्णन नहीं करेंगे; केवल हम इतना ही बतला देंगे कि यही प्राण का सदर भंडार है। इस स्थान पर चोट लगने से मनुष्य तुरंत मरते हुए जाने गए हैं। और पहलवान लोग इसकी मार्मिकता को जानते हैं, इसलिये इस स्थान पर चोट पहुँचाकर अपने विपक्षी को थोड़े काल के लिये शक्तिहीन बना देते हैं।

इस ग्रंथि को जो "सौर्य" विशेषण दिया गया है, वह बहुत ही उपयुक्त है, क्योंकि प्राण का भंडार होने के कारण यह उसी प्रकार बल और शक्ति को फैलाता है, जैसे सूर्य प्रकाश और ताप आदि को फैलाता है। ख़ास मस्तिष्क भी प्राण के लिये इसी का आश्रय करता है। देर या सबेर पश्चिमी विज्ञान भी इस सौर्यकेंद्र की क्रियाओं को समझने लगेगा और यह केंद्र पश्चिमी विज्ञान में महत्त्व की उस पदवी को पावेगा, जो इस वर्तमान समय की पदवी से कहीं ऊँची होगी।

इक्कीसवाँ अध्याय

प्राण के अभ्यास

हम इस किताब के अन्य अध्यायों में आपको बतला आए हैं कि प्राण हवा, भोजन और पानी से प्राप्त किया जा सकता है। हमने श्वास लेने, भोजन करने और जल के व्यवहार करने की सविस्तर शिक्षा दे दी है। अब इस विषय में कहने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह गया है। परंतु इस विषय को छोड़ देने के पहले हम हठयोग के कुछ ऊँचे सिद्धांतों और अभ्यासों को आपको बतला देना अच्छा समझते हैं कि यह प्राण कैसे प्राप्त किया जाता है और कैसे वितरित किया जाता है। हमारा उद्देश तालयुक्त श्वास से है, जो हठयोग के अभ्यासों की कुंजी है।

सभी वस्तुएँ स्फुरण अर्थात् कंप में हैं। छोटे-से-छोटे परमाणु से लेकर बड़े-से-बड़े सूर्य तक सभी स्फुरण की दशा में हैं। प्रकृति में कोई भी वस्तु नितांत स्थिर नहीं है। यदि अकेला एक परमाणु भी कंप से हीन हो जाय, तो सारी सृष्टि को विनष्ट कर दे। अनवरत स्फुरण में विश्व का कार्य हो रहा है। द्रव्य के ऊपर शक्ति का प्रभाव पड़ रहा है, जिसके परिणाम से अगणित रूप और असंख्य भेद उत्पन्न होते रहते हैं; परंतु ये रूप और भेद भी नित्य नहीं हैं। ज्यों ही वे बन जाते हैं, त्यों ही परिवर्तन होने लगता है और इनसे अगणित रूप उत्पन्न होते हैं, जो परिवर्तित होकर नए रूपों को प्रकट करते हैं। इसी तरह से क्रमशः अनंतता तक सिलसिला लग जाता है। इस रूप के संसार में कोई वस्तु नित्य नहीं है, परंतु तो भी महत् सत्य परिवर्तन-हीन और नित्य है। रूप केवल आभास-

मात्र हैं—वे आते हैं और जाते हैं—परंतु असलियत नित्य और अविकारी है।

मानव शरीर के परमाणु अनवरत स्फुरण में हैं। अनंत परिवर्तन हुआ करते हैं। जिन द्रव्यों से आपका शरीर बना है, थोड़े ही दिनों में उनमें पूरा परिवर्त्तन हो जाता है; आपके शरीर में इस समय जितने परमाणु हैं, कुछ महीनों के पश्चात् शायद ही कोई उनमें से शेष रह जाय। स्फुरण, लगातार स्फुरण! परिवर्तन, लगातार परिवर्तन।

सब स्फुरण में एक ताल पाया जाता है। ताल विश्व में व्यापक है। ग्रहों के सूर्य के गिर्द घूमने, समुद्र के उभड़ने और दबने, हृदय के धड़कने, ज्वार के उठने और भाटा के बैठने, सबमें ताल का नियम चरितार्थ होता है। सूर्य की किरणें हमारे पास आती हैं, वृष्टि होती है, सब उसी नियम के अनुसार। सब वृद्धि इसी नियम की प्रदर्शिनी है। सब गति इसी ताल के नियम का प्रकाशन है।

हमारा शरीर ताल के नियम का वैसा ही वशवर्ती है, जैसा ग्रह का सूर्य के चारों ओर घूमना है। योग के श्वासविज्ञान का भीतरी और गूढ़ तत्त्व अधिकांश प्रकृति के इसी विदित नियम पर आश्रित है। शरीर के ताल में मिलकर योगी बहुत अधिक प्राण आकर्षण कर सकता है, जिसको वह अपने अभीष्ट-साधन में लगाता है। आगे चलकर इस विषय को हम अधिक विस्तार से कहेंगे।

यह हमारा शरीर एक छोटी खाड़ी की भाँति है, जो समुद्र से पृथ्वी में घुस गई हो। यद्यपि प्रकट में तो यह अपने ही नियमों के वशवर्ती है, परंतु वास्तव में यह समुद्र की ज्वार और भाटा के नियमों के आधीन है। जीवन का महासमुद्र उमड़ और पचक रहा है, उठता है और बैठता है, और हम लोग उसी के कंप और ताल के अनुगामी हो रहे हैं। स्वाभाविक दशा में हम जीवन के महा-

समुद्र के कंप और ताल को ग्रहण कर लेते हैं और उसका अनुसरण करते हैं, परंतु कभी-कभी खाड़ी के मुहाने पर बही हुई मिट्टी आकर मुँह बंद कर देती है और हम महासागर की प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते तथा हमारे भीतर गड़बड़ पैदा हो जाती है।

आप लोगों ने सुना होगा कि बेला बाजे पर एक स्वर यदि ठीक तालयुक्त बार-बार बजाया जाय, तो ऐसे कंपों को संचालित करेगा, जो किसी समय में एक पुल को ढाह सकते हैं। यही बात उस समय होती है, जब कोई पलटन पुल पार करने लगती है, तब सर्वदा यह हुक्म दिया जाता है कि क़दम तोड़ दिया जाय (अर्थात् सबके एक पैर साथ न उठाए और रक्खे जायँ) नहीं तो क़दम का कंप पुल और पलटन दोनों को नीचे गिरा दे। इस तालयुक्त गति के प्रभाव के उदाहरणों से आप भावना कर सकते हैं कि तालयुक्त श्वास का कितना प्रभाव शरीर पर पड़ सकता है। सारा शरीर कंप को ग्रहण कर लेता है और आकांक्षा के सुर में मिल जाता है, जिससे फेफड़ों में तालयुक्त गति होने लगती है, और जब वह इस प्रकार सुर में मिल जाता है, तब आकांक्षा की आज्ञाओं का तुरंत पालन करने लगता है। जब शरीर का सुर इस तरह ठीक हो जाय, तो अपनी आकांक्षा की आज्ञा से शरीर के किसी भाग के रुधिर-संचालन को बढ़ाने में योगी को कठिनता नहीं होती। इसी प्रकार वह शरीर के किसी भाग में अधिक नाड़ीबल प्रवाहित कर सकता है, जिससे शरीर को शक्ति और उत्तेजना मिले।

इसी प्रकार तालयुक्त श्वास द्वारा योगी कंप को मानो ग्रहण कर लेता है और अधिक परिमाण के प्राण पर अधिकार कर लेता है और उसे ग्रहण कर लेता है और तब वह उसकी इच्छा के आधीन हो जाता है। तब वह उसे साधन बना लेता है कि उसके द्वारा दूसरों के पास विचार भेज सकता है और उनको अपनी ओर आक-

षित कर सकता है, जिनके विचार उसी कंप में बह रहे हैं। दूर से रोग दूर करने, विचार भेजने और ग्रहण करने, मानसिक क्रियाओं से रोग दूर करने, मिसमेरिज़्म आदि के दृश्य, जो आजकल पश्चिमी दुनिया में इतना कुतूहल उत्पन्न कर रहे हैं और जो योगियों को सैकड़ों वर्ष से विदित हैं, बहुत ही अधिक बढ़ाए जा सकते हैं, यदि विचार भेजनेवाला मनुष्य तालयुक्त श्वासक्रिया करने के पश्चात् इन प्रयोगों को करे। तालयुक्त श्वास मानसिक और ओजस क्रियाओं द्वारा रोग आदि दूर करने में दूने से भी अधिक प्रभाव बढ़ा देगा।

तालयुक्त श्वासक्रिया में असल बात ताल की भावना प्राप्त करना है। उन लोगों के लिये, जो संगीत से कुछ जानकारी रखते हैं, नपी-तुली गिनती की भावना परिचित है। दूसरों के लिये पलटन के सिपाहियों के तालयुक्त क़दम "बायाँ, दहना; बायाँ, दहना; बायाँ, दहना; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार; एक, दो, तीन, चार;" कुछ-कुछ भावना दे सकेंगे।

योगी अपने ताल के समय को उस मात्रा के आश्रित रखता है, जो उसके दिल की धड़कन के अनुसार होता है। दिल की धड़कन भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न काल का अंतर देकर हुआ करती है; परंतु प्रत्येक मनुष्य के हृदय की धड़कन की मात्रा उस व्यक्ति के लिये तालयुक्त साँस लेने में उपयुक्त हुआ करती है। अपनी नाड़ी पर हाथ रखकर अपने हृदय की स्वाभाविक धड़क की मात्रा को निश्चित करो और तब गिनो—१, २, ३, ४, ५, ६; १, २, ३, ४, ५, ६; इत्यादि, जब तक ताल की भावना दृढ़ होकर तुम्हारे मन में अंकित न हो जाय। थोड़े अभ्यास से ताल निश्चित हो जायगा कि जिससे तुम आसानी से उसे दुहरा सको। प्रारंभिक दशा में मनुष्य छः मात्रा में श्वास भीतर खींचता है, परंतु अभ्यास से वह इसे बहुत बढ़ा सकता है।

तालयुक्त श्वास लेने में योगी का यह नियम है कि श्वास (भीतर खींचना) और प्रश्वास (बाहर फेंकना) दोनों में मात्राएँ समान रहें, और श्वास को भीतर रोकने तथा श्वासों के बीच बिना श्वास के रहने की मात्राएँ श्वास और प्रश्वास की मात्राओं से आधी रहा करें।

तालयुक्त श्वास का नीचे लिखा हुआ अभ्यास अच्छी तरह सिद्ध कर लेना चाहिए, क्योंकि यह अनेक अन्य अभ्यासों का, जिनका आगे चलकर वर्णन होगा, आधार है।

(१) सीधे सुख आसन से बैठो, जिसमें जहाँ तक संभव हो, छाती, गर्दन और सिर एक सीध में हो, कंधे थोड़ा पीछे दबे और हाथ आसानी से जाँघों पर पड़े हों। इस स्थिति में शरीर का बोझ अधिकांश पसलियों पर रहता है, और यह स्थिति आसानी से क़ायम रक्खी जा सकती है। योगियों की यह बात जानी हुई है कि तालयुक्त श्वास का पूरा फल न मिलेगा, यदि छाती भीतर दबी और पेट निकला रहेगा।

(२) धीरे-धीरे पूरी साँस भीतर खींचो और छाती की धड़क के समान छः मात्रा तक गिनते जाओ।

(३) तीन मात्रा की गिनती तक श्वास को रोक रक्खो।

(४) धीरे-धीरे नाक से हवा बाहर निकालते जाओ और छः मात्रा तक गिनते जाओ।

(५) श्वास छोड़ देने के पश्चात् ३ मात्रा तक श्वास को बाहर ही रोक रक्खो।

(६) कई बार इसी तरह से साँस लो, पर आरंभ ही में अपने को थका मत डालो।

(७) जब तुम कसरत समाप्त किया चाहो, सफ़ाईवाली श्वास-क्रिया कर डालो, जो तुम्हें विश्राम देगी और फेफड़ों को साफ़ कर डालेगी।

थोड़े अभ्यास के बाद तुम श्वास खींचने और प्रश्वास छोड़ने के

काल को बढ़ा सकोगे और थोड़े ही दिनों में इनका काल १९ मात्रा तक हो सकेगा। इसके बढ़ाने में स्मरण रखना कि श्वास रोकने और दो श्वासों के बीच विना श्वास के रहने की मात्रा श्वास और प्रश्वास की मात्रा की आधी होनी चाहिए।

श्वास के समय बढ़ाने के लिये अपने को बहुत थका मत डालो, परंतु ताल प्राप्त करने के लिये जहाँ तक हो सके यत्न करो, क्योंकि यह श्वास की लंबाई की अपेक्षा अधिक प्रधान है। अभ्यास करते जाओ और यत्न में लगे रहो कि गति का नपा-तुला कंप मालूम हो जाय और कंप की गति के ताल की सारे शरीर में वेदना अनुभव करने लगो। इसमें थोड़े अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता होगी, परंतु अपनी उन्नति पर जो सुख मालूम होगा, वह इस परिश्रम को आसान बना देगा। योगी बहुत ही संतोषी और धैर्यवान् मनुष्य होता है, और इन्हीं गुणों से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है।

प्राण का उत्पन्न करना

भूमि या चारपाई पर चित पड़ जाओ, कुल शरीर को शिथिल कर दो, हाथ हल्के-हल्के सौर्यकेंद्र पर पड़े रहें, (जहाँ आमाशय का गड्ढा रहता है अर्थात् जहाँ से पसलियाँ पृथक् होने लगती हैं) तालयुक्त श्वास लो। जब ताल पूरी तरह से निश्चित हो जाय, यह आकांक्षा करो कि प्रत्येक श्वास प्राण-भंडार से अधिक प्राण या जीवट-शक्ति खींचे, जिसे नाड़ी-जाल ग्रहण करके सौर्यकेंद्र में संचित करे। प्रत्येक प्रश्वास के छोड़ते समय यह आकांक्षा करो कि प्राण या जीवट-शक्ति सारे शरीर में वितरित होवे, प्रत्येक अवयव और भाग प्रत्येक मांसपेशी, देहाणु और परमाणु, प्रत्येक नाड़ी, धमनी और शिरा, सिर की चोटी से लेकर पैर के अँगूठे तक में प्रत्येक नाड़ी को बलशक्ति उत्तेजना देते, प्रत्येक नाड़ी-केंद्र को भरते, सारे शरीर में शक्तिबल और दृढ़ता पहुँचाता हुआ जा रहा है। जब

आकांक्षा का प्रयोग करो, तब भीतर आते हुए प्राण की मानसिक मूर्ति बना लो कि फेफड़े द्वारा आ रहा है और सौर्यकेंद्र द्वारा ग्रहण किया जा रहा है; और प्रश्वास के यतन में सारे शरीर के कुल भागों में अँगुलियों के सिरों और पैर की अँगुलियों तक में जा रहा है। बड़े परिश्रम से आकांक्षा करना आवश्यक नहीं है; केवल जैसा तुम चाहते हो उसी की आज्ञा दो और उसकी मानसिक मूर्ति बना लो। मानसिक मूर्ति के संग-संग शांत आज्ञा बलपूर्वक इच्छा करने की अपेक्षा बेहतर है, क्योंकि बलपूर्वक इच्छा करने में शक्ति का व्यर्थ व्यय होता है। ऊपर लिखी हुई कसरत बहुत ही लाभ देनेवाली है; और नाड़ीजाल को ताज़ा और शक्तिमान् बना देती है, और सारे शरीर में विश्राम का भाव फैला देती है। यह उस जगह बहुत ही गुणकारी प्रतीत होता है, जहाँ मनुष्य थका है या शक्ति की कमी समझता है।

रुधिर-संचालन का परिवर्तन करना

लेटकर या सीधे बैठे हुए तालयुक्त श्वास लो, और प्रश्वास छोड़ते समय जिस भाग में चाहो, उसी भाग में रुधिर-संचार को प्रेरित होने की आकांक्षा करो, अधूरे रुधिर-संचार के कारण कोई दुःख भोग रहा हो। यह क्रिया ठंडे पैर और सिर की पीड़ा की दशा में बहुत लाभ-दायक होती है; दोनों दशाओं में रुधिर नीचे की ओर संचालित किया जाता है, पहली दशा में तो पैर को गरम करने के लिये और दूसरी दशा में सिर के दबाव को हलका करने के लिये। ज्यों-ज्यों रुधिर का संचार नीचे आवेगा, त्यों-त्यों टाँगों में तुम गर्मी मालूम करने लगोगे। रुधिर-संचार अधिकांश आकांक्षा के अधिकार में होता है और ताल-युक्त श्वास कार्य को और भी आसान कर देती है।

फिर प्राण भरना

यदि तुम्हें मालूम हो कि तुम्हारी जीवट-शक्ति क्षीण होती जाती

है और तुम्हें शीघ्र जीवट-शक्ति का संचय कर लेना आवश्यक है, तो सर्वोत्तम उपाय यह है कि दोनों पैरों को इकट्ठा कर लो (एक दूसरे के बग़ल में) और दोनों हाथों की अँगुलियों को जैसे चाहो वैसे एक हाथ की अँगुलियों को दूसरे हाथ की अँगुलियों से ग्रंथि-रूप में बाँध लो। इससे मंडल बंद हो जाता है, और छोरों से प्राण का निकलना रुकता है। तब कई बार तालयुक्त श्वास लो और फिर प्राण से भर जाने का प्रभाव तुम्हें मालूम होने लगेगा।

मस्तिष्क को उत्तेजित करना

नीचे लिखी हुई कसरत को, योगियों ने मस्तिष्क की क्रिया को उत्तेजित करने में, कि सोचना और विचारना स्पष्टता के साथ हुआ करे, बहुत लाभदायक पाया है। यह मस्तिष्क और नाड़ी-जाल के साफ़ करने में आश्चर्यजनक प्रभाव रखती है; और जिन्हें मानसिक काम करना पड़ता है, वे इसे बहुत गुणकारी पावेंगे, जिसके द्वारा बेहतर मानसिक क्रिया भी होगी और कठिन मानसिक परिश्रम के बाद इसके द्वारा मन ताज़ा और स्वच्छ हो जायगा।

सीधे बैठो, रीढ़ की हड्डी को सीधा रक्खो, आँखों को ठीक सामने रक्खो, हाथ टाँगों के ऊपरी भाग पर पड़े रहें। तालयुक्त श्वास लो, परंतु दोनों नथनों द्वारा श्वास लेने के स्थान पर, जैसा सामान्य श्वास में किया करते हो, बाएँ नथने को अँगूठे से बंद कर लो और केवल दहने नथने से श्वास भीतर खींचो। तब अँगूठा हटा लो और दहने नथने को अँगुली से बंद करो और तब बाएँ नथने से प्रश्वास बाहर निकाल दो। तब बिना अँगुलियों के बदले हुए बाएँ नथने से श्वास खींचो, और अँगुली बदलकर दहने से प्रश्वास छोड़ो। तब दहने से श्वास लो और बाएँ से श्वास छोड़ो, और इसी तरह से ऊपर लिखी हुई रीति से नथनों को बदलते जाओ, अप्रयुक्त नथने को अँगूठे या अँगुली से बंद किए

रहो। यह योगियों का सबसे पुराना तरीक़ा श्वास का है, और यह मुख्य और लाभदायक तरीक़ा ग्रहण ही करने के योग्य है। परंतु पश्चिमी लोग इसी को योगियों की सारी योग-शिक्षा समझते हैं। इसे जानकर योगियों को हँसी आ जाती है। पश्चिमी लोगों को योगियों की श्वासक्रिया की यही भावना होती है कि एक हिंदू सीधे बैठा है और श्वास लेने में कभी इस नथने से और कभी उस नथने से श्वास ले रहा है। "केवल इतना ही और बस।" हम आशा करते हैं कि इस किताब से पश्चिमी दुनिया की आँखें खुल जावेंगी और योगी के श्वास-क्रिया के महत्त्व और इसके प्रयोग के अनेक तरीक़ों को लोग समझ जायँगे।

योगियों की महती मानसिक श्वास-क्रिया

योगियों को एक प्रिय श्वासक्रिया मालूम है, जिसका वे कभी-कभी अभ्यास करते हैं, जिसका नाम एक संस्कृत शब्द है, जिसका ऊपर दिया हुआ अर्थ है। हमने इसको अंत में दिया है, क्योंकि इसमें शिष्यों की ओर से ऐसे अभ्यास की आवश्यकता है कि जिसमें ताल-युक्त श्वास और मानसिक कल्पना दोनों हों और जिसे वह पहले वर्णन की हुई कसरतों के द्वारा अब प्राप्त कर लिया होगा। इस महाश्वास के मूल-तत्त्व को हम इस पुरानी हिंदू कहावत द्वारा थोड़े में कह देते हैं कि "धन्य वह योगी है, जो अपनी हड्डियों द्वारा श्वास लेता है।" इस कसरत से सारा शरीर-यंत्र प्राण से भर जायगा और शिष्य इस कसरत को जब समाप्त करेगा, तो उसकी प्रत्येक हड्डी, मांसपेशी, नाड़ी, देहाणु, रेशा, अवयव और भाग शक्तिसंपन्न और प्राण तथा श्वास के ताल के लय में मग्न होकर निकलेंगे। यह शरीर-यंत्र को साफ़ कर देनेवाली कसरत है और जो शिष्य इसका सावधानी से अभ्यास करता है, उसको मालूम होगा कि मानो उसको नया शरीर मिल गया है, जो सिर से लेकर पैर के अँगूठे

तक ताज़ा-ताज़ा बना हुआ है। हम आगे उस कसरत को लिखते हैं।

(१) शरीर को शिथिल करके बिलकुल आराम से पड़ जाओ।

(२) तालयुक्त श्वास लो, जब तक ताल ठीक न हो जाय।

(३) श्वास खींचते और प्रश्वास छोड़ते समय यह कल्पना करो कि श्वास टाँगों की हड्डियों से आ रही है और उन्हीं में होकर निकल रही है ; तब भुजाओं की हड्डियों से, फिर आमाशय से, फिर जननेंद्रिय के स्थान से ; तब मानो मेरुदंड से आ और जा रही है ; तब मानो साँस चमड़े के प्रत्येक छिद्र से खींची और प्रवाहित की जा रही है और सारा शरीर मानो प्राण और जीवन से भर रहा है।

(४) तब तालयुक्त साँस लेते हुए प्राण की धार सातों मर्म-स्थानों में बारी-बारी से भेजो, जैसा नीचे दिया जाता है, परंतु ऊपर लिखी हुई मानसिक कल्पना बनी रहे।

(अ) ललाट-प्रदेश में।

(ब) सिर के पिछले भाग में।

(स) मस्तिष्क के आधार में।

(द) सौर्यकेंद्र में।

(ई) पेट के नीचे के खोखले (गुदाचक्र) में।

(फ) नाभिप्रदेश में।

(ज) जननेंद्रिय प्रदेश में।

प्राण का प्रवाह सिर से पैर तक कई बार आगे-पीछे बहाकर समाप्त कर दो।

(५) सफ़ाईवाली क्रिया करके ख़तम कर दो।

बाईसवाँ अध्याय

शिथिलीकरण विज्ञान

शरीर के शिथिल करने का विज्ञान हठयोग शास्त्र का एक मुख्य अंग है और बहुत-से योगी इस विषय की इस शाखा में बहुत अधिक जी लगाते और सावधानी रखते हैं। पहली दृष्टि में तो सामान्य पाठक को इस शिक्षा की भावना कि शरीर कैसे शिथिल किया जाय, कैसे विश्राम किया जाय बड़ी हास्य-जनक होगी, क्योंकि उनके ख़याल से प्रत्येक मनुष्य इस सीधी बात को जानता है।

सामान्य मनुष्य कुछ-कुछ सही भी है। प्रकृति हमें शरीर को शिथिल करना और पूरा विश्राम करना सिखा देती है। इस विज्ञान में बच्चा आचार्य होता है। परंतु ज्यों-ज्यों हम बड़े होते हैं, त्यों-त्यों कृत्रिम आदतें बहुत-सी धारण करते जाते हैं, और पहले की स्वाभाविक आदतों को लोप हो जाने देते हैं। इसलिये मनुष्यों को योगियों से इस विषय में शिक्षा प्राप्त करने की बहुत बड़ी आवश्यकता हो जाती है।

साधारण डॉक्टर भी मनुष्यों की इस विषय के मूल तत्त्वों की अनभिज्ञता की साक्षी दे सकते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि नाड़ी की बीमारियों में अधिकांश बीमारियाँ इस विश्राम करने के विषय की अनभिज्ञता के कारण हुआ करती हैं।

विश्राम और शरीर को शिथिल करना, ये बातें काहिली और सुस्ती से बहुत ही भिन्न हैं। सच बात तो यह है कि जिन लोगों ने शरीर को शिथिल कर देने के विज्ञान को साध लिया है, वे प्रायः अत्यंत क्रियाशील और शक्तिमान् मनुष्य हो गए

हैं; वे शक्ति को व्यर्थ नहीं व्यय करते; वे प्रत्येक गति का हिसाब रखते हैं।

अब शरीर के शिथिल करने के प्रश्न पर विचार कीजिए और यह समझने का यत्न कीजिए कि इसका अर्थ क्या है। इसको अच्छी तरह से समझने के लिये पहले इसके विलोम "आकुंचन" पर विचार कर लीजिए। जब हम किसी मांसपेशी को आकुंचित किया चाहते हैं कि उससे कुछ काम लें, तो हम मस्तिष्क से वहाँ को प्रेरणा भेजते हैं, जिससे वहाँ कुछ अधिक प्राण भेजा जाता है और मांसपेशी आकुंचित हो जाती है। प्राण गतिसंचालिनी नाड़ी में होकर जाता है, मांसपेशी तक पहुँचता है और उसे अपने छोरों को बटोरने की प्रेरणा करता है, और इस तरह से उस अवयव या भाग पर, जिसे हम हिलाया चाहते हैं, ज़ोर लगता है कि वह अवयव काम करे। यदि हम अपने क़लम को स्याही में डुबोना चाहते हैं, तब हमारी आकांक्षा क्रियारूप में इस प्रकार प्रकट होती है कि हमारा मस्तिष्क दाहनी भुजा की कुछ निश्चित मांसपेशियों में, हाथ और अँगुलियों में प्राण की धार भेजता है, जिससे वे आकुंचित हो-होकर हमारे क़लम को दावात तक ले जाते हैं, उसे उसमें डुबोते हैं, और फिर उसे काग़ज़ तक लाते हैं। यही बात हमारी प्रत्येक क्रियाओं में हुआ करती है, चाहे हम उसे जानें या न जानें। चेतना-सहित क्रियाओं में चेतना-शक्ति प्रवृत्ति-मानस को सूचना देती है, जो तत्काल आज्ञा का पालन करता है और अभीष्ट-स्थान पर प्राण की धार भेज देता है। चेतना-रहित क्रियाओं में प्रवृत्ति-मानस आज्ञा की प्रतीक्षा नहीं करता, परंतु स्वयं आप कुल काम पर लग जाता है; आज्ञा देना और उसे कर देना, दोनों काम अपने आप करता है। परंतु प्रत्येक क्रिया, चाहे चेतना-सहित हो वा चेतना-रहित, प्राण की कुछ मात्रा ख़र्च करती है; और यदि ख़र्च

का परिमाण उस परिमाण से अधिक हुआ जिस परिमाण में प्राण को संचय करने का शरीर-यंत्र आदी हो रहा है, तो परिणाम यह होता है कि मनुष्य निर्बल हो जाता है और नितांत थक जाता है। किसी विशेष मांसपेशी की थकावट भिन्न बात है और वह अनभ्यस्त काम के करने से पैदा होती है, क्योंकि उसके आकुंचन करने में प्राण की ग़ैरमामूली मात्रा ख़र्च हुई है।

यहाँ तक हमने शरीर के वास्तविक संचालन के विषय में, जो मांसपेशियों के आकुंचन द्वारा, प्राण की धार उधर प्रवाहित होने से होता है, कहा। एक और मार्ग भी प्राण के व्यय और मांसपेशी के छीजने का है, जो हम लोगों में बहुतों को मालूम नहीं है। हमारे पाठकों में जो लोग शहरों में रहते हैं, वे हमारे अभिप्राय को समझ जायँगे। जब हम प्राण के व्यय की उपमा पानी के उस व्यय से देंगे, जो नल की टोंटी को अच्छी तरह न बंद करने से टपका करता है और व्यय हुआ करता है। यही बात हम लोगों में अधिकांश मनुष्य सर्वदा किया करते हैं। हम अपने प्राण को सर्वदा बहाया करते हैं, और साथ ही मांसपेशी को छिजाया करते हैं और इस तरह से सारे शरीर-यंत्र को सिर से लेकर पाँव तक क्षीण कर देते हैं।

हमारे शिष्य लोग मनोविज्ञान की इस कहावत से निस्संदेह अभिज्ञ होंगे कि "विचार क्रिया का रूप धारण करता है"। जब कोई काम किया चाहते हैं, तो हमारी पहली प्रेरणा मांसपेशी की उस गति की ओर होती है, जो विचार से उत्पन्न कार्य के करने में आवश्यक होती है। परंतु दूसरे विचार के कारण हम पहली गति के करने से रुक सकते हैं, यदि इस दूसरे विचार से रोकना ही अभीष्ट जँचे। हम क्रोध के आवेश में आकर किसी मनुष्य को मारने पर उतारू हो सकते हैं, जिसके ऊपर क्रोध उत्पन्न हुआ हो। ज्यों

ही भाव उत्पन्न हुआ कि मारने की क्रिया की प्रारंभिक गतियाँ शुरू हो गईं। परंतु मांसपेशियों की गति के स्पष्ट प्रकट होने के पहले, दूसरा बेहतर विचार पहली मारनेवाली क्रिया को रोकने का उत्पन्न हुआ (ये सब बातें एक क्षण में हो गईं) और अन्य मांसपेशियों ने पहली मांसपेशियों की गति को रोक लिया। दोहरी क्रिया आज्ञा देने और रोकने की, इतनी शीघ्रता से हो गई कि मन को इन सब गतियों का ज्ञान न हो सका, परंतु तो भी मांसपेशी मारने की इच्छा से काँपने लगी थी कि उसी अर्से में रोकने की प्रेरणा ने उसका विरोध किया और गति को रोक लिया।

यही मूलबात और अधिक सूक्ष्मरूप में अनवरुद्ध विचारों के अनुसरण में थोड़े प्राण की धार को मांसपेशी में भेजता है और मांसपेशी को आकुंचित करता है, जिससे प्राण का व्यर्थ व्यय और मांसपेशियों की व्यर्थ छीजन हुआ करती है। बहुत-से मनुष्य जो गरम मिज़ाज, चिड़चिड़े और जोशीली आदत के होते हैं, वे सर्वदा अपनी नाड़ियों को काम में लगाए और अपनी मांसपेशियों को ताने हुए रहते हैं, क्योंकि उनकी मानसिक दशा अनवरुद्ध और अनधिकृत रहती है। विचार ही क्रिया का रूप धारण करते हैं; और ऊपर लिखे हुए मिज़ाज और आदत का मनुष्य लगातार अपने विचारों की धार को मांसपेशियों में भेजा करता है और फिर उसके उलटे विचार भेजकर पहले को रोका करता है। इसके विपरीत जिस मनुष्य ने स्वाभाविक रीति से या साधन करके शांत और सुशासित मन प्राप्त किया है, उसकी ऐसी प्रेरणाएँ न हुआ करेंगी, न उनके ऐसे प्रतिकूल ही होंगे। वह शांत धीर होकर रहता है और उसके विचार उसे ले नहीं भागते। वह स्वामी है, ग़ुलाम नहीं है।

इन जोशीले ख़्यालात के क्रियारूप में परिणत होने और फिर

उन्हें रोकने के प्रयत्न का रिवाज अक्सर आदत बन जाता है—पुरानी आदत हो जाता है—और ऐसे मनुष्यों की नाड़ियाँ और मांसपेशियाँ सर्वदा तनाव में रहती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि जीवट, प्राण और सारे शरीर की लगातार छीजन हुआ करती है। ऐसे मनुष्यों की बहुत-सी मांसपेशियाँ सर्वदा तनी हुई दशा में रहती हैं, जिसका यह मतलब है कि लगातार प्राण की धार उस ओर बहा करती है और नाड़ियाँ सदा प्राण पहुँचाने के काम में लगी रहती हैं। हमको एक नेक बुढ़िया की कथा याद है, जो रेल पर सवार किसी पास के नगर को जा रही थी। उसको वहाँ पहुँचने की इतनी ख़ुशी थी और इतनी आतुर हो गई थी कि वह अपनी बैठक पर स्थिर बैठ न सकती थी ; इसके विपरीत वह बैठक के किनारे पर बैठी थी, और उसका शरीर आगे की ओर झुका हुआ था, यही दशा कुल १६ मील की यात्रा में रही ; उसका मन मानो ट्रेन को आगे बढ़ने के लिये उत्तेजित कर रहा था। इस बुड्ढी औरत के ख़्यालात यात्रा के अंत के लिये इतने ज़ोर के थे कि ख़्यालात ने क्रिया का प्रत्यक्ष रूप धारण कर लिया था ; और उसको जो शरीर को ढीला करके रखना था, उसके स्थान पर उसकी मांसपेशियाँ आकुंचित हो रही थीं। हम लोगों में से बहुत-से मनुष्य उसी बुढ़िया की भाँति के हैं ; जब हम किसी चीज़ को देखने लगते हैं, तो आतुर होकर सारे शरीर पर तनाव डाल देते हैं ; और एक-न-एक तरह से सर्वदा अपनी बहुत-सी मांसपेशियों पर तनाव डाले रहते हैं। हम ज़ोर से मुट्ठियाँ बाँधते हैं, नाक-भौं चढ़ाते हैं, कसकर अपने ओठों को बंद करते हैं, ओठों को दाँत से काटते हैं, या अपने दाँतों को पीसते हैं या ऐसी ही अन्य बातें करते हैं, जिससे मानसिक दशा क्रियारूपों में प्रकट होती है। यह सब प्राण का व्यर्थ व्यय करना है। इसी तरह की बुरी वे आदतें भी हैं, जिनसे मनुष्य झूठे ही ढोलकी बजाने का हाथ

फेरा करता है, अँगूठा घुमाया करता है, अँगुलियाँ नचाया करता है, पैर की अँगुलियों से ज़मीन ठोंका करता है, मुँह चबाया करता है, तिनके तोड़ा करता है, दाँत से पेंसिल काटा करता है, अपने शरीर के किसी अवयव को हिलाया करता है और झूमा करता है। ये बातें और ऐसी ही अनेक बातें प्राण का व्यर्थ व्यय करने-वाली हैं।

अब मांसपेशियों के आकुंचन के विषय में हम कुछ-कुछ समझने लगे हैं, इसलिये अब फिर शरीर के शिथिल करने के विषय पर चलिए।

शिथिल किए हुए अंग में प्राण की धार का प्रवाह नहीं होता। बहुत थोड़ा-थोड़ा प्राण शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में स्वास्थ्य की दशा में संचार करता है कि जिससे स्वाभाविक स्थिति बनी रहे, परंतु यह धार उस धार की अपेक्षा जो आकुंचन में प्रवाहित की जाती है, बहुत हीन हुआ करती है। शिथिल होने में मांसपेशियाँ और नाड़ियाँ विश्राम की दशा में रहती हैं; और प्राण, व्यर्थ बर्बाद होने के स्थान पर संचित हुआ करता है। यह शिथिलीकरण बच्चों और जानवरों में ग़ौर से देखा जा सकता है। कुछ युवा लोगों में भी पाया जाता है; आप ख़्याल करेंगे कि ऐसे युवा धैर्य, शक्ति, बल और जीवट में अन्यों की अपेक्षा अधिक हुआ करते हैं। काहिल आदमी शिथिलीकरण का उदाहरण नहीं है। शिथिलीकरण और काहिली में बड़ा फ़र्क़ है। शिथिलीकरण उद्यम के बीच में विश्राम है, जिसका परिणाम यह होता है कि बेहतर काम और थोड़े प्रयत्न से होता है। काहिली उद्यम से जी चुराना है और इस ख़्याल का परिणाम अकर्मण्यता होती है।

जो मनुष्य शिथिलीकरण अर्थात् शक्तिसंचय को समझता और व्यवहार में लाता है, वह सबसे अच्छा काम करता है। वह एक सेर

प्रयत्न से एक सेर का काम लेता है, और वह अपनी शक्ति बर्बाद नहीं करता, न बिगाड़ता और न उसे बहाया करता है। सामान्य मनुष्य, जो इस नियम को नहीं समझता, तिगुनी से लेकर पचीसगुनी तक आवश्यकता से अधिक शक्ति उसी काम में ख़र्च कर देता है, चाहे वह काम शारीरिक हो या मानसिक। यदि आपको इस बात में संदेह हो, तो जिनसे आपकी संगति हो जाय, उन्हें ग़ौर से देखिए कि वे कितनी व्यर्थ गतियाँ करते हैं। मानसिक भावों में वे अपने ताबे नहीं रहतीं, जिसका परिणाम शारीरिक अतिव्यय होता है।

योग के गुरु लोग अपने शिष्यों को भारतवर्ष में किताब द्वारा शिक्षा नहीं देते, किंतु, वाणी द्वारा शिक्षा देते हैं। वे प्रकृति और उदाहरण से बहुत-सा वस्तुपाठ पढ़ाते हैं, जिससे शिष्य के हृदय में ठीक भाव बैठ जाय। हठयोग के गुरु जब शिथिलीकरण का पाठ पढ़ाने लगते हैं, तो वे अपने शिष्यों के ध्यान को बिल्ली या उसी की जाति के तेंदुआ, चीता आदि की ओर आकर्षित करते हैं, क्योंकि ये जानवर वहाँ के जंगलों में अधिकता से पाए जाते हैं।

आपने कभी बिल्ली को विश्राम करते देखा है? कभी उसे चूहे के बिल के पास छुपके हुए देखा है? पिछली सूरत में आपने ग़ौर किया है कि कैसे आराम से सुंदर स्थिति में वह छुपकी रहती है—न तो मांसपेशियों का आकुंचन है न तनाव है—अत्यंत शक्ति विश्राम कर रही है, परंतु तुरंत हमला करने के लिये तैयार है। स्थिर और गतिहीन वह पड़ी रहती है; प्रगट वह सोई हुई या मरी नज़र आती है। परंतु देखते रहिए, जब समय आता है, वह बिजली के समान झपटती है। बिल्ली का विश्राम यद्यपि गति और मांसपेशियों के तनाव से विहीन था, पर तो भी वह जीवित विश्राम था—काहिली से बिलकुल ही भिन्न बात थी। परंतु काँपती हुई मांसपेशियों, तनी हुई नाड़ियों और पसीने के बूँदों के अभाव को

स्मरण कर लो। क्रिया के यंत्र प्रतीक्षा ही में नहीं ताने गए हैं। व्यर्थ की हरकत और तनाव नहीं है; सब चीज़ें तैयार हैं, और ज्यों ही क्रिया का अवसर उपस्थित होता है, त्यों ही प्राण ताज़ी मांसपेशियों और विश्रांत नाड़ियों में भेज दिए जाते हैं, और इरादे के साथ-ही-साथ बिजली की कल की चिनगारियों की भाँति क्रिया प्रकट हो जाती है।

हठयोगी, जो सौंदर्य, जीवट और विश्राम में बिल्लियों का उदाहरण देते हैं, वह बहुत ही अच्छा उदाहरण है।

वास्तव में, जब तक शिथिल करने की योग्यता न होगी, तब तक तेज़ी की और ख़ूब प्रभाव की क्रिया न होगी। वे मनुष्य जो चंचल रहा करते हैं, कनमनाया करते हैं और जोश में रहते हैं, और नीचे-ऊँचे पैर पटका करते हैं, सर्वोत्तम काम करनेवाले नहीं होते; वे क्रिया का समय आने के पहले ही अपने को थका देते हैं। जिस मनुष्य का भरोसा किया जा सकता है, वह वह मनुष्य है, जो शांति, शिथिलीकरण की योग्यता और विश्राम रखता है। परंतु चंचल मनुष्य को निराश न होना चाहिए। शिथिलीकरण और विश्राम उसी प्रकार प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे अन्य गुण प्राप्त हुआ करते हैं।

अगले अध्याय में हम कुछ सरल शिक्षाएँ उन लोगों के लिये देंगे, जो शिथिलीकरण विज्ञान का क्रियात्मक ज्ञान चाहते हैं।

शिथिलीकरण के नियम

विचार क्रिया में प्रगट होते हैं, और क्रियाओं का प्रभाव मानस पर पड़ता है। ये दोनों सच बातें साथ ही रहती हैं। इसमें की एक बात उतनी ही सच्ची है, जितनी दूसरी। हम लोगों ने मन का प्रभाव शरीर पर पड़ने के विषय में बहुत कुछ सुना है, परंतु हमें यह न भूलना चाहिए कि शरीर, अथवा उसकी स्थिति और विकृति का

प्रभाव मन और मानसिक दशाओं पर भी पड़ता है। शिथिलीकरण के प्रश्न पर विचार करने में इन दोनों तथ्यों को स्मरण रखना चाहिए।

मांसपेशियों के आकुंचन की अनेकों हानिकारी और मूर्खता की क्रियाएँ और आदतें इस कारण से होती हैं कि मानसिक दशाएँ शारीरिक क्रिया का रूप धारण किया करती हैं। और इसके विपरीत, हमारी बहुत-सी मानसिक दशाएँ हमारी शारीरिक असावधानियों आदि के कारण उत्पन्न हो जाती हैं। जब हम क्रुद्ध होते हैं, तो यह जोश बँधी हुई मुट्ठियों के शारीरिक रूप में प्रकट होता है। और इसके विपरीत यदि हम मुट्ठियाँ बाँधने, नाक-भौं सिकोड़ने, ओठ काटने आदि की आदतें पैदा करें, तो हम अपने मानस को भी ऐसी दशा में ला देंगे कि तनिक-सा कारण पाने पर भी वह क्रोध के आवेग में पड़ जायगा। आप लोग जानते है कि आँखों और ओठों पर मुस्किराहट की क्रिया लाकर उसे थोड़ी देर तक क़ायम रखने से आपको सचमुच मुस्किराहट आ जाती है।

मांसपेशियों के आकुंचन ऐसी हानिकारी क्रिया और उससे व्यर्थ प्राण के व्यय और नाड़ियों की छीजन रोकने के लिये पहला यत्न यह है कि शांति और विश्राम को मानसिक स्थिति पैदा की जाय। यह पैदा की जा सकती है, पर पहले यह बड़ा कठिन काम होगा। परंतु यदि आप इसमें लग जायँगे, तो अपने परिश्रम का पूरा सुफल पा जायँगे। क्रोध और चिड़चिड़ापन को दूर करने से मानसिक साम्य और विश्राम पैदा हो सकते हैं। चिड़चिड़ापन और क्रोध का मूल कारण भय हुआ करता है, परंतु चूँकि हम भय और चिड़चिड़ापन ही को प्रारंभिक मानसिक दशा मानने के आदी हैं, इसलिये हम इन्हें ऐसा ही समझकर बर्ताव करेंगे। योगी बचपन ही से क्रोध और चिड़चिड़ापन दूर करने का

अभ्यास करता है, और परिणाम यह होता है कि जब उसकी कुल शक्तियाँ जग जाती हैं, तब भी वह नितांत क्षोभहीन और शांत बना रहता है और शक्ति तथा बल का रूप दिखाई देता है। वह वैसा ही भाव उत्पन्न करता है, जैसा पर्वत, समुद्र आदि से गुप्त शक्ति के भाव उदय हुआ करते हैं। उसके निकट जाने पर मालूम होता है कि यहाँ बहुत शक्ति और बल पूर्ण विश्राम में हैं। योगी क्रोध को बहुत नीच मनोविकार समझता है, जो नीच जंतुओं और वहशी मनुष्यों में पाया जाता है, परंतु विकसित मनुष्य के तो अत्यंत प्रतिकूल है। वह इसे तत्कालीन उन्माद समझता है, और उस मनुष्य पर रहम खाता है, जो अपने मनःशासन को खोकर क्रोध के आवेग में आ जाता है। वह जानता है कि इससे कुछ भी काम नहीं निकलता और यह शक्ति की व्यर्थ बर्बादी और मस्तिष्क तथा नाड़ी-यंत्र के लिये प्रत्यक्ष हानिकारक है; इस बात के कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि यह धार्मिक प्रकृति और आध्यात्मिक उन्नति को निर्बल करनेवाला तो है ही। इससे यह न समझना चाहिए कि योगी भीरु मनुष्य और बिना वीरता के होता है। इसके विपरीत वह तो भय को कुछ समझता ही नहीं है; उसकी शांति शक्ति की द्योतक है न कि निर्बलता की। आपने कभी ग़ौर किया है कि बड़े बलवाले मनुष्य घमंड और धमकियों से परे रहते हैं, इन्हें वे उन लोगों के लिये छोड़ देते हैं, जो निर्बल तो हैं, पर बातों से अपने को बलवान् दिखाना चाहते हैं। योगी अपनी मानसिक स्थिति से चिड़चिड़ापन को भी निर्मूल करता है। वह समझ गया है कि यह शक्ति के नाश करने की मूर्खता है, जो कभी लाभ नहीं करती और सर्वदा हानि पहुँचाती है। जब किसी विचार योग्य बात पर विचार करना या कठिनाई का दमन करना होता है, तब तो वह गंभीर विचार में लग जाता है, परंतु चिड़चिड़ापन में कभी नहीं गिरता। वह झुँझलाहट को शक्ति

और गति की बर्बादी समझता है, और इसे विकसित मनुष्य के अयोग्य समझता है। वह अपनी प्रकृति और शक्तियों को इतना समझता है कि वह झुँझलाहट में नहीं पड़ता। उसने शनैः-शनैः अपने को इस बला से बचा लिया है, और अपने शिष्यों को यह उपदेश देता है कि क्रोध और झुँझलाहट से छुटकारा पाना असली योग का प्रथम चरण है।

नीच वृत्तियों और मनोविकारों का दमन करना यद्यपि योगशास्त्र की दूसरी शाखाओं का काम है, पर इसका सीधा संबंध शिथिलीकरण के प्रश्न से है, क्योंकि यह स्पष्ट बात है कि जो मनुष्य क्रोध और झुँझलाहट से पृथक् रहने का अभ्यस्त है, वह अनिच्छापूर्व मांस-पेशियों के आकुंचन और नाड़ी की बर्बादी से परे है। क्रोध के आवेग में आए हुए मनुष्य की मांसपेशियाँ मस्तिष्क से निकली हुई अनिच्छा-पूर्व जीर्ण प्रेरणाओं के कारण तनाव पर होती हैं। जो मनुष्य सर्वदा झुँझलाटह का लबादा ओढ़े रहता है, वह लगातार नाड़ियों के तनाव और मांसपेशियों के आकुंचन में रहता है। इसलिये यह तुरत देखने में आवेगा कि जब कोई इन निर्बलकारी मनोविकारों से छुटकारा पाता है, तब वह मांसपेशियों के आकुंचन से भी अधिकांश छुटकारा पा जाता है, जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है। यदि आप इस बर्बादी की खानि से छुटकारा चाहते हैं, तो उन नीच मनो-विकारों से दूर हूजिए, जिनसे यह उत्पन्न हुई है।

इसके विपरीत शिथिलीकरण के अभ्यास से, मांसपेशियों की तनाव की दशा के निवारण करने से इसका प्रभाव मन पर भी पड़ेगा और यह मन को स्वाभाविक साम्य और विश्राम में रक्खेगा। यह ऐसा नियम, जो दोनों ओर काम करता है।

शरीर के शिथिल करने की पहली शिक्षा जो योगी लोग अपने शिष्यों को देते हैं, आगे लिखी जाती है। उसके प्रारंभ करने के पहले

हम अपने शिष्यों के मन पर यह बात अंकित कर दिया चाहते हैं कि "ढील दो" यही शिथिलीकरण का मूल मंत्र है। यदि आप इन दोनों शब्दों के अर्थ को समझ जायँगे और इनका अभ्यास करेंगे, तो आपको इस शिथिलीकरण के विषय में योगियों के प्रचार और अभ्यास का गूढ़ तत्त्व अच्छी तरह से ग्रहण में आ जायगा।

शरीर के शिथिल करने में नीचे लिखा हुआ अभ्यास योगियों को बहुत प्यारा है। चित पड़ जाओ, पूरी तरह से शिथिल करो, प्रत्येक अवयवों को ढील दो। इसी प्रकार ढीले रहने पर अपने मन को सारे शरीर से सिर से पैर की अँगुलियों तक घूमने दो। ऐसा करने में आपको मालूम होगा कि कहीं-कहीं कुछ मांसपेशियाँ अब भी तनी हुई हैं, उन्हें भी ढील दो।

यदि आप इसको अच्छी तरह से करेंगे (अभ्यास से दिन-पर-दिन उन्नति होती जायगी) तो अंत में आपके शरीर की सब मांसपेशियाँ पूरी तरह से शिथिल हो जावेंगी और नाड़ियाँ पूरे विश्राम में हो जावेंगी। कुछ गहरी साँसें लो, और तब तक शांत और पूरी तरह से शिथिल पड़े रहो। एक बग़ल में घूम जाओ और फिर अच्छी तरह ढीले हो जाओ। फिर दूसरे बग़ल में घूमो पर शिथिल अच्छी तरह बने रहो। जैसा पढ़ने में यह आसान जान पड़ता है, वैसा करने में नहीं है, जैसा परीक्षा से आपको मालूम होगा। परंतु इससे अधीर मत होना। इसमें प्रयत्न करते जाओ और अंत में सफल हो जाओगे। जब शिथिल होकर पड़े रहो, तब यह कल्पना करो कि तुम नरम, मुलायम गद्दे पर पड़े हो और तुम्हारे शरीर और अवयव सीसा की भाँति भारी हैं। मन में इन शब्दों को ध्यानपूर्वक जपते जाओ कि "सीसे की भाँति भारी, सीसे की भाँति भारी", साथ-ही-साथ भुजाओं को उठाकर उनमें से तनाव निकालकर प्राण खींच लो कि जिससे वे अपने ही भार से बग़ल में गिर पड़ें। पहले यह बात बहुत मनुष्यों के लिये बड़ी

कठिन होती हैं। वे अपनी भुजाओं को उन्हीं के भार से नहीं गिरने दे सकते, क्योंकि मांसपेशियों के अनिच्छापूर्व आकुंचन की आदत उनमें जकड़-सी गई रहती है। जब भुजाओं पर अधिकार हो जाय, तब टाँगों पर पहले एक-एक करके फिर साथ-ही-साथ दोनों टाँगों पर प्रयोग करो। उन्हें भी अपने ही भार से गिर जाने दो और पूरा शिथिल रहने दो। प्रयोगों के बीच में विश्राम कर लो, और इस कसरत के करते समय उद्योगी मत बनो, क्योंकि भावना तो विश्राम देने और साथ-ही-साथ मांसपेशी पर अधिकार करने की है। तब सिर को उठाओ और उसे भी अपने ही भार से गिर जाने दो। तब फिर पड़े पड़े यह कल्पना करो कि शरीर का सारा भार चारपाई या भूमि सहन कर रही है। इस बात पर तुम हँसोगे कि जब तुम लेटे हो, तो शरीर के सारे भार को चारपाई या भूमि तो सहन ही कर रही है; पर तुम ग़लती में हो। तुम्हें मालूम होगा कि तुम अपने शरीर के कुछ भार को किसी-किसी मांसपेशी को तानकर, तुम आप सहन करने के यत्न में हो—तुम अपने को ऊपर उठाए रहने के यत्न में हो। इसको बंद करो और भार सहन करने के कार्य को चारपाई को करने दो। तुम भी उतने ही मूर्ख हो, जितना वह बूढ़ी औरत थी, जो गाड़ी में अपने बैठके के छोर पर बैठी थी और गाड़ी को आगे बढ़ने में उत्तेजना देने के प्रयत्न में थी। अपने आदर्श के लिये सोते हुए बच्चे को देखो। वह अपने सारे भार को चारपाई पर पड़ा रहने देता है। इसमें यदि तुम्हें संदेह हो, तो जहाँ बच्चा सोता रहा हो, वहाँ बिस्तरे को देखो, वहाँ बच्चे के शरीर के दबाव के चिह्न मालूम देंगे—उसके नन्हे शरीर के दबाव। यदि इस पूरे शिथिलीकरण के भाव को न ग्रहण कर सको तो, इस बात से तुम्हें सहायता मिलेगी कि कल्पना करो कि तुम भीगे कपड़े की भाँति ढीले हो गए हो—सिर से पैर तक ढीले हो गए हो—और बिना तनिक तनाव या कड़ाई के पड़े हो। थोड़े ही

अभ्यास से तुम्हें बहुत जल्द आश्चर्य मालूम होगा और तुम इस विश्राम की कसरत से बहुत ताज़ा होकर उठोगे और अपने कामों को अच्छी तरह से करने की सामर्थ्य तुममें प्रतीत होगी।

शिथिलीकरण के विषय में और भी अनेक कसरतें हैं, जिन्हें हठयोगी अभ्यास करते और शिष्यों को सिखलाते हैं; नीचे लिखी हुई कसरतें उनमें सबसे अच्छी हैं—

(१) हाथ में से सब प्राण खींच लो, मांसपेशियों को ढीला छोड़ दो, जिससे हाथ ढीले पड़कर निर्जीव की भाँति कलाई से झूलने लगें। कलाई से इसे आगे-पीछे हिलाओ। तब दूसरे हाथ पर उसी तरह प्रयोग करो। फिर दोनों हाथों पर साथ ही प्रयोग करो। थोड़े अभ्यास से ठीक भावना मिल जायगी।

(२) यह पहली की अपेक्षा अधिक कठिन है। इसमें अँगुलियों को शिथिल और ढीला करना होता है और इन्हें गाँठों से हिलाना होता है, पहले एक हाथ की अँगुलियों पर परीक्षा करो, तब दूसरे हाथ की और फिर दोनों हाथों की।

(३) भुजाओं में से सब प्राण खींच लो और उन्हें बग़लों में ढीला लटकने दो। तब शरीर को एक बग़ल से दूसरी बग़ल को झुलाओ जिससे भुजाएँ भी अँगरखे की ख़ाली बाहों की तरह केवल शरीर की गति के कारण झूलें; भुजाओं में तनिक भी बल न लगाया जाय। पहले एक भुजा, तब दूसरी और फिर दोनों। इस कसरत को शरीर को अनेकों रीति से घुमा-घुमाकर कर सकते हैं कि जिसमें भुजाएँ ढीली लटकती रहें। यदि आप अँगरखे की ख़ाली बाहों पर ध्यान करेंगे, तो आपको इसकी भावना हो जायगी।

(४) कलाई को ढीला करो और इसे केहुनी से ढीला लटकाओ। इसमें मुसली से गति दो, पर कलाई की मांसपेशियों

के आकुंचन को रोको। कलाई को ढीला करके झुलाओ। पहले एक को, तब दूसरी को और फिर दोनों को।

(५) पैर को पूरी तरह से ढीला करके घुट्टी से झुलाओ। इसमें थोड़े अभ्यास की आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि पैर को हिलानेवाली मांसपेशियाँ थोड़ी बहुत आकुंचित रहती हैं। परंतु बच्चे का पैर, जब उसका वह व्यवहार नहीं करता रहता है, तब अच्छी तरह ढीला रहता है। पहले एक पैर, तब दूसरा और फिर दोनों।

(६) टाँग को, उसमें का सब प्राण खींचकर, ढीला करो और उसे घुटनों से लटकने दो। तब उसे झुलाओ और हिलाओ। पहले एक टाँग तब दूसरी।

(७) किसी गद्दे, तिपाई या बड़ी किताब पर खड़े हो, और एक टाँग को ढीला कर जाँघ से लटकने और झूलने दो। पहले एक टाँग और तब दूसरी।

(८) भुजाओं को सीधा सिर के ऊपर उठाओ और तब उनमें से सब प्राण खींचकर उन्हें अपने ही भार से बग़लों में गिर जाने दो।

(९) घुटने को अपने आगे जहाँ तक ऊँचा उठा सकते हो, उठाओ और तब उसमें के कुछ प्राण को खींचकर उसे अपने ही भार से गिर जाने दो।

(१०) सिर को ढीला करो और उसे आगे गिर जाने दो और तब शरीर में गति देकर उसे झुलाओ; तब एक कुर्सी पर पीछे लटककर बैठो, सिर को ढीला करो और उसे पीछे लटक जाने दो। ज्यों ही उसमें का प्राण खींच लोगे, त्यों ही वह किसी ओर लटक जायगा। इसकी सही भावना प्राप्त करने के लिये किसी ऊँघते हुए मनुष्य का ख़्याल करो, जो कि ज्यों ही निद्रा के वशीभूत हो जाता है और ढीला

पड़ जाता है तथा गर्दन के आकुंचन को बंद कर देता है, त्यों ही अपने सिर को आगे गिर जाने देता है।

(११) कंधों और छाती की मांसपेशियों को ढीली कर दो, जिससे कि छाती का ऊपरी भाग ढीला होकर आगे की ओर गिर जाय।

(१२) कुर्सी पर बैठकर कमर की मांसपेशियों को ढीला करो, जिससे शरीर का ऊपरी भाग आगे को उस प्रकार गिर जायगा, जैसे उस लड़के का शरीर गिर जाता है, जो कुर्सी ही पर बैठे-बैठे सो गया हो।

(१३) जो मनुष्य इन कसरतों को यहाँ तक सिद्ध कर ले, वह यदि चाहे, तो अपने सारे शरीर को गर्दन से लेकर घुटनों तक ढीला कर सकता है; तब वह भूमि पर ढेर-सा गिर जायगा। यह एक बड़ा भारी गुण, अकस्मात् गिर जाने की दशा में है। इस सारे शरीर को ढीला कर देने का अभ्यास मनुष्य को चोट से बचाने में बड़ा काम देगा। तुम ख़्याल करोगे कि जब छोटा बच्चा गिरता है, तो वह इसी प्रकार ढील देता है, जिससे उसे बड़े मनुष्यों की अपेक्षा, जिनको मोंच आ जाता है या जिनके अवयव टूट जाते हैं, बहुत ही कम चोट आती है। यही दृश्य नशे में मतवाले हुए मनुष्यों में देखने में आता है, जिनका वश मांसपेशियों पर नहीं रहता, इसलिये मांसपेशियाँ ढीली हो जाया करती हैं। जब ये गिरते हैं, तब मांस की ढेरी-सा गिर पड़ते हैं और बहुत कम चोट खाते हैं।

इन कसरतों के अभ्यास में प्रत्येक को कई बार कर लो, तब दूसरी को शुरू करो। ये कसरतें बहुत बढ़ाई जा सकती हैं और कई प्रकार की तथा शिष्य की बुद्धि के अनुसार भी बनाई जा सकती हैं। अगर चाहो तो तुम्हीं अपनी नई कसरत रच लो, पर ऊपर दी हुई बातों का ध्यान रखना।

शिथिलीकरण के अभ्यास करने से शरीर को अधिकार में लाने

और विश्राम करने का अनुभव होता है, जो एक बड़ी लाभदायक बात है। जब योगियों के शिथिलीकरण विचार का ख़्याल करने लगो, तब "विश्राम में शक्ति" की भावना किए रहो। यह अत्यंत थकी हुई नाड़ियों को बहुत लाभ पहुँचाता है, यह शरीर की उस जकड़न को छुड़ाने का उपाय है, जो एक ही समुदाय की मांशपेशियों को अपनी जीविका के लिये काम में लाते रहने से पैदा हो जाती है और इच्छानुसार विश्राम करने के द्वारा थोड़े ही अर्से में जीवट-लाभ करने का सरल उपाय है। पूर्वीय लोग इस शिथिलीकरण के विज्ञान को प्रायः जानते हैं और इसका व्यवहार प्रतिदिन के जीवन में करते हैं। वे ऐसी-ऐसी यात्रा पर चल खड़े होते हैं, जिनसे पश्चिमी लोग भयभीत हो जावेंगे। ये लोग बहुत मील चलकर एक जगह ठहर जाते हैं; वहाँ ये लेट जाते हैं; प्रत्येक मांसपेशी को ढीला कर देते हैं और सब इच्छानुवर्ती मांसपेशियों से प्राण खींच लेते हैं, जिससे सिर से पैर तक शरीर ढीला और प्रकट निर्जीव-सा हो जाता है। यदि संभव होता है, तो थोड़ी नींद भी ले लेते हैं, यदि नहीं तो जागते ही रहते हैं, पर मांशपेशियों को ऊपर लिखे अनुसार बना लेते हैं। इस प्रकार का एक घंटे का विश्राम सामान्य मनुष्यों के एक रात्रि के विश्राम के बराबर या उससे अधिक होता है। वे फिर ताज़े होकर नए जीवन और नई शक्ति के साथ अपनी यात्रा शुरू करते हैं। तमाम घूमनेवाले फ़िर्क़े और जातियाँ इस ज्ञान को प्राप्त किए होती हैं। यह स्वाभाविक रीति से अमेरिकन, इंडियन, अरब, आफ़्रिका के वहशी और सारे संसार के वहशियों में पाया जाता है। सभ्य मनुष्य ने इस गुण को लुप्त हो जाने दिया है, क्योंकि अब यह पैदल लंबी यात्रा नहीं करता; परंतु यदि सभ्य मनुष्य इस गुण को फिर भी प्राप्त कर लेता, तो इसके काम के जीवन की थकावट दूर होने में बहुत कुछ सहायता मिल जाती।

अँगराई लेना

अँगराई लेना विश्राम करने का दूसरा तरीक़ा है, जिसे योगी लोग काम में लाते हैं। पहली दृष्टि में तो यह शिथिलीकरण का उलटा मालूम देता है; परंतु वास्तव में यह भी उसी का भाई है, क्योंकि यह उन मांसपेशियों से तनाव खींच लेता है, जो आदत ही से आकुंचित रहा करती हैं, और उनके द्वारा शरीर-यंत्र के सब भागों में प्राण भेजकर प्राणसाम्य कर देता है, जिससे सारे शरीर को लाभ पहुँचता है। प्रकृति हमें जमुहाई और अँगराई लेने को उस समय विवश कर देती है, जब हम थक जाते हैं। हमको प्रकृति की किताब से पाठ सीखना चाहिए। हमको इच्छापूर्वक और अनिच्छा-पूर्व अँगराई लेना सीखना चाहिए। आप जितना आसान इसे ख़्याल करते हैं, उतना आसान यह नहीं है; इससे पूरा लाभ उठाने के पहले आपको इसका अभ्यास करना होगा।

शिथिलीकरण की कसरतों को उसी क्रम से कीजिए, जिस क्रम से इस किताब में दी गई हैं; परंतु प्रत्येक भाग को ढीला करने के स्थान पर उसे तान दो। पाँव से शुरू करो और टाँगों तक कर जाओ, और फिर भुजाओं और सिर तक करो। अनेक रीतियों से तानो या फैलाओ, अपनी टाँगों, पैरों, भुजाओं, हाथों, सिर और शरीर को इस प्रकार तानो और मड़ोरो जैसे तानने और फैलाने से पूरा फैलाव प्राप्त होने की तुम्हें आशा हो। जमुहाई लेने से भी मत डरो; वह भी एक प्रकार का तनाव ही है। तानने में तुम्हें मांस-पेशियों को फैलाना और आकुंचन करना होगा; परंतु विश्राम और सुख बाद के ढिलाव में आवेगा। अपने मन में "ढील देने" की भावना को रक्खे रहो, न कि मांसपेशियों के प्रयत्न, का ख़्याल करो। हम तनाव या प्रसारण की कसरतें नहीं दे सकते, क्योंकि प्रसारण की इतनी रीतियाँ उसके सामने हैं कि उसके उदाहरण दिए जाने

की आवश्यकता ही नहीं है। उसे ठीक विश्रामदायक प्रसारण की भावना को राह देने दो और प्रकृति उसे बतला देगी कि क्या करना होगा। तो भी यहाँ एक साधारण शिक्षा बतला दी जाती है। भूमि पर खड़े हो, अपनी टाँगों को दूर-दूर फैलाए रहो और अपनी भुजाओं को, अपने सिर के ऊपर, फैलाकर सीधी रक्खो। तब पैर की उँगलियों पर उठो और अपने शरीर को शनैः-शनैः इस प्रकार तानो कि मानो छत को छूना चाहते हो। यह बहुत ही सरल कसरत है, पर आश्चर्यजनक रीति से ताज़गी देने-वाली है।

प्रसारण या तनाव का एक भेद इस प्रकार से भी प्राप्त हो सकता है कि अपने शरीर को ढीला करके चारो ओर से ख़ूब हिला दो, शरीर के इतने अधिक भाग हिलें, जितने तुम हिला सकते हो। न्यूफ़ाउंडलैंड कुत्ता जब पानी में से बाहर निकलता है, तो जिस तरह पानी झाड़ने के लिये अपने बदन को हिलाता है, उसे देखकर समझ जाइए कि हमारा क्या अभिप्राय है।

शिथिल करने की ये सब तरकीबें, यदि उचित रीति से शुरू और समाप्त की जावें, तो अभ्यास करनेवाले को नई शक्ति दे देंगी और अपने काम को करने के लिये वह फिर उतारू हो जायगा। उसको वैसा ही मालूम होगा, जैसा थकावट के बाद भरनींद सोने और उठकर मल-मलकर स्नान करने से मालूम होता है।

मन के शिथिल करने का अभ्यास

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले मन के शिथिल करने की कसरत दे देना भी अच्छा होगा। शरीर के शिथिल करने का प्रभाव मन पर पड़ता है और उसे विश्राम देता है; परंतु मन के शिथिल करने का भी प्रभाव शरीर पर पड़ता है और उसे विश्राम देता है। इसलिये यह अभ्यास उस मनुष्य की आवश्यकता को पूरी कर सकता

है, जिसको इस अभ्यास में पहले लिखी हुई बातों से विश्राम में संतोष न मिला हो।

चुपचाप शरीर को ढीला करके सुखासन में बैठ जाओ और अपने मन को बाहरी चीज़ों और ख़्यालात से हटा लो; क्योंकि इसमें भी मानसिक बल व्यय होता रहता है। अपने ध्यान को भीतर असली आत्मा पर लगा दो। ऐसा ख़्याल करो कि तुम शरीर से बिलकुल परे हो और इसे, बिना अपना व्यक्तित्व खोए किए हुए छोड़ सकते हो। तुम्हें एक आनंदमय विश्राम और शांति तथा संतोष का अनुभव होगा। ध्यान को पार्थिव शरीर से हटाकर ऊँचे "अहम्" में, जो असली तुम हो, जमाना आवश्यक है। अपने चारो ओर जो विस्तृत सृष्टि है, करोड़ों सूर्य अपने पृथ्वी के मानिंद ग्रहों से घिरे हुए हैं, और कहीं-कहीं जो इससे भी बहुत बड़े हैं, उनका ध्यान करो। देश और काल के विस्तार की ओर मन की भावना फैलाओ, जीवन को इन सारी दुनियाओं में फैला हुआ देखो, और तब इस पृथ्वी और अपनी स्थिति पर विचार करो कि यह कैसा धूलि-कण के ऊपर एक कीट की भाँति है। तब अपने विचार ही में और ऊपर उठो और समझो कि यद्यपि तुम उस महत् का एक कण हो, तो भी तुम उस जीवन का एक अंग हो और उस आत्मा की एक किरण हो जो सबमें व्याप रहा है; सोचो कि तुम अमर, नित्य और अविनाशी हो, उस संपूर्ण का एक आवश्यक अंग हो, और एक ऐसा अंग हो कि जिसके बिना संपूर्ण रह ही नहीं सकता, संपूर्ण की बनावट का पूरा करनेवाला अंग तुम्हीं हो। ऐसा अनुभव करो कि तुम उस महत् जीवन के सबसे लगाव रखते हो, संपूर्ण का जीवन तुममें स्फुरण कर रहा है; महत् जीवन का सारा महासागर तुमको अपने हृदय पर हलराय रहा है। और तब जागकर अपने पार्थिव जीवन में आओ, तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा शरीर ताज़ा हो गया है, तुम्हारा मन शांत

और बलवान् हो गया है ; और तब तुम उस काम में लिपट जाओगे, जिसको बहुत दिन से टालते चले आते हो। तुम मानस के ऊपरी लोकों में भ्रमण करने से लाभ उठाए और बलवान् हो गए हो।

क्षण-भर का विश्राम

काम करते-करते क्षण-भर का विश्राम पा जाने की तरकीब, उड़ते-उड़ते विश्राम पा जाने की तरकीब, जैसा कि हमारे नवयुवक मित्र शिष्यों में से एक ने इसे कहा है—नीचे लिखी जाती है—

सीधे खड़े हो, सिर ऊँचा और कंधे पीछे को दबे हों, तुम्हारी भुजाएँ बग़ल में ढीली लटकती हों। तब अपनी एड़ियों को धीरे-धीरे भूमि से उठाओ, शनैः-शनैः अपने भार को पैर के पंजों पर रखते जाओ, और साथ-ही-साथ अपनी भुजाओं को बग़ल से ऊपर उठाते जाओ तब तक कि वे गिद्ध के फैले हुए पखने की भाँति न हो जायँ। ज्यों-ज्यों भार पंजों पर पड़ता जाय और भुजाएँ फैलती जायँ, त्यों-त्यों श्वास भीतर खींचते जाओ और तुम्हें उड़ने की भाँति मालूम होने लगेगा। तब धीरे-धीरे श्वास छोड़ते जाओ और शरीर का भार फिर एड़ियों पर लाते जाओ और भुजाओं को नीचे बग़लों में लाते जाओ। यदि ऐसा करना तुम्हें अच्छा लगे, तो इसे कई बार करो। ंजों पर उठने और भुजाओं को फैलाने से एक प्रकार के हलके-पन और स्वतंत्रता का अनुभव होगा, जिसको समझने के लिये इसका अभ्यास ही करना पड़ेगा।

तेईसवाँ अध्याय

शारीरिक व्यायाम का लाभ

मनुष्य को प्रारंभिक दशा में शारीरिक व्यायाम की शिक्षा की आवश्यकता न थी—लड़की और नवयुवकों को, जो स्वाभाविक रुचि के हैं, अब भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के जीवन की प्रारंभिक दशा उसको अनेक प्रकार की पुष्कल क्रियाओं में व्यस्त रखती थी, उसे बाहर काम करना पड़ता था, और व्यायाम की उत्तम-से-उत्तम दशाएँ प्राप्त हो जाती थीं। उसे अपने लिये भोजन ढूँढ़ना, उसे तैयार करना, अपनी फ़सिल उत्पन्न करना, अपना घर बनाना, इंधन जुटाना और सहस्रों ऐसे काम करने पड़ते थे, जो उसके सादे जीवन के सुख के लिये आवश्यक थे। परंतु मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्य होने लगा, त्यों-त्यों अपने कामों के भाग दूसरों के हवाले करने लगा, और स्वयं किसी दूसरे प्रकार के काम में लग गया; अंत में अब ऐसा हो गया है कि हममें से बहुत लोग वास्तव में कुछ भी शारीरिक काम नहीं करते, और कुछ लोगों को एक ही प्रकार का कठिन परिश्रम करना पड़ता है। दोनों को अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना होता है।

शारीरिक परिश्रम, विना मानसिक क्रियाओं के मनुष्य के जीवन को ठुठना कर देता है। वैसे ही विना शारीरिक परिश्रम के केवल मानसिक क्रियाएँ भी उसे ठुठना बना देती हैं। प्रकृति समता चाहती है—सुखकर मध्यवर्ती पथ चाहती है। स्वाभाविक साधारण जीवन के लिये मनुष्य की शारीरिक और मानसिक सब शक्तियों का व्यवहार में आ जाना बहुत आवश्यक है; और वह जो अपने जीवन को इस प्रकार से नियमित करता है कि

शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम हुआ करते हैं, वही सबसे अधिक स्वस्थ और सुखी होता है।

लड़कों को आवश्यक व्यायाम उनके खेलों में मिल जाता है, और उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उन्हें खेल-कूद में लग जाने की प्रेरणा करती है। चतुर मनुष्य अपने मानसिक परिश्रम के बाद खेल-कूद भी अच्छी तरह कर लिया करते हैं। नए-नए खेल जो अब धीरे-धीरे प्रचार पा रहे हैं, उनसे विदित होता है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति अभी मरी नहीं है।

योगियों का यह विश्वास है कि खेल की प्रवृत्ति—यह वेदना कि कसरत चाहिए—वही प्रवृत्ति है, जो मनुष्य से रुचिकर जीविका के लिये—परिश्रम कराती है—यह क्रिया के लिये—भिन्न-भिन्न क्रियाओं के लिये—प्रवृत्ति की प्रेरणा है। स्वाभाविक स्वस्थ शरीर वही हैं, जो अपने सब अंगों में समान पुष्टि पाए हुए हैं; और कोई अंग उचित पोषण नहीं पाता, जब तक उस अंग द्वारा समुचित परिश्रम न किया जाय। जिस अवयव से कम काम लिया जाता है, वह साधारण पोषण की अपेक्षा कम पोषण पाता है, और समय पाकर निर्बल हो जाता है। प्रकृति ने मनुष्य के शरीर के प्रत्येक अंग और भाग के लिये स्वाभाविक उद्यमों और खेलों के द्वारा व्यायाम नियत किया है। स्वाभाविक उद्यम से हमारा अभिप्राय उस उद्यम से नहीं है, जो शरीर के केवल किसी विशेष अंग से लिया जाता है; क्योंकि जो मनुष्य केवल एक ही प्रकार का कार्य करता है, वह केवल थोड़ी-सी मांसपेशियों से अधिक काम लेता है और उसकी अन्य मांसपेशियाँ जकड़ जाती हैं; उसे भी व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता है जितनी मेज़ के पास बैठकर दिन-भर काम करनेवाले को होती है; अंतर इतना है कि पहले को दूसरे की अपेक्षा बाहर काम करने से लाभ होता है।

हम वर्तमान शारीरिक शिक्षा को खुले मैदान के उद्यम और खेल के स्थान पर बहुत ही हीन स्थानापन्न समझते हैं। इनमें कोई मनोरंजकता नहीं होती और जिस प्रकार उद्यम और खेल में मन प्रसन्नता-पूर्वक लगकर काम करता है, वैसा इसमें नहीं करता। परंतु किसी प्रकार का व्यायाम उसके अभाव की अपेक्षा अच्छा है। परंतु हम उस व्यायाम के बिलकुल ही विरोधी हैं, जिससे कुछ ही मांसपेशियों की वृद्धि होती है और पहलवानी के खेल किए जाते हैं। यह सब अस्वाभाविक बात है। शारीरिक शिक्षा की पूर्ण-पूर्ण पद्धति वह है, जो सारे शरीर का यथोचित विकाश करती है, सब मांसपेशियों से काम लेती है—सब भागों को पुष्ट करती है, जो व्यायाम में यथासाध्य अधिक-से-अधिक मन-लगाव उत्पन्न करे और जो अपने शिष्यों को खुले मैदान में रक्खे।

योगी लोग अपने प्रतिदिन के जीवन में अपने कामों को आप करते हैं और इस तरह बहुत-सा व्यायाम पा जाते हैं। वे जंगलों में बहुत दूर तक घूम-फिर भी आते हैं (ये लोग जंगल व पहाड़ों को मैदान और बड़े-बड़े शहरों की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं)। अपने ध्यान और अध्ययन के बीच-बीच में ये अनेक प्रकार के हलके व्यायाम भी कर लिया करते हैं। इनके व्यायाम में कोई नूतन बात नहीं है। इनके व्यायाम में मूल और प्रधान अंतर अन्य व्यायामों से यह है कि ये शरीर की गतियों के साथ मन का भी प्रयोग करते हैं। जिस प्रकार उद्यम और खेल में जी लगने से मन का प्रयोग होता है, उसी तरह योगी अपने व्यायाम में भी मन लगाता है। वह अपने व्यायाम में जी लगाता है और अपनी आकांक्षा के प्रयत्न से संचालित भाग में प्राण की अधिक मात्रा भेजता है। इस तरह उसे कई गुना अधिक लाभ होता है; और कतिपय मिनटों ही के व्यायाम से उसे उस व्यायाम का दशगुना लाभ होता है, जो यों ही लापरवाही से बिना जी लगाए किया जाता है।

इच्छित भाग में जी लगाने की क्रिया आसानी से साधी जा सकती है। केवल इतना ही आवश्यक है कि इस बात पर पक्का विश्वास कर लिया जाय कि यह हो जायगा; इस तरह संदेह के कारण जो भीतरी बाधाएँ पड़ती हैं, वे न पड़ेंगी। तब केवल मन को आज्ञा दो कि उस भाग में प्राण भेजे और रुधिर-संचार को बढ़ावे। मन इसको अनिच्छापूर्वक तो कुछ-न-कुछ करता ही है, जब शरीर के किसी भाग पर ध्यान आकर्षित होता है; परंतु आकांक्षा का प्रयोग करने से प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है। अब आकांक्षा के प्रयोग करने में भी यह आवश्यक नहीं है कि भौंहें सिकोड़ी जायँ, मुट्ठी बाँधी जायँ, और प्रबल शारीरिक प्रयत्न किया जाय। बहुत सरल उपाय अभीष्ट फल को प्राप्त करने का यह है कि जिस बात को हम चाहते हैं, उसके लिये पूरी आशा और भरोसा करें कि वह अवश्य हो जाय। यही पूरी आशा और भरोसा आकांक्षा की प्रभावशाली आज्ञा है—इसका प्रयोग कीजिए और बात सिद्ध है।

उदाहरण के लिये यदि आप अपनी कलाई में अधिक प्राण भेजा चाहते हैं और वहाँ का रुधिर-संचार बढ़ाया चाहते हैं और इसके द्वारा उसकी पुष्टि की उन्नति किया चाहते हैं, तो केवल भुजा को बटोर लीजिए और तब शनैः-शनैः उसे फैलाने लगिए, अपनी दृष्टि या अपने ध्यान को कलाई पर जमाए रहिए और अपने अभीष्ट का ध्यान किए रहिए। इसको कई बार कीजिए, तो आपको मालूम होगा कि आपने कलाई की कोई अच्छी कसरत भली भाँति कर ली है, यद्यपि आपने उससे कोई भी प्रबल गति नहीं कराई और न किसी कसरत के औज़ार आदि का व्यवहार किया। इस तरकीब का प्रयोग शरीर के कई अंगों पर कीजिए; उन अंगों से कोई भी गति कराते रहिए, जिसमें आपका ध्यान वहाँ लगा रहे, तो आपको बहुत जल्द कुंजी मालूम हो जायगी और जब कभी आप किसी

साधारण सरल व्यायाम को करने लगेंगे, तो यह बात स्वयं आप-ही-आप होने लगेगी। संक्षेप यह है कि जब आप कोई व्यायाम करने लगें, तो इन बातों पर ध्यान जमाए रहें कि आप क्या और किसलिये कर रहे हैं; तब आपको पूरा फल बहुत जल्द मिल जायगा। अपने व्यायाम को जीवित और मनोरंजक बनाए रहिए; और लापरवाही से बिना मन लगाए अंगों को कसरत करने से बाज़ आइए। व्यायाम में कोई मन-लगाव की बात मिला दीजिए और तब उसका उपयोग कीजिए। इस प्रकार मन और शरीर दोनों लाभ उठाते हैं। व्यायाम समाप्त होने पर आपको ऐसी तमतमाहट और प्रसन्नता मालूम होगी, जैसी बहुत दिनों से न मालूम हुई होगी।

अगले अध्याय में हम थोड़ी साधारण कसरतें देते हैं, जो, यदि उनका अभ्यास किया जाय तो, शरीर के अंगों के लिये सब आवश्यक गतियों को देंगी; प्रत्येक भाग काम करेगा, प्रत्येक अवयव शक्ति ग्रहण करेगा; और आप केवल अच्छी तरह से विकाश ही न पावेंगे, किंतु सिपाही की भाँति सीधे खड़े हो जावेंगे और पहलवान की भाँति चुस्त और फुर्तीले बन जावेंगे। इन कसरतों के कुछ भाग तो योगियों के आसन और मुद्राओं से लिए गए हैं और कुछ भाग योरप और अमेरिका की शारीरिक शिक्षा से लिए गए हैं, जो वहाँ की पलटनों में व्यवहृत होते हैं। ये पलटनों की शारीरिक शिक्षावाले पूर्वीय कसरतों का भी अध्ययन किए हुए हैं और उनमें से ऐसे भाग ले लिए हैं जो उनके उद्देश्य के अनुकूल हैं; और इन लोगों ने कसरतों की एक ऐसी माला बना ली है, जो करने में तो बहुत सादी और सरल है, परंतु परिणाम में बहुत आश्चर्यजनक प्रभाव उत्पन्न करनेवाली है। इस पद्धति की सादगी और सरलता के कारण आप इसका निरादर न करें। इसी की आपको आव-

श्यकता थी; इसके अनावश्यक अंग निकाल डाले गए हैं। इनके विषय में अपने मन को स्थिर करने के पहले इनकी परीक्षा तो कर लीजिए। ये आपको शरीर से नया बना देंगी, यदि आप उचित समय और उचित श्रद्धा इनके अभ्यास में लगावेंगे।

चौबीसवाँ अध्याय

योगियों के कुछ व्यायाम

इन कसरतों को आपको बतलाने के पहले हम फिर आपके मन पर इस बात को अंकित करना चाहते हैं कि बिना जी लगाए कसरत अपना फल नहीं देती। आपको अपनी कसरत में जी लगाने का प्रबंध करना होगा कि उसमें कुछ मन भी लगा रहे। आपको उस कसरत को पसंद करना पड़ेगा और इस बात पर ख़्याल करना पड़ेगा कि इसका मतलब क्या है। इस सलाह का अनुसरण करने से आपको इस काम में कई गुना अधिक लाभ होगा।

खड़े होने की स्थिति

प्रत्येक कसरत को स्वाभाविक रीति से खड़े होकर तुम्हें शुरू करना चाहिए अर्थात् तुम्हारी एड़ियाँ एकत्र रहें; सिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे, छाती फैली, पेट थोड़ा भीतर खिंचा और भुजाएँ बग़ल पर लटकती हों।

(१) अभ्यास

(१) भुजाओं को अपने समान सीधा फैलाओ, उँचाई कंधों के समान रहे, हाथों की हथेलियाँ एक दूसरी को छूती रहें; (२) हाथों को झोंका देकर पीछे फेंको जब तक हाथ कंधों से सीधे बग़लों के सामने, या उससे भी कुछ पीछे, यदि आसानी से जा सकें, न चले जायँ; तेज़ी से पहली स्थिति में लाओ, और इसे कई बार करो। भुजाओं को बड़ी तेज़ी से झोंका देना चाहिए और चैतन्यता और जीवट के साथ अनमने होकर काम मत करो, किंतु जी लगाकर खेलो। यह कसरत छाती, कंधों की मांसपेशियों

आदि के विकाश करने में बड़ी लाभदायक है। हाथों को झोंका देकर पीछे ले जाने में यदि तुम पैर के पंजों पर हो जाओ और आगे लाने में फिर एड़ियों पर आ जाओ तो और भी अच्छा होगा। बार-बार की आगे पीछेवाली गति तेज़ पेंडुलम की भाँति तालयुक्त होनी चाहिए।

(२) अभ्यास

(१) भुजाओं को कंधों से सीधा बग़ल की ओर फैलाओ, हाथ खुले रहें; भुजाओं को इसी तरह फैलाए ही हुए एक वृत्त में (जो बहुत बड़ा न हो) घुमाओ, भुजाओं को जहाँ तक संभव हो पीछे ही की ओर दबाए रहो, और हाथ वृत्ताकार घूमते समय छाती की लाइन के सामने न आने पावें। वृत्त बनाना जारी रक्खो जब तक मान लो कि १२ न हो जायँ। यदि योगियों के तरीक़े से पूरी साँस ले लोगे और बहुत-से वृत्तों तक उसे रोके रहोगे तो और भी अच्छा होगा। इस कसरत से छाती, कंधे और पीठ विकसित होते हैं।

(३) अभ्यास

(१) भुजाओं को अपने सामने सीधा फैलाओ, प्रत्येक हाथ की कनिष्ठिका अँगुलियाँ एक दूसरी को छूती रहें, हथेलियाँ ऊपर की ओर हों। (२) तब छोटी अँगुलियों को छूते ही रहे हुए हाथों को टेढ़ी वृत्ताकार गति से सीधा ऊपर लाओ, जब तक दोनों हाथों की अँगुलियों के छोर सिर के ऊपरी भाग को ललाट के पिछवाड़े न छुएँ, अँगुलियों की पीठ छूती रहें, ज्यों-ज्यों गति हो त्यों-त्यों कुहनियाँ बाहर की ओर होती जायँ (जब अँगुलियाँ सिर को छुएँ, अँगूठे पीछे की ओर इंगित करते रहें), और अंत में बग़लों की ओर हो जावें। (३) अँगुलियों को क्षण-भर सिर का पीछा छुए रहने दो और तब कुहनियों को पीछे खींचकर (जिससे कंधे भी पीछे को दब जाते हैं)

भुजाओं को टेढ़ी गति से पीछे की ओर दबाओ जब तक वे पूरी लंबी होकर खड़े होने की स्थिति में बग़लों में न आ जायँ।

(४) अभ्यास

(१) भुजाओं को कंधे से बग़लों की ओर सीधा फैलाओ। (२) तब मुसलियों को उसी स्थिति में फैलाए हुए भुजाओं को कुहनियों पर टेढ़ा करो और कलाइयों को वृत्ताकार गति से ऊपर लाओ जब तक फैली हुई अँगुलियों के छोर कंधों के ऊपरी भाग को छू न लें। (३) अँगुलियों को इसी अंतिम स्थिति में रक्खे हुए कुहनियों को झोंका देकर सामने की ओर लाओ कि वे एक दूसरी को छू लें या छूने के निकट हो जायँ (थोड़े अभ्यास से वे छूने लगेंगी)। (४) तब अँगुलियों को उसी स्थिति में रक्खे हुए कुहनियों को इतना पीछे ले जाओ जितना ले जा सको। (थोड़े अभ्यास से ये बहुत पीछे जाने लगेंगी) (५) कुहनियों को कई बार आगे पीछे ले जाओ।

(५) अभ्यास

(१) हाथों को नितंब पर रक्खो, अँगूठे पीछे की ओर, कुहनियाँ पीछे को दबी हों। (२) शरीर को नितंब से आगे की ओर टेढ़ा करो जहाँ तक तुम टेढ़ा कर सको, पर छाती को चौड़ा किए और कंधों को पीछे ही दबाए रहो। (३) शरीर को पहले खड़े होने की स्थिति में लाओ। हाथ नितंब ही पर रहे, और तब पीछे झुको। इन गतियों में घुटनों को टेढ़ा न करना चाहिए, और गति धीरे-धीरे करनी चाहिए। (४) तब हाथ नितंबों ही पर रक्खे दाहनी ओर धीरे-धीरे झुको, एड़ियाँ भूमि पर दृढ़ बनी रहें, घुटने टेढ़े न होने पावें, और शरीर ऐंठने न पावे। (५) पहली स्थिति पर आओ और तब शरीर को धीरे-धीरे बाईं ओर झुकाओ, पिछली गति में दी हुई सूचनाओं का अनुसरण किए रहो। यह कसरत कुछ थकावट लाने वाली है, और पहले इसमें अतिशय मत करना धीरे-धीरे आगे

बढ़ना। (६) हाथ उसी तरह नितंबों ही पर रक्खे हुए शरीर के ऊपरी भाग को, कमर से ऊपर चारों ओर वृत्ताकार घुमाओ, जिसमें सिर सबसे बड़ा वृत्त बनावे। पर खिसकने और घुटने टेढ़े न होने पावें।

(६) अभ्यास

(१) सीधे खड़े होकर, भुजाओं को सीधा सिर के ऊपर उठाओ, हाथ खुले रहें और जब भुजाएँ सिर के ठीक ऊपर चली जायँ तब अँगूठे एक दूसरे को छूते रहें, हथेलियाँ आगे की ओर रहें। (२) तब विना घुटनों को टेढ़ा किए, शरीर को कमर से नीचे झुकाओ और फैली हुई अँगुलियों के छोरों से भूमि को छूने का यत्न करो यदि तुम पहले इसे न कर सको तो जहाँ तक बन सके यत्न करो और शीघ्र तुम इसे ठीक करने लगोगे—परंतु स्मरण रहे कि न घुटने टेढ़े होने पावें और न भुजाएँ। (३) उठो और इसे कई बार करो।

(७) अभ्यास

(१) सीधे खड़े होकर और हाथों को नितंबों पर रक्खे हुए, अपने को पैर के पंजों पर कई बार उठाओ। जब पंजों पर उठ जाओ, तो क्षण-भर ठहर जाओ ; तब एड़ियों को फिर भूमि पर आ जाने दो, फिर ऊपर लिखे अनुसार ऊपर उठो। घुटनों को टेढ़ा न होने दो और एड़ियों को एकत्र रक्खो। यह कसरत टाँगों को पिछली मांस-पेशियों (पौली) को उन्नत करती है, और शुरू में वहाँ कुछ पीड़ा-सी होने लगेगी। यदि आपकी वहाँ की मांसपेशियाँ विकसित न हों तो इस कसरत को कीजिए। (२) हाथों को नितंबों ही पर रक्खे हुए अपने पैरों को दो फ़ीट के फ़ासले पर रखिए और तब शरीर को बैठने की स्थिति में लाइए; थोड़ा ठहरकर फिर पहली स्थिति में ले जाइए। इसे कई बार कीजिए, पर पहले अतिशय न

कीजिए क्योंकि इससे जाँघों में पहले पीड़ा हो जायगी। इस कसरत से जाँघों की उन्नति होगी। इस पिछली गति में यदि आप पंजों पर होकर नीचे बैठें तो और भी अच्छा होगा।

(८) अभ्यास

(१) सीधे खड़े हो, हाथ नितंबों पर रहें। (२) घुटने को सीधा ही रक्खे हुए दाहनी टाँग को क़रीब १५ इंच आगे फेंको। अँगूठा बाहर की ओर झुका रहे और तलवा चिपटा रहे—तब टाँग को पीछे फेंको कि अँगूठा नीचे को मुँह कर ले, पर घुटना बराबर कड़ा रहे। (३) कई बार इसी तरह आगे पीछे झोंका देकर ले जाओ। (४) तब बाईं टाँग से ऐसा ही करो। (५) हाथों को वैसे ही नितंबों पर किए हुए, घुटने को टेढ़ा करके, दाहनी टाँग को ऊपर उठाओ जब तक जाँघ ठीक शरीर के सामने न आ जाय (अगर और ऊपर उठा सकते हो तो उठाओ)। (६) अपने पैर को फिर भूमि पर रक्खो और बाईं टाँग से वैसी ही गति करो। (७) कई बार ऐसा करो, पहले एक टाँग और तब दूसरी; पहले धीरे-धीरे और फिर धीरे-धीरे तेज़ी को बढ़ाते जाओ जब तक कि तुम धीमी दौड़ बिना जगह छोड़े न कर लो।

(९) अभ्यास

(१) सीधे खड़े हो और भुजाओं को अपने सामने कंधों से सीधा फैलाओ और उन्हें कंधों ही की उँचाई तक रक्खो—हथेलियाँ नीचे मुँह किए रहें; अँगुलियाँ बाहर फैली और अँगूठे नीचे हथेलियों से लगे रहें, और अँगूठे की ओर हाथ एक दूसरे को छूते रहें। (२) नितंबों से शरीर को नीचे झुकाओ, वहाँ तक आगे नीचे लटको जहाँ तक संभव हो और साथ ही भुजाओं को झोंका देकर आगे फेंको कि नीचे होते हुए पीछे पीठ पर ऊपर जायँ, यहाँ तक कि जब तक शरीर हद तक नीचे जाय तब तक भुजाएँ शरीर के ऊपर पीछे फैल

जायँ। भुजाओं को सीधे ही रक्खे रहो और घुटने टेढ़े न होने पावें। (३) फिर खड़ी स्थिति में आ जाओ और इसे कई बार करो।

(१०) अभ्यास

(१) भुजाओं को बग़ल की ओर कंधों से सीधे फैलाओ और वहाँ ही हाथों को खोले हुए उन्हें कड़ा और सख़्त करो। (२) जल्दी से ज़ोर से हाथों को बंद करो कि अँगुलियाँ हथेलियों में चुभ सी जायँ। (३) हाथों को तेज़ी से और ज़ोर से खोलो, अँगुलियों और अँगूठों को इतना फैलाओ जहाँ तक फैला सको कि हाथ पंखे के सदृश हो जायँ। (४) ऊपर लिखी रीति से हाथों को खोलते और बंद करते रहो, कई बार ऐसा करो और तेज़ी के साथ करो। कसरत में जीवट डाल दो। यह हाथ की मांसपेशियों को उन्नत करने में बड़ी अच्छी कसरत है; इससे हाथों में बल आता है।

(११) अभ्यास

(१) अपने पेट के बल पड़ जाओ, अपने हाथों को सिर के ऊपर फैलाए रहो और तब ऊपर की ओर झुकाओ; तुम्हारी टाँगें लंबाई-भर फैली रहें और फिर पीछे की ओर ऊपर उठाई जावें। इसकी पूरी भावना तब होगी जब आप किसी कटोरे का ध्यान करेंगे कि पेंदी तो भूमि पर हो पर सिर ऊपर की ओर उठा हो। (२) भुजाओं और टाँगों को कई बार ऊपर नीचे करो। (३) तब पीठ के बल लेट जाओ और लंबाई-भर फैलकर पड़ जाओ, भुजाएँ सीधी सिर के ऊपर की ओर फैली रहें, अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें। (४) तब कमर से दोनों टाँगों को ऊपर उठाओ जब तक वे सीधी ऊपर की हवा में जहाज़ के मस्तूल की भाँति खड़ी न हो जायँ; आपका ऊपरी शरीर और भुजाएँ पिछली दी हुई स्थिति में पड़ी रहें। टाँगों को नीचे करो और कई बार उठाओ।

(५) तीसरी स्थिति पर आओ, पीठ के बल, लबान-भर, भुजाओं को सीधा ऊपर सिर की ओर उठाए हुए रहो और अँगुलियों की पीठें भूमि को छूती रहें। (६) तब धीरे-धीरे शरीर को बैठने की स्थिति में लाओ, भुजाएँ कंधों के सामने बाहर की ओर फैली रहें। तब धीरे-धीरे फिर पड़ जाने की स्थिति में जाओ और उठने और पड़ जाने की क्रिया कई बार करो। (७) तब फिर मुँह और पेट के बल उलट जाओ ; और नीचे लिखी हुई स्थिति को धारण करो ; सिर से पैर तक शरीर को कड़ा करो, अपने शरीर को उठाओ जब तक शरीर का कुल बोझ एक ओर तुम्हारी हथेलियों पर (भुजाएँ आगे की ओर सीधी तनी रहें) और दूसरी ओर पैर के अँगूठों और अँगुलियों पर न आ जाय। तब धीरे-धीरे भुजाओं को कुहनियों पर टेढ़ी करने लगो और छाती को भूमि पर जाने दो ; तब अपनी भुजाओं को सीधी और कड़ी करने के द्वारा अपनी छाती और ऊपरी शरीर को ऊपर उठाओ, कुल भार भुजाओं पर रहे। यह पिछली गति कठिन है और शुरू से इसमें अति न करनी चाहिए।

बढ़े पेट को पचकाने का अभ्यास

यह कसरत उन लोगों के लिये है, जिनका पेट बहुत बढ़ गया हो, जो अति अधिक चरबी वहाँ एकत्र हो जाने से होता है। इस कसरत को उचित रीति से करने से पेट बहुत छोटा हो सकता है—परंतु सर्वदा स्मरण रहे कि सब बातों में मध्य वृत्ति रहनी चाहिए, और अति किसी बात में न करो, न शीघ्रता ही करो। कसरत यों है: (१) सब हवा प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल दो (बहुत ज़ोर मत लगाओ) और तब पेट को भीतर और ऊपर खींचो जहाँ तक तुम खींच सको तब क्षण-भर रोक रक्खो और फिर स्वाभाविक स्थिति में आने दो। कई बार इसे करो, तब एक दो साँस ले लो और थोड़ा विश्राम कर लो। फिर कई बार पेट को

वैसा ही भीतर खींचो और बाहर लाओ। इस थोड़े अभ्यास से पेट की मांसपेशियों पर कितना अधिकार हो जाता है, यह बड़ी आश्चर्य-जनक बात है। इस कसरत से केवल चर्बी ही की तहें नहीं घटेंगी, किंतु आमाशय की मांसपेशियाँ भी बड़ी बलवती हो जावेंगी। (२) पेट को अच्छी तरह मुलायमियत से मलो।

शरीर को कड़ा करने का अभ्यास

यह कसरत इसलिये है कि मनुष्य को सुंदर स्वाभाविक रीति से खड़े होने और चलने की प्राप्ति हो जाय, और उसकी ढीले-ढाले रहने और चलने की आदत छूट जाय। यदि अच्छी तरह से इसका अभ्यास किया जाय, तो इससे सीधी सुंदर गति (चाल) हो जावेगी। इससे आपकी चाल ऐसी हो जावेगी कि आपके प्रत्येक अवयव को काफ़ी अवकाश रहेगा और शरीर का प्रत्येक अंग सुव्यवस्थित रहेगा। इस या इसी के समान किसी कसरत का अनुसरण बहुत से देशों में सेना-नायकों द्वारा किया जाता है, जिससे नवयुवक अफ़सरों की चाल उचित और सुंदर हो जावे; परंतु सेनाओं में इस कसरत का बहुत अच्छा प्रभाव दूसरी जंगी कसरतों से दब जाता है और शरीर में अधिक कड़ापन आ जाता है; परंतु इस कसरत को पृथक् करने से वह दोष नहीं आने पाता। कसरत नीचे लिखी जाती है, इसको सावधानी से समझिए—(१) सीधे खड़े हो, एड़ियाँ एकत्र और पैर के अँगूठे थोड़ा बाहर की ओर झुके हों। (२) भुजाओं को बग़ल से ऊपर की ओर वृत्ताकार गति में उठाओ कि हाथ सिर के ऊपर जाकर मिल जायँ, अँगूठे एक दूसरे को छू लें। (३) घुटनों को सख़्त और शरीर को कड़ा किए हुए कुहनियाँ टेढ़ी न होने पावें (और कंधे पीछे ही की ओर दबे रहें)। भुजाओं को वृत्ताकार गति में बग़लों ही की सीध में नीचे लाओ जब तक छोटी अँगुलियाँ और हथेली के भीतरी किनारे जाँघों की

बग़लों को छू न लें, हथेलियों का मुँह सामने की ओर हो; इसे कई बार करो, स्मरण रहे, धीरे-धीरे हाथों को अंतिम स्थिति में इस गति से लाए जाने पर कंधों को आगे की ओर टेढ़ा होना असंभव हो जाता है। छाती थोड़ी उभड़ जाती है, सिर सीधा हो जाता है, पीठ सीधी और बीच में थोड़ी आगे की ओर झुकी हो जाती है (और यही उसकी स्वाभाविक स्थिति है); और घुटने सीधे रहते हैं। संक्षेप यह है कि आपका शरीर उत्तम, सीधी गठन का हो जाता है—अब इसी को सर्वदा क़ायम रखिए। इस स्थिति में खड़े होकर, कनिष्ठिका अँगुली को जाँघों के ठीक बग़ल में रखकर कमरे ही में घूम-घूमकर टहलिए; और फिर इसी स्थिति से चला कीजिए। इस प्रकार थोड़ा अभ्यास करने से आश्चर्यमय उन्नति होगी। परंतु इसमें अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता है—इसी तरह सभी अच्छी बातों में अभ्यास और धैर्य की आवश्यकता हुआ करती है।

अब व्यायाम के विषय में जो हमें थोड़ा-सा कहना था, उसे हम कह चुके। बातें सीधी हैं, पर आश्चर्यमय उन्नति देनेवाली हैं। इनसे शरीर के प्रत्येक भाग को परिश्रम करना पड़ जाता है; यदि सावधानी से इनका अभ्यास किया जाय, तो ये आपके शरीर को नया बना देंगी। सावधानी से अभ्यास कीजिए और इनमें जी लगाइए। इनमें मनोयोग दीजिए और इस बात पर ध्यान रखिए कि किस अभिप्राय से आप इस क्रिया या खेल को कर रहे हैं। जब आप कसरत करने लगें, "बल और उन्नति" पर ध्यान रक्खें, तब आपको और भी बहुत अधिक लाभ होगा। भोजन के तुरत पश्चात् व्यायाम मत करो। किसी व्यायाम को थोड़े ही बार दुहराओ और तब धीरे-धीरे उसे बढ़ाने लगो। दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा व्यायाम करो, तो वह एक ही बार बहुत-सा करने से अच्छा होगा।

ऊपर लिखा हुआ व्यायाम आपको उतना लाभ पहुँचावेगा, जितना अन्य व्यायामों से कठिनता से प्राप्त होगा। ये कसरतें बहुत दिन की जाँच में ठीक सिद्ध होती आई हैं, और अब भी ठीक समयानुकूल हैं। जितनी ही ये गुणवर्धिनी हैं, उतनी ही ये सरल भी हैं। इनका प्रयोग कीजिए और बलवान् हो जाइए।

पच्चीसवाँ अध्याय

योगियों का स्नान

इस पुस्तक के एक अध्याय को स्नान की प्रधानता दिखलाने में लगाने की आवश्यकता न होती ; परंतु इस बीसवीं शताब्दी में भी बहुत-से ऐसे मनुष्य हैं, जो इस विषय के संबंध में वस्तुतः कुछ नहीं जानते। कहीं-कहीं तो मनुष्य थोड़ा बहुत ऊपरी शरीर को धो डालते हैं, परंतु अधिकांश मनुष्य, जिनमें स्त्रियों की संख्या और भी अधिक होती है, स्नान पर ही ध्यान नहीं देते; वे यातो स्नान के नाम पर जल का स्पर्श कर लेते हैं या वह भी नहीं करते। इसलिये हम अपने पाठकों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करना अच्छा समझते हैं कि क्यों योगी लोग स्वच्छ शरीर रखने पर इतना ज़ोर देते हैं।

प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य को स्नान करने की इतनी आवश्यकता न थी। क्योंकि उसका शरीर तब खुला रहता था, उस पर वृष्टि होती थी, झाड़ियाँ और वृक्ष उसके शरीर से रगड़ खाया करते थे, और शरीर पर जमा हुआ मैल, जिसे शरीर भीतर से निकाल-निकालकर ऊपर छोड़ता जाता है, साफ़ हो जाया करता था। प्राकृतिक मनुष्य के समीप नदियाँ और झरने होते थे, एकाध बार स्वाभाविक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर उसमें ग़ोते लगा लेता था। परंतु वस्त्र का व्यवहार करने से ये बातें बदल गईं, और आजकल के मनुष्यों का यद्यपि उनके चमड़े अब भी भीतर से मैल निकाल-निकालकर ऊपर कर रहे हैं, अब पुरानी रीति से मैल साफ़ करना बहुत कठिन हो गया, और उसकी मैले शरीर पर तह-पर-तह जमती

जाती है और अंत में शारीरिक असुख और रोग उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि शरीर ख़ाली आँख से देखने में स्वच्छ देख पड़ता हो, पर वह वस्तुतः बहुत अधिक मैला प्रमाणित हो सकता है। यदि सूक्ष्म दर्शक यंत्र (ख़ुर्दबीन) से आप शरीर के चमड़े को देखें, तो मैल को देखकर आप घबरा जायँगे।

मनुष्य की सब जातियाँ, जो तनिक भी सभ्यता का अभिमान करती थीं, इस स्नान का अभ्यास करती आई हैं। सच बात तो यों है कि स्नान ही को हम एक ऐसी नाप मान सकते हैं, जिससे किसी जाति की सभ्यता नापी जा सकती है। जिस जाति में जितना ही अधिक स्नान किया जायगा, उसमें उतनी ही अधिक सभ्यता है और जिस जाति में स्नान की जितनी ही कमी है, उसमें उतनी ही असभ्यता है। पुराने मनुष्य इस स्नान में बढ़ते-बढ़ते अंत में अतिशय को पहुँच गए और प्रकृति के मार्ग से पृथक् हो गए; वे सुगंधियों से स्नान करने लगे। यूनानी और रोमन लोग स्नान को सभ्य जीवन की परम आवश्यक बात समझते थे; और बहुत-सी पुरानी जातियाँ इस विषय में आधुनिक जातियों से बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं। जापानी लोग आजकल इस स्नान के विषय में दुनियाँ के सब लोगों से आगे बढ़े हुए हैं। ग़रीब-से-ग़रीब जापानी को चाहे भोजन न मिले, कुछ चिंता नहीं, पर विधिवत् स्नान अवश्य होना चाहिए। गरम दिनों में भी यदि आप जापानियों के झुरमुट में चले जायँ, तो तनिक भी दुर्गंधि आपको न मिलेगी। क्या अमेरिका और यूरोप में भी यह बात असंभव है? बहुत-सी जातियाँ स्नान को अपने मज़हब का एक अंग मानती थीं और अब भी मानती हैं, मज़हब के पुरोहित लोग स्नान की महिमा को समझते थे और उन्होंने इसे मज़हब में मिलाकर आवश्यक बना दिया। योगी लोग इसे मज़हब तो नहीं समझते, परंतु स्नान का व्यवहार ऐसा करते हैं, जो मज़हब से भी अधिक है।

अब देखना चाहिए कि स्नान करना क्यों आवश्यक है। हममें से बहुत कम लोग इसकी पूरी महिमा समझते हैं। जो समझते हैं वे भी केवल इतना ही समझते हैं कि इससे मैल—प्रत्यक्ष मैल—साफ़ होता है। परंतु स्वच्छता तो आवश्यक वस्तु है ही, इसमें तो संदेह ही नहीं है, परंतु स्वच्छता के अलावा भी इसमें बड़े-बड़े गुण हैं। पहले यह देखना चाहिए कि चमड़े को स्वच्छ करने की आवश्यकता क्यों है।

हमने एक अध्याय में आपको समझा दिया है कि साधारण रीति से पसीने के बह जाने की बड़ी आवश्यकता है; यदि चमड़ों के छिद्र अवरुद्ध हो जायँ या बंद हो जायँ, तो शरीर अपनी रद्दियात को बाहर नहीं निकाल सकता। और वह बाहर कैसे निकाला करता है? चमड़ा, श्वास और गुर्दों के द्वारा। बहुत-से लोग गुर्दों का काम बढ़ा देते हैं। जिससे उन्हें अपना और चमड़े का, दोनों का काम करना पड़ जाता है; क्योंकि प्रकृति एक अवयव से दूना काम लेगी, परंतु काम को विना कराए न रहेगी। चमड़े का प्रत्येक छिद्र उस नाली का छोर है, जिसे चमड़े की नाली कहते हैं, और जो चमड़े के भीतर तक फैली रहती है। हमारे चमड़े के प्रत्येक वर्ग इंच में ऐसी ३००० छोटी नालियाँ होती हैं। वे लगातार एक द्रव बहाया करती हैं, जिसे पसीना और देह-वाष्प कहते हैं, जो ऐसा द्रव होता है, जो शरीर-यंत्र के मैल और रद्दियात से भरे हुए रुधिर में से निकलता है। आपको स्मरण होगा कि शरीर क्षण-क्षण में पुराने निकम्मे रेशों को पृथक् करता रहता है; और इनके स्थान पर नए रेशों को स्थापित करता रहता है; और इन पुरानी रद्दियात का दूर होना वैसा ही आवश्यक है, जैसा घर के कूड़ा-करकट का दूर होना ज़रूरी है। चमड़ा एक साधन है, जिसके द्वारा यह दूर किया जाता है। यह मैल यदि शरीर ही में रहने दिया जाय, तो यह रोगों के कीटाणुओं का वृद्धिस्थान हो

जायगा; और इसीलिये प्रकृति इसे दूर बहाया चाहती है। चमड़े से एक रोग़नदार द्रव भी निकलता है, जो चमड़े को कोमल और चिकना बनाए रहता है।

स्वयम् चमड़ा भी अन्य अवयवों की भाँति अपनी बनावट में बड़ा परिवर्तन पाया करता है। बाहरी चमड़ा ऐसे देहाणुओं से बना है, जो बहुत अल्पायु हुआ करते हैं, और लगातार केंचुल की भाँति छूटा करते हैं और उनके स्थान को पूरा करने के लिये नए देहाणु नीचे से ऊपर आया करते हैं। ये निकम्मे और व्यक्त देहाणु चमड़े के ऊपर रद्दी पदार्थों की एक प्रकार की तह बना देते हैं, यदि मल-मलकर धो न डाले जायँ, इसमें संदेह नहीं कि उनमें से अनेकों तो कपड़े की रगड़ खा-खाकर गिर जाते और छूट जाते हैं; परंतु बहुत बड़ा भाग रह जाता है; और उनके दूर करने के लिये नहाने-धोने की आवश्यकता पड़ती है।

पानी के द्वारा शरीर के भीतरी अंगों की सिंचाई के अध्याय में हमने चमड़े के इन छिद्रों को खुले रखने की आवश्यकता दिखला दी है; और यह भी बतला दिया है कि यदि वे बंद कर दिए जायँ, तो मनुष्य शीघ्र ही मर जाय, जैसा कि पूर्वकाल की परीक्षाओं और घटनाओं से प्रमाणित होता है। यदि शरीर को धोकर साफ़ न किया जाय, तो इन निकम्मे देहाणुओं, रोगन और पसीने से चमड़ों के छिद्र थोड़े बहुत बंद हो जायँ और फिर चमड़े की सतह पर यह मैलापन रोगों के कीटाणुओं को निमंत्रण देने लगे कि वे वहाँ आ-कर अपना घर बनावें और वृद्धि करें। स्नान न करके क्या आप इन कीटाणुओं को न्योता दे रहे हैं? हम ऊपर से आए हुए गर्दगुबार का वर्णन नहीं कर रहे हैं—हम जानते हैं कि उसको आप न लपेटे रहेंगे—परंतु आपने कभी भी अपने ही शरीर से निकले हुए इस मैल पर ध्यान दिया है? जो वैसा ही मैल है, जैसा ऊपरी मैल है और कभी-कभी उससे भी अधिक बुरा फल पैदा कर देता है।

प्रत्येक मनुष्य को कम-से-कम दिन में एक बार अपने सारे शरीर को धो डालना चाहिए। स्नान के लिये बहुत उपयुक्त समय सुबह सोकर उठने का है। भोजन करने के ठीक पहले या पश्चात् कभी स्नान न करो। शाम का स्नान करना भी अच्छी बात है। स्नान करते समय मोटे कपड़े से शरीर को ख़ूब रगड़ो, जिनसे मुर्दा चमड़ा छूट जाया करेगा और रुधिरसंचार भी उत्तेजित होगा। जब शरीर ठंढा हो, उस समय ठंढे पानी से कभी भी स्नान न करो। ठंढे पानी से स्नान करने के पहले कुछ कसरत करके अपने शरीर को गरम कर लो, तब स्नान करो। डुबकी मारकर स्नान करने में पहले सिर को भिगोकर तब छाती भिगोओ और तब डुबकी लगाओ।

ठंढे पानी से स्नान करने के पश्चात योगियों की रीति है कि शरीर को हाथों से कपड़े के स्थान पर ख़ूब मलें और तब भीगे ही शरीर से सूखे कपड़े पहन लें। इससे जाड़ा अधिक मालूम होने के स्थान पर, जैसा कि कोई-कोई ख़्याल करते हैं, उसके विपरीत गरमाहट मालूम होती है, और यदि थोड़ी-सी हलकी कसरत कर लें, तो यह गरमाहट और भी बढ़ जाती है। योगी लोग स्नान के पश्चात् प्रायः व्यामाम किया करते हैं। यह व्यायाम बहुत कड़ा नहीं होता; और ज्यों ही सारे शरीर में पूरी तमतमाहट आ गई कि बंद कर दिया जाता है।

योगियों का प्यारा स्नान ठंढे पानी से होता है। वे सारे शरीर को हाथ से ख़ूब मलते हैं, या पहले कपड़े से रगड़कर पीछे हाथ से मलते हैं, और साथ-ही-साथ पूरी साँस लेने की क्रिया करते जाते हैं। सोकर उठने पर वे स्नान करते हैं और स्नान करने पर हलकी कसरत कर लेते हैं। जब बड़ी सर्दी पड़ती हो, तब वे डुबकी लगाकर स्नान नहीं करते; परंतु कपड़े से पानी को शरीर पर लगा लेते हैं तब हाथ से ख़ूब मलते हैं। ठंढे पानी से स्नान करने पर आश्चर्यजनक

गर्मी आती है और ज्यों-ज्यों कपड़ा पहना जाता है, त्यों-त्यों ओजस तमतमाहट मालूम होती है। इस योगियों की रीति से स्नान करने का यह परिणाम होता है कि शरीर बलवान् और हट्टा-कट्टा हो जाता है, उसका मांस दृढ़, बलवान् और घना हो जाता है और ज़ुकाम तो प्रायः योगियों को अज्ञात ही हो जाता है। इस स्नान का अभ्यास करनेवाला मनुष्य उस मज़बूत और हट्टे-कट्टे वृक्ष के समान हो जाता है, जो अनेक प्रकार की गर्मी-सर्दी के मौसिम को सहने में समर्थ होता है।

हम अपने शिष्यों को शुरू ही में अत्यंत ठंढे पानी से स्नान करने में सावधान किए देते हैं। यदि तुम्हारे शरीर में जीवट की कमी हो, तब तो कदापि ऐसा मत करो। पहले सुखकर शीतलता के पानी से शुरू करो, तब दिनों के बीतने से ज्यों-ज्यों शरीर का जीवट बढ़ता जाय, त्यों-त्यों अधिक ठंढे पानी से स्नान किया करो। एक प्रकार की शीतलता या ताप का जल तुम्हें अत्यंत सुखकर प्रतीत होगा, बस उसी को याद कर लो और वैसे ही जल से स्नान किया करो। सबेरे के ठंढे पानी से स्नान करना तुम्हें सुखकर होना चाहिए, न कि प्रायश्चित्त की भाँति दुःखकर। जब आपको एक बार उसका मज़ा मालूम हो जायगा, फिर आप उसको न छोड़ेंगे। इससे आप दिन-भर अच्छी तरह रहेंगे। पहले ठंढा जल शरीर पर डालते बहुत सर्दी मालूम होती है, पर थोड़े ही अर्से में प्रतिक्रिया प्रारंभ हो जाती है और गरमाहट मालूम होने लगती है। यदि आप टब में स्नान करते हों, तो एक मिनट से अधिक टब में कभी न ठहरें, और जब तक टब में रहें, शरीर को ख़ूब मलते रहें।

यदि आप सबेरे इस प्रकार स्नान करते रहेंगे, तो आपको बहुत-से गरम स्नानों की आवश्यकता न होगी। कभी गरम पानी से स्नान कर लेना अच्छा होगा। गरम पानी से स्नान करने में बदन को ख़ूब

मलते रहिए और चमड़े को कपड़े से ख़ूब सुखाकर तब कपड़े पहनिए।

वे मनुष्य जिन्हें दिन को बहुत चलना या खड़े रहना पड़ा हो, उन्हें रात को सोने के पहले पैरों को धो डालने से अच्छा सुख मिलेगा और रात को ख़ूब नींद आवेगी।

अब ज्यों ही आप इस अध्याय को पढ़ जायँ, त्यों ही भुलवा न दें। परंतु जो तरकीबें इसमें बताई गई हैं, उनकी परीक्षा कीजिए और देखिए कि उनसे कितना लाभ होता है। जब थोड़े दिन आप इसकी परीक्षा कर लेंगे, फिर इसे कभी न छोड़ेंगे।

योगियों का सबेरे का स्नान

सबेरे के स्नान से सर्वोत्तम लाभ उठाने की भावना आपको नीचे लिखी हुई तरकीब से होगी। यह बहुत बल देनेवाली, शक्ति बढ़ानेवाली तरकीब है, जिससे आप दिन-भर सुखी रहेंगे।

पहले इसमें थोड़ी कसरत कर लेनी होती है, जिससे रुधिरसंचार अच्छा होने लगता है और रात के सोने के बाद प्राण अच्छी तरह से शरीर में वितरित हो जाता है, जिससे शरीर स्नान करने के और उसके लाभों को पूरी तरह से उठाने के योग्य बन जाता है।

प्रारंभिक व्यायाम—(१) सीधे जंगी स्थिति में खड़े हो, सिर ऊँचा, आँखें सामने, कंधे पीछे, और हाथ बग़लों में हों। (२) शरीर को धीरे-धीरे पैर की अँगुलियों पर उठाओ, साथ-ही-साथ धीरे-धीरे पूरी साँस खींचते जाओ। (३) साँस को भीतर ही कुछ क्षण तक रोक रक्खो और शरीर को उतने समय तक उसी स्थिति में रक्खो। (४) धीरे-धीरे पहली स्थिति में आओ और साथ-ही-साथ नाक द्वारा हवा को भी धीरे-धीरे निकालते जाओ। (५) साफ़ करनेवाली क्रिया कर डालो। (६) इसे कई बार करो; एक बार एक टाँग से तब दूसरी से।

तब पहली कही हुई तरकीब से स्नान करो। यदि तुम कपड़े के द्वारा स्नान किया चाहते हो, तो एक बर्तन में शीतल जल ले लो। (जो बहुत सर्द न हो, परंतु सुखकर और उतना ही शीतल हो कि प्रतिक्रिया ला सके।) एक मोटा कपड़ा या तौलिया लो, उसे पानी में भिगोओ, और तब उसका आधा पानी निचोड़ डालो। पहले छाती और कंधे से शुरू करके पीठ, पेट, जाँघ, निचली टाँगें और तब पैरों को ख़ूब ज़ोर से रगड़ो। शरीर को चारो ओर से रगड़ने में कपड़े को कई बार पानी में डुबो-डुबोकर आधा निचोड़ लिया करो, जिससे सारे शरीर को ताज़ा ठंढा पानी मिल जाया करे। क्षणभर ठहर जाओ और पूरी-पूरी दो-एक साँसें ले लो; फिर मलने लगो। बहुत जल्दी मत करो, किंतु शांति से स्नान करो। पहले दो-एक बार ठंढे पानी से शरीर थोड़ा डरेगा, परंतु बहुत शीघ्र आदत पड़ जायगी; और तुम्हें अच्छा मालूम होने लगेगा। बहुत ठंढे पानी से स्नान प्रारंभ करने की ग़लती मत करो। परंतु धीरे-धीरे शीतलता कई दिनों में बढ़ाओ। यदि कपड़े से स्नान करने के स्थान पर टब में स्नान करना पसंद करते हो, तो वैसे ही पानी से टब को आधा भर लो और जब तक शरीर को मलते रहो, घुटनों के बल उसमें बैठे रहो, तब क्षणभर सारे शरीर को उसमें डुबोए रहो और तब एकदम बाहर आ जाओ।

चाहे कपड़े से स्नान करते हो चाहे टब में, शरीर को कई बार बहुत अच्छी तरह से हाथों से मलो। मनुष्य के हाथों में कुछ ऐसी शक्ति है, जिसका काम कपड़े से नहीं निकल सकता। एक बार परीक्षा कर लीजिए। शरीर थोड़ा-थोड़ा भीगा ही रहे, तभी कपड़े पहन लो, तब जो विचित्र सुख मिलेगा, उसका अनुभव करके तुम्हें बड़ा आश्चर्य होगा। पानी से सर्दी मालूम पड़ने के स्थान पर सारे शरीर में कपड़ों के नीचे गर्मी आ जायगी। स्नान के पश्चात् नीचे लिखी हुई कसरत कर-डालो।

(१) सीधे खड़े हो, अपनी भुजाओं को अपने सामने सीधे फैलाओ और उन्हें कंधों की उँचाई पर रक्खो, मुट्ठियाँ बँधी और एक दूसरों को छूती हों; मुट्ठियों को ज़ोर से झोका देकर पीछे बग़लों की सीध में या उससे भी तनिक पीछे लाओ ; इससे छाती का ऊपरी भाग फैलता है ; इसे कई बार करके क्षणभर विश्राम कर लो। (२) पहली स्थिति की अंतिम दशा में आ जाओ, अर्थात् भुजाएँ बग़लों की ओर कंधों से सीधी फैली रहें ; अब मुट्ठियों को एक वृत्त में घुमाओ, आगे से पीछे को, तब पीछे से आगे को ; तब बारी-बारी से दोनों मुट्ठियों को वायु-चक्की की भुजाओं की भाँति घुमाओ; इसे कई बार करो। (३) सीधे खड़े हो और हाथों को सिर के ऊपर ले जाओ, हाथ खुले रहें, अँगूठे एक दूसरे को छूते रहें, तब विना घुटनों को टेढ़ा किए भूमि को अँगुलियों के छोरों से स्पर्श करने का यत्न करो—यदि तुम न छू सको, तो यत्न तो पुरा करो; पहली स्थिति में आ जाओ। (४) अपने को पैरों के पंजों पर ऊपर उठाओ, इसे कई बार करो। (५) खड़े होकर अपने पैरों को दो फ़ीट के फ़ासिले पर रक्खो, तब धीरे-धीरे बैठने की स्थिति में नीचे दबो और फिर पहली स्थिति में आ जाओ। इसे कई बार करो। (६) पहली कसरत को कई बार करो। (७) साफ़ करनेवाली क्रिया करके ख़तम कर डालो।

यह कसरत उतनी टेढ़ी नहीं है, जितनी पहले पाठ में मालूम देती है। यह ५ कसरतों का पंचमेल है, जो बहुत सादा और सरल है। इसके एक-एक खंड को समझकर अभ्यास कीजिए और एक-एक को सिद्ध कर लीजिए ; तब सबको मिला दीजिए। तब यह घड़ी की भाँति चलने लगेगी और थोड़े ही क्षणों में पूरी कसरत हो जावेगी। यह बहुत बल बढ़ानेवाली है, इससे सारा शरीर काम में आ जाता है ; और यदि स्नान के ठीक बाद इस

कसरत को आप करते रहेंगे, तो नया शरीर मिल जाने का सुख भोगेंगे।

शरीर के ऊपरी भाग को ख़ूब मल-मलकर धो डालने से दिन-भर शक्ति और जोवट बने रहते हैं; रात को कमर से नीचे पैर तक मल-मलकर धो डालने से रात को नींद ख़ूब आती है और शरीर ताज़ा हो जाता है।

छब्बीसवाँ अध्याय

सूर्य की शक्ति

हमारे शिष्य लोग कुछ-न-कुछ ज्योतिष के प्रारंभिक वैज्ञानिक मूलतत्त्वों से परिचित होंगे। अर्थात् सृष्टि के उस अत्यंत छोटे खंड का कुछ ज्ञान पाए होंगे, जिसका हम अपनी आँखों से उत्तम-से-उत्तम दूरबीन यंत्र के द्वारा, ज्ञान प्राप्त करते हैं, और जिसमें करोड़ों तो स्थिर तारे हैं—जो सब-के-सब सूर्य हैं; जो हमारे सूर्य के बराबर और कोई-कोई तो इससे बहुत बड़े हैं। प्रत्येक सूर्य अपने संप्रदाय-भर के ग्रहों, उपग्रहों आदि की शक्ति का केंद्र है। हमारे ग्रह-संप्रदाय के लिये शक्ति देनेवाला बड़ा केंद्र हमारा सूर्य है। हमारे ग्रह-संप्रदाय में बहुत-से तो जाने हुए ग्रह हैं और बहुत-से ऐसे भी ग्रह हैं, जिनका ज्योतिषियों को पता भी नहीं है। यह भूमि, जिस पर हम स्थित हैं, हमारे सूर्य के अनेक ग्रहों में से एक ग्रह है।

हमारा सूर्य अन्य सूर्यों की भाँति आकाश में लगातार शक्ति छोड़ रहा है; यही शक्ति ग्रहों को जीवट देती है और उन पर जीवन संभव कर देती है। सूर्य की किरणों के विना भूमि पर जीवन असंभव हो जाता—तुच्छातितुच्छ जीव भी न जी सकते। हम सब लोग जीवट—जीवनबल—के लिये सूर्य पर अवलंबित हैं। यह जीवट जीवनबल या शक्ति वही पदार्थ है, जिसे योगी लोग प्राण करके जानते हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्राण सर्वव्यापक है; परंतु कुछ ऐसे केंद्र हुआ करते हैं, जो प्राण को खींचा और छोड़ा करते हैं—मानो एक स्थायी धारा बहाया करते हैं। विद्युत् शक्ति सर्वव्यापक है; परंतु डिनामो (dynamos) और ऐसे ही अन्य केंद्र आव-

श्यक होते हैं कि उसे संग्रह करें और घनीभूत बनाकर प्रवाहित करें। सूर्य और उसके ग्रहों के मध्य में प्राण की अनवरत धारा जारी रहती है।

यह बात मान ली गई है (आधुनिक विज्ञान भी इसमें प्रतिवाद नहीं करता) कि सूर्य जलती हुई आग की ढेरी है, एक प्रकार की जलती हुई भट्टी है, और जो रोशनी और गरमी हम प्राप्त करते हैं, वे इसी भट्ठी की ज्योति है। परंतु योगशास्त्रियों ने इसे भिन्न ही माना है। वे यह सिखाते हैं कि यद्यपि सूर्य का संगठन अथवा वहाँ की दशा हम लोगों की इस भूमि की दशा से इतनी भिन्न है कि मनुष्य का मन उस दशा की ठीक भावना भी नहीं कर सकता, तथापि सूर्य जलते हुए द्रव्य की वैसी ढेरी नहीं है, जैसी जलते हुए कोयले या गले हुए लोहे की ढेरियाँ हुआ करती हैं। योगी आचार्य लोग इन भावनाओं को स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत उनकी यह धारणा है कि सूर्य अधिकांश उन द्रव्यों से बना है, जो हाल के आविष्कृत "रेडियम" के समान हैं। वे यह नहीं कहते कि सूर्य रेडियम ही से बना है, परंतु वे शताब्दियों से यही समझते आते हैं कि वह अनेकों ऐसे द्रव्यों से बना है, जिसके विषय में पश्चिमी संसार इतना सोच-विचार कर रहा है, और जिसको उसके आविष्कारों ने रेडियम नाम दिया है। हम यहाँ रेडियम का वर्णन नहीं करना चाहते, परंतु केवल इतना ही कह देते हैं कि यह उन्हीं गुणों और शक्तियों से युक्त है, जिन गुणों और शक्तियों से सूर्य के बनानेवाले अवयव भी थोड़े बहुत युक्त हैं। यह बात बहुत संभव है कि सूर्य के बनानेवाले अन्य अवयव भी इस पृथ्वी पर पाए जायँ, जो रेडियम की समता रखते हों और कुछ-कुछ अंशों में उससे भिन्न भी हों।

यह सौर्य द्रव्य गली हुई दशा में नहीं है, और न तो जलती हुई दशा में ही है, जैसा कि हम लोग अक्सर कहा करते हैं। परंतु

वह सर्वदा अपने ग्रहों से प्राण की धार खींचा करता है, और उस प्राण को प्रकृति की किसी आश्चर्यमय प्रक्रिया में पकाकर फिर। ग्रहों पर वापसी धारा द्वारा भेजा करता है। जैसा कि हमारे शिष्य लोग जानते हैं, हवा ही मूल भंडार है, जहाँ से हम लोग प्राण खींचा करते है, परंतु यह हवा स्वयम् सूर्य से प्राण ग्रहण करती है। हम बतला आए हैं कि जिस भोजन को हम खाते हैं, वह कैसे प्राण से भरपूर रहता है, जिसे हम लेकर अपने काम में लाते हैं; परंतु पौधे अपना प्राण सूर्य से ग्रहण करते हैं। इस सूर्यमंडल या सूर्य-संप्रदाय के लिये सूर्य ही प्राण का महाभंडार है, जो एक बृहत् डिनामो की भाँति अपनी धाराओं को इस सूर्यसंप्रदाय के प्रत्येक छोरों तक सर्वदा भेजा करता है और जीवन को, शारीरिक जीवन को, संभव बनाए है।

यह किताब वह स्थान नहीं है, जहाँ सूर्य की क्रियाओं की आश्चर्यजनक बातों का वर्णन किया जाय। योगी लोग इन बातों को अच्छी तरह जानते हैं। हम यहाँ पर अपने शिष्यों को केवल इतना ही बतला दिया चाहते हैं कि वे समझ जायँ कि सूर्य ही प्राण का आदि भंडार है और वही सब प्राणियों के जीवन का मूल है। इस अध्याय का मुख्य उद्देश यही है कि आपके चित्त पर बिठाल दिया जाय कि सूर्य की किरणें शक्ति और जीवन से भरी हुई रहती हैं, जिन्हें हम अपने जीवन के प्रत्येक क्षण काम में लाया करते हैं, परंतु हम उतना काम में नहीं लाते, जितना ला सकते थे। आजकल के सभ्य मनुष्य सूर्य से भय खाते हुए मालूम देते हैं। वे अपने कमरों को अँधेरा बना देते हैं, अपने शरीर पर अनेक कपड़े पहन लेते हैं कि जिसमें सूर्य की किरणों से बचे रहें। वे सूर्य की किरणों से दूर भागते हैं। ठीक यहाँ ही स्मरण रखिए कि जब हम सूर्य की किरणों की बात कर रहे हैं, तो सूर्य की गर्मी से हमारा मतलब नहीं

है। गर्मी तो सूर्य की किरणों को पृथ्वी के पदार्थों के संपर्क में आने से उत्पन्न होती है; पृथ्वी के वायुमडल के बाहर ग्रहों के बीच का जो आकाश है, वहाँ बहुत कड़ी सर्दी पड़ती है, क्योंकि वहाँ सूर्य की किरणों को अवरोध देनेवाला कोई पदार्थ ही नहीं है। इसलिये जब हम कहते हैं कि सूर्य की किरणों का लाभ उठाइए, तो हमारा मतलब यह नहीं है कि जेठ की दुपहरी में आप बाहर बैठिए।

सूर्य की किरणों से दूर भागने की आदत छोड़िए। अपनी कोठरियों में धूप आने दीजिए। अपने वस्त्रों और बिछौनों से इतना मत डरिए। अपने उत्तम दालान को सर्वदा बंद मत रखिए। आप अपनी कोठरी को ऐसा तहख़ाना नहीं बनाना चाहते कि जिसमें सूर्य की धूप ही न जाय, हम ऐसा ही ख़याल करते हैं। सुबह होते ही अपनी खिड़कियों को खोल दीजिए कि धूप सीधे या परावर्तित होकर कोठरी में आ जाय, तो आपको ऐसा वायुमंडल मिल जाया करेगा कि शनैः-शनैः आपके घर में स्वास्थ्य, बल और जीवट भर जायँगे और रोग, निर्बलता और निर्जीवता भाग जायँगे—ईश्वर का प्रवेश होगा और दरिद्र निकल भागेगा।

थोड़े-थोड़े समय पर धूप खा लिया कीजिए। सड़क की धूपवाली बग़ल को मत छोड़िए। हाँ, जब बहुत ही ज़्यादा गरम मौसिम हो या दुपहरी हो उस वक़्त आप धूपवाली बग़ल से बचने का यत्न कर सकते हैं। कभी-कभी घाम से स्नान किया कीजिए। सूर्योदय से पहले ही जग जाइए और धूप में खड़े हो, बैठ या लेट जाइए कि आपका सारा शरीर ताज़ा हो जाय। यदि आपको अवसर मिले, तो आप शरीर के सब वस्त्रों को उतारकर बिना वस्त्र की बाधा के घाम खा लिया कीजिए। यदि आपने इसकी परीक्षा कभी नहीं की है, तो आप कैसे विश्वास करेंगे कि घाम खाने में कितना गुण है और घाम खाने के पश्चात् कितना बल मालूम देने लगता

है ? इस विषय को बिना विचारे मत छोड़ जाइए। सूर्य की किरणों की थोड़ी परीक्षा कर लीजिए और सूर्य से निःसृत निर्बाध प्राण की धार का कुछ लाभ उठा लिया कीजिए। यदि शरीर के किसी भाग में कोई विशेष निर्बलता हो, तो उस भाग पर सीधी धूप लगने से आपको बहुत लाभ प्रतीत होगा।

प्रातःकाल की सूर्य की किरणें अत्यंत लाभदायक होती हैं; और जिनकी आदत सबेरे जगने और इन किरणों से लाभ उठाने की पड़ गई है, उन्हें बड़भागी समझना चाहिए और वे बधाई के योग्य हैं। पाँच घंटा दिन चढ़ जाने के बाद किरणों की प्राणदायिनी शक्ति घटने लगती है और शाम तक क्रमशः घटती ही जाती है। आप ख़्याल करेंगे कि फल की वे क्यारियाँ या गमले, जिन्हें प्रातः-काल की धूप मिलती है, उनकी अपेक्षा जिन्हें दोपहर के बाद की धूप मिलती है, अधिक हरे-भरे और सुखी रहते हैं। फूल के सब प्रेमी इस बात को समझते हैं कि सूर्य की धूप पौधों के लिये उतनी ही आवश्यक है, जितना पानी, हवा और अच्छी मिट्टी आव-श्यक हैं। थोड़ा पौधों का अध्ययन कीजिए—प्रकृति के मार्ग पर आ जाइए और वहाँ अपना सबक़ पढ़िए, धूप और हवा पुष्टि की आश्चर्यजनक ओषधि हैं—आप क्यों और अधिक स्वच्छंदता से इनका व्यवहार नहीं करते ?

इस किताब में अन्यत्र हमने हवा, भोजन, पानी आदि से अधिक प्राण ग्रहण करनेवाली मन की शक्ति के विषय में बहुत कुछ कहा है। वही बात सूर्य की किरणों से भी प्राण ग्रहण करने में लगती है। आप उचित मानसिक स्थिति द्वारा लाभ को अधिक बढ़ा सकते हैं। सबेरे की धूप में बाहर निकल जाइए—सिर को ऊँचा कर लीजिए, कंधों को पीछे खींच लीजिए, और उस हवा की पूरी साँस लीजिए, जो सूर्य की किरणों द्वारा प्राण से भरी जा रही है। अपने शरीर पर

धूप पड़ने दीजिए और तब लिखे हुए मंत्र या ऐसे ही अन्य मंत्र को जपते हुए मंत्र में कही बातों की मानसिक कल्पना करते जाइए। मंत्र यह है—"मैं प्रकृति की सुंदर धूप का स्नान कर रहा हूँ—मैं उसमें से जीवन, स्वास्थ्य, बल और जीवट ग्रहण कर रहा हूँ। वह मुझे बलवान् और शक्तिमान् बना रही है। मैं प्राण की अंतर्गामी धार का अनुभव कर रहा हूँ—मैं अनुभव करता हूँ कि वह धार हमारे शरीर में सिर से पैर तक सर्वत्र दौड़ रही है और सारे शरीर को बलवान् बना रही है। मैं सूर्य की धूप को चाहता हूँ और उसके सब लाभों को ग्रहण करता हूँ।"

जब-जब आपको अवसर मिले, इसका अभ्यास कर लिया कीजिए और तब आपको क्रमशः मालूम होने लगेगा कि इतने दिनों तक आपने कैसी अच्छी चीज़ से लाभ उठाना छोड़ दिया था कि आप धूप से भागते थे। अनुचित रीति से दुपहरी की धूप गरम दिनों में मत खाओ। परंतु चाहे जाड़ा हो या गरमी, सबेरे की धूप कुछ भी हानि न करेगी। सूर्य की धूप और उसके सब गुणों की प्रेम से चाहना करो।

सत्ताईसवाँ अध्याय

ताज़ी हवा

अब इस अध्याय को छोड़ मत जाइए कि इसमें वही साधारण विषय होगा। यदि आपकी इच्छा इसे छोड़ जाने की होती हो, तो आप ही वैसे मनुष्य हैं, जिनके लिये यह अध्याय अभीष्ट और अत्यंत आवश्यक है। जिन लोगों ने इस बात पर ग़ौर किया है और ताज़ी हवा के लाभ और आवश्यकता को कुछ-कुछ समझ लिया है, वे इस अध्याय को कभी न छोड़ जायँगे, वे उस अच्छी बात को फिर पढ़ना चाहेंगे। और यदि आप इस विषय को पसंद नहीं करते और इसको छोड़जाना चाहते हैं, तब निश्चय आपको इसकी आवश्यकता है। इस किताब के अन्य अध्यायों में हमने साँस लेने की प्रधानता को—आभ्यंतरिक और बाह्य दोनों पटलों में—दिखलाया है। इस अध्याय में साँस लेने का विषय फिर न उठाया जायगा, परंतु ताज़ी हवा और पुष्कल हवा के विषय में थोड़ा उपदेश दे दिया जायगा। यह उपदेश हमारे देश के लिये अत्यंत आवश्यक है जहाँ अब बंद कोठरियों और ऐसे घरों का रिवाज है, जिनमें पवन का भी प्रवेश न होने पावे। हमने आप लोगों को सही साँस लेने की प्रधानता को दिखा दिया है, परंतु वह पाठ आपको क्या लाभ पहुँचावेगा, जब साँस लेने के लिये अच्छी हवा ही न रहेगी।

बंद कोठरियों में जहाँ अच्छी तरह हवा का आवागमन नहीं है, बंद रहना अत्यंत मूर्खता का ख़्याल है। फेफड़ों की क्रियाओं और कर्तव्यों को जानकर भी मनुष्य बंद घर की गंदी हवा को शत्रु न समझे, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इस विषय पर आइए थोड़ा साधारण सीधा विचार कर लें।

आपको स्मरण होगा कि फेफड़े सर्वदा शरीर-यंत्र के रद्दियात और निकम्मे हानिकारक पदार्थों को फेका करते हैं। साँस शरीर को साफ़ करनेवाली चीज़ है, जो निकम्मे द्रव्यों, रद्दी पदार्थों और मृत देहाणुओं को शरीर के प्रत्येक अंग से निकालकर फेका करती है। फेफड़ों से निकाले हुए पदार्थ उतने ही गंदे होते हैं, जितना चमड़े के छिद्रों से निकाला हुआ पसीना, गुर्दों से निकाला हुआ मूत्र और मलाशय से निकाला हुआ मैला, गंदे हुआ करते हैं। सच बात तो यह है कि यदि शरीर-यंत्र में पानी काफ़ी न पहुँचाया जाय, तो प्रकृति फेफड़ों से गुर्दों का काम लेती है और शरीर के विषैले निकम्मे पदार्थों को फेफड़ों द्वारा बाहर फेकवाती है। यदि अँतड़ियाँ सिट्ठी और फ़ुज़लों को ठीक तरह से नहीं निकाल बाहर करतीं, तो मलाशय की बहुत-सी चीज़ें शरीर में ऊपर चढ़ जाती हैं और बाहर निकलने की राह ढूँढ़ने लगती हैं कि फेफड़े उन्हें लेकर साँस द्वारा बाहर फेंक देते हैं। तनिक विचार तो कीजिए कि यदि आप बंद घर में अपने को बंद करके सोवेंगे, तो आप प्रत्येक घंटे में आठ गैलन कारबोनिक एसिड गैस और अन्य गंदे पदार्थ उस कोठरी के वायुमंडल में मिलाते रहेंगे। आठ घंटे में आप ६४ गैलन छोड़ेंगे। यदि उस कोठरी में दो आदमी सोते हों, तो गैलनों को दो से गुणा कर दीजिए। ज्यों-ज्यों कोठरी की हवा गंदी होती जाती है, त्यों-त्यों आप बार-बार उसी गंदी और विषैली हवा को साँस द्वारा खींचते जाते हैं और हवा का गुण प्रत्येक साँस में अधिक-अधिक बिगड़ता जाता है। सबेरे जब कोई मनुष्य आपकी कोठरी में आता है, और उसे दुर्गंधि मालूम होती है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है, क्योंकि आप तो खिड़की भी बंद कर दिए थे। इस प्रकार के भ्रष्ट कमरे में रात-भर सोने के पश्चात् यदि सबेरे आप उदास, चिड़-चिड़े, ज्ञानहीन, झगड़ालू और हर तरह से निकम्मे मालूम हों, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

आपने कभी सोचा भी है कि आप सोते किसलिये हैं ? आप इसलिये सोते हैं कि प्रकृति को अवसर मिले कि दिन-भर में जो कुछ शरीर-यंत्र में छीजन हुई है, रात को उसकी मरम्मत हो जावे। आप उसकी शक्तियों का व्यवहार करना छोड़ देते हैं और उसे अवसर देते हैं कि वह आपके शरीर-यंत्र की ऐसी मरम्मत कर दे और बना दे कि आप सबेरे फिर हर तरह से ठीक हो जायँ। इस काम को अच्छी तरह से करने के लिये उसे कम-से-कम मामूली भी दशा तो चाहिए। वह तो आशा करती है कि उसको ऐसी हवा मिलनी चाहिए, जिसमें आक्सीजन की उचित मात्रा हो—ऐसी हवा हो जो पिछले दिन धूप खाकर फिर प्राण से भरपूर हो गई हो। ऐसी हवा के स्थान में आप बहुत ही परिमित हवा देते हैं, जो आधी तो शरीर की भीतरी रद्दियात के मिलने से विष-मय हो जाती है। ऐसी दशा में रात को सोने पर भी आपके शरीर-यंत्र की पूरी मरम्मत न हो सके, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

जिस कोठरी से वैसी दुर्गंध आती हो, जैसी हवा के अच्छे आवा-गमन से ही न सोनेवाली कोठरी से आया करती है, वह कोठरी तब तक आपके सोने के योग्य नहीं है, जब तक उसकी सब हवा निकलकर उसके स्थान में स्वच्छ ताज़ी हवा न भर जाय। सोने के कमरे की हवा को उतना ही साफ़ और ताज़ी होना चाहिए, जितना बाहर मैदान की हवा स्वच्छ और ताज़ी हुआ करती है। सर्दी खा जाने का भय न कीजिए। स्मरण रखिए कि क्षयी रोग के लिये अत्यंत अर्वाचीन वैज्ञानिक ओषधि यह निश्चित हुई है कि रात को रोगी ताज़ी हवा में रक्खा जाय, इस बात की कुछ परवाह नहीं कि सर्दी कितनी है। ख़ूब ओढ़न रखिए; और जब आपको आदत पड़ जायगी, तो सर्दी मालूम भी न पड़ेगी। प्रकृति के मार्ग पर वापस

आइए। ताज़ी हवा का यह मतलब नहीं है कि आप आँधी या हवा के झोकों में सोते रहें।

जो बात सोने के कमरे के लिये ठीक बतलाई गई है, वही बात रहने और दफ़्तर के कमरों के लिये भी ठीक है। यह सच है कि जाड़ों में कोई बाहरी हवा को अंदर अधिक न जाने देगा, क्योंकि उससे कमरे की हवा अत्यधिक सर्द हो जावेगी; परंतु सर्द आबो-हवा में भी हवा को स्वच्छ रखने के लिये बहुत उपाय हो सकते हैं। थोड़े-थोड़े अर्से पर खिड़की खोल दिया कीजिए कि हवा को अवसर मिल जाय कि वह अच्छी तरह आ जाय। रात में इस बात को न भूलिए कि लैंप और गैस की रोशनी भी आक्सीजन ख़र्च कर रहे हैं। इसलिये थोड़े-थोड़े अर्से पर सब बातों को ताज़ा कर दिया कीजिए। बिहतर तो यह होगा कि हवा की सफ़ाई के बारे में कोई अच्छी किताब पढ़ डालिए; परंतु यदि यह न हो सके, तो जितना हम कह आए हैं, उतने ही का ख़ूब स्मरण रखिए, तो आपकी साधारण बुद्धि शेष सब कार्य कर देगी।

प्रतिदिन बाहर निकल जाया करो और ताज़ी हवा शरीर पर लगने दो। ताज़ी हवा जीवनदायक और स्वास्थ्यकर गुणों से भरी रहती है। इस बात को आप सब लोग जानते हैं और ज़िंदगी-भर जानते आए हैं। परंतु उस पर भी आप लोग घर के भीतर ही पड़े रहते हैं, जो बात प्रकृति के उद्देश के बिलकुल विपरीत है। यदि आप भले-चंगे नहीं रहते, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? प्रकृति का नियम तोड़कर कोई दंड पाए विना नहीं रह सकता। हवा से डरिए मत। प्रकृति का उद्देश है कि आप हवा का व्यवहार करें—वह आपकी प्रकृति और आवश्यकताओं के अनुकूल है। इसलिये उससे डरिए मत; किंतु उसकी चाहना कीजिए। जब आप बाहर जायँ और ताज़ी हवा में टहलें, तो मन-ही-मन ऐसा कहें—"मैं प्रकृति

का बच्चा हूँ—उसने मुझे ऐसी पवित्र हवा काम में लाने के लिये दी है, जिससे मैं बलवान् और अच्छा हो जाऊँ और वैसा ही बना रहूँ। मैं साँस के द्वारा स्वास्थ्य, बल और शक्ति भीतर खींच रहा हूँ। मैं अपने शरीर पर लगती हुई हवा के सुख को भोग रहा हूँ और मैं उसके लाभकर फलों को अनुभव कर रहा हूँ। मैं प्रकृति का बच्चा हूँ और उसके दिए हुए पदार्थों में सुख भोगता हूँ।" हवा का सुख भोगना सीखिए, फिर आप सुखी हो जावेंगे।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

निद्रा क्षति को स्वाभाविक पूरा करनेवाली है

प्रकृति की उन वृत्तियों में, जो मनुष्यों के जानने के योग्य हैं निद्रा ऐसी सहज और सरल वृत्ति मालूम होती है कि इसके लिये किसी शिक्षा या सलाह देने की आवश्यकता न होनी चाहती थी। बच्चे को निद्रा की प्रधानता और आवश्यकता जानने के लिये टीका-टिप्पणी-सहित किसी किताब की आवश्यकता नहीं होती—वह सो ही जाता है, बस मामला ख़तम है। युवा मनुष्य की भी, यदि वह प्रकृति के पथ पर रहता, तो यही दशा होती। परंतु यह तो ऐसे बनावटी घिरावों से घिर गया है कि इसके लिये प्राकृतिक जीवन जीना असंभव-सा हो गया है। परंतु यह भी अनहित घिरावों के होते हुए भी, पुनरपि प्राकृतिक मार्ग पर आ जाने में बहुत कुछ कर सकता है।

प्रकृति के विरुद्ध मूर्खता की आदतों में, इसके सोने और जागने की आदतें अत्यंत बुरी हो गई हैं। वह उन घड़ियों को, जिन्हें प्रकृति ने भली भाँति सोने के लिये दिया है, जोश और सामाजिक आमोद-प्रमोद में व्यर्थ खो देता है; और उन घड़ियों-पहरों में सोता है, जिन्हें प्रकृति ने उसे जीवट और शक्ति ग्रहण करने के लिये दिया था। उत्तम-से-उत्तम निद्रा सूर्यास्त और आधी रात के बीच के समय में हुआ करती है; और उत्तम-से-उत्तम समय, बाहरी काम करने और जीवट ग्रहण करने के लिये प्रातःकाल के कुछ घंटे हुआ करते हैं। इस प्रकार हम दोनों ओर खोते हैं और उस पर भी आश्चर्य करते हैं कि क्यों जवानी ही में या उससे भी पहले स्वास्थ्य बिगड़ गया।

नींद की दशा में प्रकृति मरम्मत का कार्य करती है और यह बात अत्यंत आवश्यक है कि इसके लिये उसे उचित अवसर दिया जाय। हम सोने के विषय में नियमावली बनाने की चेष्टा नहीं करेंगे, क्योंकि भिन्न-भिन्न मनुष्यों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताएँ हुआ करती हैं; यह अध्याय कुछ थोड़ा-सा दिग्दर्शन के लिये दे दिया गया है। साधारण रीति से प्रकृति ८ घंटा नींद के लिये चाहती है।

सर्वदा हवा के भली भाँति से आने-जानेवाली खुली कोठरी में सोया कीजिए, जैसा कि ताज़ी हवावाले अध्याय में वर्णन किया गया है। ओढ़न काफ़ी ओढ़ लीजिए कि जिसमें सुख रहे; परंतु बहुत ही भारी ओढ़नों के नीचे दफ़न मत हो जाइए, जैसा कि बहुत-से घरों में दस्तूर हुआ करता है। यह अधिकतर आदत डालने का मामला है। आप जितने भारी-भारी ओढ़न ओढ़ते हैं, उनकी अपेक्षा हलके ओढ़नों से भी अच्छी तरह काम चलता हुआ देखकर आप आश्चर्य में आ जायँगे। जिन कपड़ों को आप दिन में पहने थे, उन्हीं को पहने हुए रात को कभी मत जाइए—यह आदत न तो स्वास्थ्य-दायक है और न सफ़ाई ही की है। सिर के नीचे बहुत-सी तकियाओं का व्यवहार मत कीजिए—एक हलकी-सी छोटी तकिया काफ़ी है। शरीर की प्रत्येक मांसपेशी को ढीला कर दीजिए और प्रत्येक नाड़ी में से तनाव खींच लीजिए और ज्यों ही ओढ़न ओढ़िए, सब तनावों और खिचावों से हटकर निष्क्रिय होकर पड़ जाइए। लेटने पर दिन के कार्यों की आलोचना मत किया कीजिए। यदि आप इस नियम के अनुकूल चलेंगे, तो तंदुरुस्त बच्चे की भाँति झट सो जायँगे। सोते हुए बच्चों को ग़ौर से देखिए कि वह सोते समय कैसे सो जाता है और उसी का अनुकरण कीजिए। जब आप सोने जाइए, तो आप भी बच्चा हो जाइए और बचपन ही की वेदनाओं को धारण कर लीजिए, फिर आप भी बच्चे ही की भाँति सो जाया करेंगे। केवल

इतना ही उपदेश एक सुंदर जिल्दवाली किताब में छापने के योग्य है, क्योंकि यदि इस उपदेश का अनुसरण किया जाय, तो मानव-समाज बहुत कुछ उन्नत हो जाय।

यदि किसी मनुष्य का मानव की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान प्राप्त हो जाय और यह विदित हो जाय कि सृष्टि में उसका पद क्या है, तो वह बच्चे ही की भाँति विश्राम में निमग्न हो जाय। वह सृष्टि में अपने को निर्द्वंद्व समझता है और विश्व के शासन करनेवाली शक्ति में इतना विश्वास और भरोसा रखता है कि वह बच्चे की भाँति अपने शरीर को ढीला कर देता है और अपने मन पर से तनाव को खींच लेता है और क्रमशः विश्राममय नींद में निमग्न हो जाता है।

उन मनुष्यों के लिये, जो नींद न आने के कारण दुखी रहा करते हैं, नींद बुलाने के लिये हम कोई विशेष नियम न देंगे। हमारा विश्वास है कि यदि वे विचारयुक्त और प्राकृतिक जीवन की तरकीबों का अनुसरण करेंगे, तो वे विना किसी ख़ास सलाह के पाए ही स्वभाव ही से आप-से-आप सो जाया करेंगे। परंतु यहाँ पर उन लोगों के लिये, जो साधन कर रहे हैं, दो-एक बातों का कह देना अच्छा ही होगा। सोने के पहले टाँगों और पैरों को ठंडे पानी से धो डालने से नींद आती है। मन को अपने चरणों पर एकाग्र करने से भी बहुतों को अच्छा लाभ होता है, क्योंकि रुधिर का प्रवाह चरणों ही की ओर अधिक झुक जाता है और मस्तिष्क को विश्राम मिल जाता है। सबके ऊपर यह बात है कि नींद बुलाने की कोशिश कभी मत कीजिए; यह सोने की इच्छा रखनेवाले के लिये अत्यंत बुरी बात है, क्योंकि इसका विपरीत ही फल होता है। यदि आप इसका ख़्याल ही करें, तो बेहतर तरकीब यह है कि आप ऐसी मानसिक स्थिति धारण कर लीजिए कि चाहे तुरत सो जायँ या न सो जायँ,

इसकी कुछ चिंता ही नहीं; यह देखिए कि शरीर और मन सब प्रकार से विना तनाव के ढीले तो हो गए हैं, और आप सब प्रकार से संतुष्ट तो हैं। अपने को थका हुआ बच्चा कल्पना कर लीजिए कि आधा ऊँघते हुए विश्राम कर रहे हैं, न तो पूरा सो ही गए हैं और न पूरा जागते ही हैं, बस ऐसा ही कीजिए। बहुत रात तक चिंता मत करते रहिए कि अब भी नींद नहीं आई, केवल वर्तमान क्षण में संतुष्ट होकर निश्चिंत हो जाइए और निष्क्रियता का सुख भोगिए।

शिथिलीकरण के अध्याय में जो कसरतें दी गई हैं, उनसे आप इच्छानुसार अपने को ढीला कर सकेंगे और जिनको नींद न आने का दुःख भोगना पड़ता है, उनको मालूम होगा कि उनकी सभी आदतें बदल गई हैं।

अब हम जानते हैं कि हम सभी शिष्यों से यह आशा नहीं कर सकते कि वे बच्चे की भाँति अथवा किसान की तरह सबेरे ही सो जायँगे और सबेरे ही जग उठेंगे। हमारी इच्छा तो यही है कि ऐसा ही होता; परंतु हम समझते हैं कि अर्वाचीन जीवन में, विशेष करके बड़े-बड़े नगरों में कैसी-कैसी आवश्यकताएँ पड़ जाती हैं। इसलिये हम अपने शिष्यों से यही अनुरोध आग्रहपूर्वक करते हैं कि इस विषय में जहाँ तक हो सके, प्रकृति के निकट रहने का यत्न कीजिए। जहाँ तक हो सके अधिक रात तक जागना और अपने को जोश में रखना तर्क कर दीजिए; और जब अवसर मिले, सबेरे सोइए और सबेरे ही जगिए। हम जानते हैं कि ऐसा करने से आपकी उस बात में बाधा पड़ेगी, जिसे आप आनंद समझे हुए हैं; परंतु हमारा यही निवेदन है कि इस "आनंद" में भी आप विश्राम कर लीजिए। देर या सबेर मानव जाति फिर सादे तरीक़ों से जीने की ओर वापस आवेगी; और अधिक रात तक डावाँडोल रहना वैसा ही गिना

जायगा, जैसा आज तक भले आदमियों में गाँजा, अफ़ीम आदि का व्यवहार और शराब पीकर मतवाला हो जाना आदि गिने जाते हैं। परंतु तब तक हम यही कह सकते हैं कि जहाँ तक करते बने, इस विषय में करते रहिए।

यदि आपको दिन की दोपहरी में कुछ समय मिल जाय, या अन्य ही किसी समय में, तो आपको मालूम हो जायगा कि आधे घंटे के शरीर के शिथिलीकरण अथवा निद्रा से आपके शरीर में ताज़गी आ जायगी और उठने पर आप बेहतर कार्य करने के योग्य हो जायँगे। बहुत-से लब्ध प्रतिफल कामकाजी और रोज़-गारी मनुष्य इस गूढ़ भेद को जान गए हैं, और जब नौकर-चाकर लोग मिलनेवालों से कहते हैं कि मालिक आध घंटे के लिये बहुत ही आवश्यक काम में फँसे हैं, तो अक्सर यह बात रहती है कि वे चारपाई पर पड़े हुए अपने शरीर को ढीला किए हुए लंबी साँसें लेते रहते हैं, और प्रकृति को ऐसा अवसर देते रहते हैं कि वह ताज़गी दे दे। अपने काम के बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा विश्राम देने से मनुष्य उतने काम का दूना काम कर सकता है, जितना विना विश्राम किए करता था। हे परिश्रमी जनो, इस बात पर विचार करो और अपने परिश्रम के बीच-बीच में शिथिलीकरण और विश्राम के द्वारा तुम परिश्रम को और भी अधिक तेज़ और लाभदायक बना सकते हो। थोड़े-से शिथिली-करण से नई ताज़गी आ जाती है और कठिन परिश्रम की योग्यता हो जाती है।

उनतीसवाँ अध्याय

नवजनन

इस अध्याय में हम आपके ध्यान को एक ऐसे विषय की ओर आकर्षित करेंगे, जो मानव जाति के लिये अत्यंत हितकर है, परंतु जिस पर विचार करने के लिये मानव जाति तैयार नहीं है। इस विषय पर सर्वसाधारण की मति की वर्तमान स्थिति के कारण इच्छानुकूल या आवश्यकतानुसार साफ़-साफ़ लिखना असंभव है; क्योंकि इस विषय के सभी लेख अश्लील और अपवित्र ख़याल किए जाते हैं, यद्यपि लेखक का उद्देश सर्वसाधारण की अश्लील और अपवित्र तथा अनुचित क्रियाओं का रोकना ही क्यों न हो। तथापि कुछ निर्भय लेखकों ने सर्वसाधारण को किसी-न-किसी प्रकार से इस नवजनन के विषय से ख़ासी तौर पर परिचित करा दिया है, जिससे हमारे पाठकों में से अधिकतर मनुष्य हमारे भाव को समझ जायँगे।

हम कामशास्त्र-ऐसे प्रधान विषय को नहीं वर्णन किया चाहते, क्योंकि उसके वर्णन में तो अलग ही एक अच्छी किताब तैयार हो जायगी; और इसके अलावे इस किताब में उस शास्त्र की सविस्तर व्याख्या करने की चेष्टा उचित भी नहीं है। हम कुछ बात नवजनन के विषय में कहेंगे। मनुष्य लोग जो अधिक प्रसंग करते हैं और सहधर्मिणियों को अधिक प्रसंग के लिये विवश करते हैं, उसको योगी लोग बिलकुल प्रकृति के विरुद्ध समझते हैं। उनका यह विश्वास है कि रज और वीर्य ये इतने अनमोल पदार्थ हैं कि नष्ट करने के योग्य नहीं हैं, और जो मनुष्य ऐसा करता है, वह इस विषय में पशु से भी नीचे गिर जाता है। सिर्फ़ एक या दो को छोड़कर शेष सब नीचे जंतु केवल संतान

के लिये प्रसंग करते हैं ; और प्रसंगाधिक्य तथा रज-वीर्य का नाश जितना मनुष्य करते हैं, वह नीच जंतुओं को छू तक नहीं गया है।

ज्यों-ज्यों मानव जाति सच्चे जीवन में उन्नति करती जाती है, त्यों-त्यों पति और पत्नी के मध्य में नए-नए कर्तव्य प्रकट होते हैं और उनमें परस्पर उच्च भावों का देना-लेना होने लगता है, जो पशुओं ही में नहीं होता और न जो पशुतुल्य भौतिक मनुष्यों ही में होता। यह बात उन्नतमना और आध्यात्मिक पुरुष और स्त्रियों के बाँटे की है। पति और पत्नी के मध्य में समुचित संबंध रहने से उन्नति, शक्ति और सज्जनता प्राप्त होती है न कि क्षीणता, निर्बलता और दुर्जनता, जो कि केवल विलासिता से उत्पन्न हुआ करती है। यही कारण है कि पति-पत्नी में यदि एक उच्च भाव और दूसरा नीच भाव का हुआ, तो दोनों एक संग गति नहीं कर सकते, एक आगे बढ़ा चाहता है, तो दूसरा पीछे हटने का यत्न करता है और इसलिये वैमनस्य और विरोध हो जाया करता है। वे दोनों भिन्न-भिन्न लोकों में रहने लगते हैं और वे परस्पर एक दूसरे में उस सुख को नहीं पाते, जिसकी उन्हें अभिलाषा होती है। बस हम इस विषय में केवल इतना ही कहा चाहते हैं। इस विषय पर बहुत अच्छी-अच्छी किताबें लिखी गई हैं। जहाँ उच्च विचार के ग्रंथ मिलते हों, वहाँ पता लगाने से इन किताबों का पता लग सकता है। अब आगे इस अध्याय में हम रज-वीर्य की रक्षा की महिमा के विषय में कहेंगे।

यद्यपि योगी लोग ब्रह्मचारी रहकर ऐसे जीवन में रहते हैं कि पति-पत्नी-भाव या उनके प्रसंग की बात ही नहीं रहती, तो भी योगी लोग जननेंद्रियों के बलवान् होने और उनका प्रभाव सारे शरीर पर पड़ने की महिमा को भली भाँति समझते हैं। इन इंद्रियों के निर्बल हो जाने से सारा आधिभौतिक शरीर-यंत्र निर्बल हो जाता है और

दुःख भोगता है। पूरी साँस लेने से (जिसका वर्णन पहले हो चुका है) एक ऐसा ताल उत्पन्न होता है, जो इस मुख्य अंग को स्वाभाविक स्थिति में रखने के लिये स्वयं प्रकृति की आदि ही से रची हुई तरकीब है; इस पूरी साँसक्रिया द्वारा जनन-शक्ति सुदृढ़ और जीवटवाली हो जाती है और इस प्रकार सहानुभवी क्रिया द्वारा सारा शरीर बलवान् और सुदृढ़ हो जाता है। इस कथन का यह अर्थ नहीं है कि पूरी साँस की क्रिया से कामवृत्ति जगती है—किंतु इससे बिलकुल ही पृथक् योगी लोग ब्रह्मचर्य और काम-दमन के पक्षपाती होते हैं, वे वैवाहिक गँठजोड़े में और अन्यत्र भी सर्वत्र पवित्रता चाहते हैं। उन लोगों ने स्वयं काम को दमन करना सीखा है, और वे काम को इच्छा और मन का वशवर्ती बना डालते हैं। परंतु काम के दमन करने का अर्थ नपुंसकता नहीं है; योगियों की यह शिक्षा है कि जिन पुरुष और स्त्रियों के जननावयव प्राकृतिक और सुदृढ़ हैं, उनका संकल्प ऐसा प्रबल होगा कि जिससे वह अपने को वश में रख सकेगा। योगियों का यह विश्वास है कि जननेंद्रियों की निर्बलता ही के कारण कामातुरता होती है।

योगी लोग यह भी जानते हैं कि कामशक्ति को परिवर्तित करके कैसे उसे शारीरिक और मानसिक विकाश में लगा सकते हैं कि जिसमें वह व्यर्थ न जाय, जैसा कि मूर्ख मनुष्यों में वह नष्ट हुआ करती है। आगे चलकर हम योगियों की एक ऐसी कसरत बतलाते हैं, जिससे काम-शक्ति मानसिक और शारीरिक बल में परिवर्तित हो जाती है। चाहे शिष्य योगी के इंद्रियशौच को पसंद करे या न करे, पर यह तो उसे मालूम हो ही जायगा कि पूरी साँस से इन अवयवों में इतनी शक्ति आवेगी, जितनी और किसी उपाय से नहीं आ सकती। स्मरण रखिए कि हम प्राकृतिक स्वस्थता का प्रतिपादन कर रहे हैं, न कि अस्वाभाविक वृद्धि का। भोगी कामी

को तो यह प्रतीत होगा कि प्राकृतिक का अर्थ भोग की इच्छा का कम होना है; और निर्बल मनुष्य को यह मालूम होगा कि इसका अर्थ शरीर में शान चढ़ जाना और उस निर्बलता से छुटकारा पा जाना है, जो अब तक उसे मनहूस बनाए थी। हम यह नहीं चाहते कि यहाँ पर हमारी बातों को समझने में आपको भ्रम हो। योगी का आदर्श यह है कि शरीर अपने सब अवयवों से सुदृढ़ हो और अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के आयत्त में उच्चभावों में जागृत होकर रहे।

योगी लोग पुरुषों और स्त्रियों के वीर्य और रज के सुव्यवहार तथा दुर्व्यवहार का बहुत बड़ा ज्ञान रखते हैं। इस विषय की कुछ बातें योगियों की मंडली से निकलकर कहीं-कहीं अन्य मनुष्यों में फैल गई हैं, और उन बातों को कुछ पश्चिमी मनुष्यों ने लिख डाला है और उनसे बहुत लाभ हुआ है। इस किताब में हम उस विषय के आंतरिक विचारों का वर्णन करेंगे, परंतु एक ऐसी तरकीब पर आपके ध्यान को आकर्षित करेंगे, जिससे शिष्य अपनी जननशक्ति को नष्ट करने के स्थान में उसे सारे शरीर के लिये जीवट रूप में परिवर्तित कर सकता है। जननशक्ति उत्पत्तिकारिणी शक्ति है, और सारे शरीर-यंत्र द्वारा ग्रहण करके बल और जीवट रूप में परिवर्तित हो सकती है; इस प्रकार जनन के स्थान में नवगठन कर सकती है। यदि हमारे नवयुवक लोग इन गूढ़ तत्त्वों को समझ जाते, तो वे आनेवाले अनेक विपत्तियों के समूह और दुःखों से छुटकारा पा जाते और मन, बुद्धि, धर्म और शरीर से सब प्रकार बलिष्ठ हो जाते।

जननशक्ति का यह परिवर्तन अभ्यासी को बहुत जीवट देता है। यह उन्हें उस ओजस से भर देता है, जो उनके शरीर में तेज और प्रताप रूप से झलकने लगता है। इस प्रकार से परिवर्तित

शक्ति दूसरे मार्गों में ले जाकर बड़े-बड़े लाभों में लगाई जा सकती है। प्रकृति ने प्राण के एक अत्यंत शक्तिमान् रूपांतर को इस जनन-शक्ति के रूप में एकत्रित कर दिया है। अधिक-से-अधिक जीवट शक्ति बहुत थोड़े परिमाण में एकत्रित की गई है। जंतुओं के जीवन में जननावयव एक बड़े प्राणभंडार हैं, और उनकी शक्ति को ऊपर खींचकर चाहे उसे मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नति में प्रयोग करें, चाहे जनन-कार्य में लगावें अथवा भोग-विलास में नष्ट कर डालें।

जननशक्ति को परिवर्तित करनेवाली योगियों की कसरत बहुत ही सरल है। वह तालयुक्त साँस के साथ और बहुत आसानी से की जाती है। इसका अभ्यास किसी समय में किया जा सकता है, परंतु उस समय इसको करने का हम आग्रह करेंगे जब कामेच्छा प्रबल हो उठी हो; उस समय में यह शक्ति प्रकट रहती है और आसानी से पुष्टिकर कार्यों में परिवर्तित की जा सकती है। हम आगे इसे देवेंगे। जिन पुरुष और स्त्रियों को मानसिक और शारीरिक उत्पादन कार्य करना पड़ता है, वे इस उत्पादिनी शक्ति को अपने व्यवसाय में प्रयोग कर सकते हैं और कसरत में प्रत्येक श्वास खींचने के साथ शक्ति को खींचकर श्वास छोड़ने के समय इसे अभीष्ट स्थान को भेज सकते हैं। शिष्यों को समझ लेना चाहिए कि वस्तुतः रज और वीर्य इस रीति से नहीं खींचे जाते, किंतु वह प्राणशक्ति खींची जाती है, जिससे यह कामशक्ति जागृत रहती है—मानो जननशक्ति का सत्त खिंच जाता है।

पुष्टि-विधायिनी कसरत

अपने मन को काम-चिंतनाओं और काम-कल्पनाओं से हटाकर केवल शक्ति-मात्र पर एकाग्र कीजिए। यदि काम-चिंतनाएँ मन में आ जायँ, तो इससे हिम्मत न हारिए; परंतु इसे उस शक्ति का

विकाश समझिए, जिसे आप शरीर और मन की पुष्टि करने में लगाया चाहते हैं। ढीले होकर पड़ जाइए या सीधे बैठ जाइए; और अपने मन को इस कल्पना में लगाइए कि मानो आप इस जननशक्ति को ऊपर खींचकर सौर्यकेंद्र में ला रहे हैं, जहाँ यह परिवर्तित होकर जीवट-शक्ति के रूप में संचित रहेगी। तब तालयुक्त श्वास लीजिए; और मन में यह कल्पना कीजिए कि प्रत्येक श्वास खींचने में आप कामशक्ति को ऊपर खींच रहे हैं। प्रत्येक श्वास खींचने में प्रबल आकांक्षा की आज्ञा दीजिए कि जननेंद्रियों से शक्ति खिंचकर ऊपर सौर्यकेंद्र में आवे। यदि ताल ठीक रीति से निश्चित हो गया होगा और कल्पना स्पष्ट हो गई होगी, तो आपको शक्ति ऊपर चढ़ती प्रतीत होगी और आपको उसके उत्तेजक प्रभाव का बोध हो जायगा। यदि आप मानसिक बल की वृद्धि चाहते हैं, तो आप इसे सौर्यकेंद्र में खींचने के स्थान पर मस्तिष्क में खींच सकते हैं; यह कार्य मानसिक आज्ञा देने और मस्तिष्क में खींचने की कल्पना करने से हो सकता है। कसरत के इस अंतिम भाग में शक्ति का केवल उतना ही अंश मस्तिष्क में जायगा, जितने की वहाँ आवश्यकता होगी; शेष भाग सौर्यकेंद्र ही में संचित रह जायगा। इस परिवर्तिनी क्रिया में सिर को थोड़ा आगे सरलता और स्वाभाविक रीति से झुका रहना चाहिए।

यह नवजनन का विषय जाँच, अन्वेषण और अध्ययन के लिये एक बृहत् क्षेत्र उपस्थित कर देता है; और किसी दिन इस विषय पर एक छोटी किताब लिख देना हितकर समझ सकते हैं कि वह किताब उन थोड़े-से मनुष्यों में घुमाई जाय जो इसके लिये तैयार हों और जो पवित्र भावना से इसके खोजी हों न कि काम-कल्पनाओं और काम-वृत्तियों से प्रेरित होकर इसे तलाश करते हों।

तीसवाँ अध्याय

मानसिक स्थिति

जिन लोगों ने प्रवृत्तिमानस और आधिभौतिक शरीर को स्वायत्त रखने के विषय में योगियों की शिक्षा का परिचय पा लिया है, और यह भी जान लिया है कि प्रबल आकांक्षा का कितना प्रभाव प्रवृ-त्तिमानस पर पड़ता है, वे बड़ी आसानी से देख सकते हैं कि किसी मनुष्य की मानसिक स्थिति का बड़ा भारी प्रभाव उसके स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिस मनुष्य की मानसिक स्थिति उज्ज्वल, प्रसन्न और सुखी होती है, उसका भौतिक शरीर स्वाभाविक रीति से अपना काम करता है; परंतु विषादयुक्त मानसिक दशाएँ, चिंता, चिड़चिड़ापन, भय, ईर्षा, द्वेष और क्रोध ये शरीर पर अपना बुरा असर डालते हैं और शारीरिक गड़बड़ उत्पन्न कर देते हैं, जिसका परिणाम रोग होता है।

इस बात को हम सब लोग जानते हैं कि अच्छे समाचार और प्रसन्न संग स्वाभाविक भूख उत्पन्न करते हैं, परंतु बुरे समाचार मन इस संग वगैरः भूख को मंद कर देते हैं। किसी प्रिय भोजन का ज़िक्र आने पर मुँह में पानी भर आता है और किसी बुरी वस्तु के स्मरण से मतली आने लगती है।

हमारी मानसिक स्थितियाँ हमारे प्रवृत्तिमानस में प्रतिबिंबित रहती हैं; और चूँकि मन का यह अंश शरीर पर सीधा अधिकार रखता है, इसलिये यह बात झट समझ में आ सकती है कि मानसिक स्थिति कैसे शारीरिक कार्यों में अपना असर डाल देती है।

विषादयुक्त भावनाएँ रुधिरसंचार पर अपना असर डालती हैं,

और इससे शरीर के प्रत्येक भाग पर प्रभाव पड़ता है कि शरीर अपनी पुष्टि से वंचित रह जाता है। अनमेल ख़यालात भूख को मंद कर देते हैं, जिसका यह परिणाम होता है कि शरीर को उचित पोषण नहीं मिलता और रुधिर दरिद्र हो जाता है। इसके विपरीत प्रसन्न विचार और शुभ तथा मंगल भावनाएँ पाचन को बढ़ाती हैं, भूख को जगाती, रुधिर-संचार में सहायता देती और वस्तुतः सारे शरीर पर कायाकल्प का प्रभाव डालती हैं।

बहुत-से लोग यह ख़याल करते हैं कि मानसिक भावों का शरीर पर असर डालना यह योगियों और उन लोगों का भ्रम है, जो मन ही को प्रधानता देकर मानस ही द्वारा रोग चंगा करने में अपना स्वार्थ समझते हैं; परंतु आप वैज्ञानिक अन्वेषणकारियों के प्रामाणिक लेखों को देखिए, तो आपको मालूम हो जायगा कि ऐसा ख़याल सत्य घटनाओं के आधार पर है। बहुत बार परीक्षाएँ की गई हैं, जिनसे यह सिद्ध हुआ है कि शरीर मानसिक स्थिति और विश्वास को झट ग्रहण कर लेता है; बहुत-से मनुष्य स्वतः प्रवृत्त भावनाओं और दूसरों द्वारा प्रवर्तित की हुई भावनाओं से रोगी हो गए हैं और रोग से छुटकारा पा गए हैं। ये भावनाएँ मानसिक स्थितियाँ ही तो हैं ?

क्रोध के आवेश में लार या थूक विष हो जाता है; यदि माता बहुत भय-भीत या क्रुद्ध हो जाय, तो उसका दूध बच्चे के लिये विषैला हो जाता है। यदि मनुष्य विषादयुक्त या भयभीत हो जाय, तो उसके आमाशय से स्वच्छंदतापूर्वक द्रव नहीं स्रवता। ऐसे हज़ारों प्रमाण दिए जा सकते हैं।

क्या इसमें आपको संदेह है कि अयुक्त भावनाओं के कारण बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं ? तब कुछ पश्चिमी वैज्ञानिकों का प्रमाण सुन लीजिए—

"आफ़्रिका के किसी-किसी भाग में अधिक क्रोध या रंज करने के पश्चात् अवश्य ज्वर आ जाता है।" सर सेमुअल बेकर।

"एकबारगी मन पर धक्का लगने से सच्चा प्रमेह उत्पन्न होता है, जिसका कारण मानसिक उद्वेग है।" सर बी० डबल्यू० रिचार्डसन।

"बहुत-सी बीमारियों में देखने से मुझे ऐसे कारण मिले हैं, जिनसे विश्वास किया जा सकता है कि बहुत दिनों तक चिंता करने से विषैले फोड़े की उत्पत्ति हुई है।" सर जार्ज पेजेट।

"हम इस बात को देखकर बहुत आश्चर्यित हुए कि अक्सर फेफड़ों में विषैले फोड़ों के रोगी लगातार रंज के कारण इस रोग में पड़ गए। यह बात इतनी अधिक देखने में आती है कि इसे सिर्फ़ इत्तफ़ाक़ नहीं कह सकते।" मर्चिसन।

"विषैले फोड़ों की बीमारियाँ, ख़ासकर छाती की, मानसिक चिंता के कारण उत्पन्न होती हैं।" डॉक्टर स्नो।

इत्यादि, इत्यादि।

डॉक्टर हैक ट्यूक मानसिक बीमारियों की अपनी किताब में, जो पश्चिमी दुनिया में मानसिक औषधियों के प्रचार के बहुत पहले की है, लिखते हैं कि अनेकों बीमारियाँ भय से उत्पन्न होती हैं जैसे उन्माद, विक्षिप्तता, लकवा, पहले ही बाल पक जाना, गंजा सिर, दाँतों का बिगड़ना इत्यादि।

उन दिनों में जब सांपर्किक बीमारियाँ वबा की भाँति फैलती हैं, तो देखने में आता है कि बहुत-से मनुष्य भय ही के कारण बीमार पड़ जाते हैं; अथवा बीमारी का तो हलका हमला हुआ, पर भय का इतना भारी हमला हुआ कि लोग मर जाते हैं। यह बात आसानी से सब समझ में आवेगी, जब हम ख़्याल करेंगे कि सांपर्किक बीमारियाँ कम जीवट के मनुष्यों ही पर अधिक आक्रमण करती हैं और भय और ऐसी वृत्तियाँ जीवट को कम कर ही देती हैं।

इस विषय में बहुत-सी अच्छी-अच्छी किताबें लिखी हुई हैं, इसलिये इसके अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

परंतु इस विषय को छोड़ने के पहले हम अपने शिष्यों के मन पर इस बात को अंकित कर देना चाहते हैं कि "विचार क्रिया का रूप धारण करते हैं" और मानसिक दशाएँ शारीरिक क्रियाओं के रूप में प्रकट होती हैं।

योगशास्त्र अपने शिष्यों के मन में स्थिरता, शांति, शक्ति और निर्भयता उत्पन्न करना चाहता है, जो कि शरीर में आकर प्रतिबिंबित होते हैं। ऐसे मनुष्यों के मन में शांति और निर्भयता तो स्वाभाविक ही रीति से आती है और विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती। परंतु उन लोगों के लिये, जो अभी तक मानसिक शांति नहीं प्राप्त किए हैं, इस बात से बहुत लाभ हो सकता है कि वे अपने मन को शांत रखने का ख़याल बनाए रहें और ऐसे मंत्रों को जपें, जिनसे शांत मन की कल्पना होती हो। हमारी राय है कि ये शब्द जपे जायँ कि "उज्ज्वल, प्रसन्न और सुखी" और इन शब्दों के अर्थ पर ध्यान रहे, इन शब्दों के भाव को अपनी शारीरिक क्रिया में विकसित कीजिए, तो आपको मानसिक और शारीरिक बहुत बड़ा लाभ होगा और आध्यात्मिक बातों के ग्रहण करने के योग्य आपका मन होता जायगा।

इकतीसवाँ अध्याय

आत्मा के अनुगामी बनो

यद्यपि यह किताब केवल भौतिक शरीर के कल्याण के अभिप्राय से लिखी गई है, और योगशास्त्र के उच्च अंश अन्य लेखों के लिये छोड़ दिए गए हैं, तथापि योगशास्त्र के मूल तत्त्व उसकी गौण शाखाओं से इस भाँति मिले जुले हैं, और योगी लोग अपनी साधारण क्रियाओं में भी उन मूल तत्त्वों पर इतनी दृष्टि रखते हैं कि इस योगशास्त्र की शिक्षा और शिष्यों पर न्याय की दृष्टि से देखते हुए उन गूढ़ तत्त्वों के विषय में विना कुछ बातें कहे हम इस विषय को नहीं छोड़ सकते।

जैसा कि हमारे शिष्य लोग निस्संदेह जानते हैं, यह योगशास्त्र ऐसा बतलाता है कि मनुष्य क्रमशः नीच रूपों से उच्च रूप में वृद्धि और विकाश पा रहा है और उससे भी ऊँचा आध्यात्मिक विकास इसका होनेवाला है। प्रत्येक मनुष्य में आत्मा है यद्यपि वह नीच प्रकृति के आवरणों से इतना घिरा हुआ है कि वह बड़ी कठिनता से जाना जाता है। आत्मा नीच जीवों में भी है, वह स्फुरण कर रहा है और सर्वदा उच्च-उच्च रूप में विकसित होने की ओर उन्मुख रहता है। इस उन्नतिशील जीवन का भौतिक आवरण, जो धातुओं, पौधों, नीच जंतुओं और मनुष्यों का शरीर है, ऐसा औज़ार है कि जो उच्च और उच्च तत्त्वों के उत्तम-से-उत्तम विकास के लिये काम आता है। परंतु यद्यपि भौतिक शरीर का व्यवहार अल्प समय के लिये और अनित्य है, और यह शरीर केवल वस्त्र की भाँति पहनने और उतार देने के योग्य है, तो भी प्रकृति का यह सर्वदा उद्देश रहता है कि औज़ार जहाँ तक

हो सके, पूरा-से-पूरा बना रहे । प्रकृति यथासाध्य उत्तम-से-उत्तम शरीर देती है, और उचित जीवन की प्रेरणा करती रहती है, परंतु यदि ऐसे कारणों से, जिनका यहाँ वर्णन नहीं किया जाता, एक अपूर्ण शरीर जीव को मिल जाता है, तथापि उच्च भाव यह यत्न करते रहते हैं कि उसी देह के अनुकूल अपने को बनाकर उससे अच्छा-से-अच्छा काम निकालें।

यह आत्म-रक्षा की प्रवृत्ति—यह जीवन की आंतरिक प्रेरणा—आत्मा का विकास है। यह प्रवृत्तिमानस के आदिम रूप से लेकर अनेक दर्जों में काम करती हुई मानसिक मूल तत्त्व के उच्चतम विकास तक पहुँचती है। यह बुद्धि में होकर भी प्रकट होती है, जिससे मनुष्य अपनी तर्कशक्तियों का व्यवहार करके अपनी शारीरिक पूर्णता और जीवन को क़ायम रखता है। परंतु शोक है कि बुद्धि अपने ही काम में नहीं लगी रहती, किंतु ज्यों ही वह अपने को कुछ समझने लगती है, त्यों ही वह प्रवृत्तिमानस को दबाकर आप जीवन की अनेक प्रकार की अस्वाभाविक कुरीतियों को शरीर पर ढकेल देती है और प्रकृति से इतनी दूर कर देने की चेष्टा करती है, जितना संभव हो सकता है। यह उस लड़के की भाँति है, जो माता-पिता के शासन से स्वतंत्र होकर माता-पिता के आदर्श और उपदेश के यथासाध्य विपरीत चला जाता है—केवल इसी बात को दिखलाने के लिये कि मैं "स्वतंत्र हूँ"। परंतु लड़का अपनी मूर्खता को किसी समय पर समझ जाता है और सुधर जाता है—उसी प्रकार बुद्धि भी कभी सुधर जायगी।

मनुष्य अब समझने लगा है कि उसके भीतर ऐसी कोई चीज़ है, जो उसकी आवश्यकताओं पर ध्यान रखती है, और वह अपने काम को उस मनुष्य की अपेक्षा अधिक समझती है। क्योंकि मनुष्य अपनी सारी बुद्धि रखते हुए भी प्रवृत्तिमानस के उन महत्कर्मों को

नहीं कर सकता, जिन्हें वह पौधों, जंतुओं और स्वयं उसी मनुष्य में कर डालता है। और वह इस मानस तत्त्व को मित्र समझकर उसका भरोसा करने लगा है और उसने उसे अपना काम करने की छुट्टी दे दी है। जीवन की वर्तमान रीतियों में, जिन्हें मनुष्य ने अपने विकास में धारण कर लिया है, परंतु जिनसे पृथक् होकर वह देर या सबेर अपनी प्राकृतिक अवस्था में वापस आवेगा, पूर्णतया प्राकृतिक जीवन जीना प्रायः असंभव-सा हो गया है; जिसका परिणाम यह हुआ है कि भौतिक जीवन अवश्य कुछ-न-कुछ अनरीति का होगा। परंतु प्रकृति की आत्मरक्षा और प्रतियोजना प्रवृत्ति बहुत प्रबल है; और वह बहुत अच्छी तरह से अपना काम निबाह लेती है, और अपने काम को उसकी अपेक्षा बेहतर करती है, जिसे सभ्य मनुष्य जीवन की अपनी ऊटपटाँग रीतियों के द्वारा करने की आशा कर सकता है। इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि मनुष्य ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है और उसका आत्मा विकास पाने लगता है, त्यों-त्यों उसे ऐसी एक चीज़ प्राप्त होने लगती है, जो प्रवृत्ति के अनुरूप होती है, जिसे हम लोग प्रतिभा कहते हैं और यही प्रतिभा उसे प्रकृति के मार्ग पर वापस लाती है। हम इस उदय होती हुई चैतन्यता को देख सकते हैं कि प्राकृतिक जीवन और सादी ज़िंदगी की ओर कैसा लोगों का झुकाव हो रहा है और थोड़े दिनों से तो इसकी बहुत ही ज़्यादा तरक़्क़ी है। अब हम लोग अपनी इस चमकीली सभ्यता के रूपों, पुराने विश्वासों और रस्म-रिवाजों पर हँसने लगे हैं और यदि हम इन्हें दूर न कर देंगे, तो ये उस सभ्यता को उसी के बढ़ते हुए बोझ के नीचे गिरा देंगे।

जिस पुरुष या स्त्री में अध्यात्म का विकास हो रहा है, वह कृत्रिम जीवन और दस्तूरों से असंतुष्ट हो जावेगा और जीवन की सादी और अधिक प्राकृतिक रीतियों की ओर झुकेगा और कृत्रिम आवरणों तथा

बंधनों से, जिनसे मनुष्य बहुत काल से घिरा चला आता है, ऊब जावेगा। उसको सर्वदा अपना वास्तविक घर स्मरण आने लगेगा— "बहुत दिनों के बाद हम घर लौट रहे हैं।" और बुद्धि भी अनुकूल हो जायगी, और उन मूर्खताओं को देखकर, जिनमें वह अब तक पड़ा था, यही चेष्टा करेगी कि सब मूर्खता छोड़कर आओ घर चलें; अपने कार्य को वह अच्छी तरह करने लगेगा और प्रवृत्तिमानस को अपना कार्य निर्बाध करने के लिये छुट्टी दे देगा।

हठयोगी के सब विचार और अभ्यास इसी घर लौट चलने के आधार पर अवलंबित हैं—इस विश्वास पर कि मनुष्य के प्रवृत्ति-मानस में वह चीज़ है, जो साधारण दशा में उसके स्वास्थ्य को क़ायम रक्खेगी। इसी के अनुसार वे लोग, जो योग-शिक्षा का अभ्यास करते हैं, पहले "छोड़ना" सीखते हैं और तब प्रकृति के उतना निकटस्थ होना सीखते हैं, जितना इस कृत्रिमता के ज़माने में संभव हो सकता है। इस छोटी किताब में प्रकृति ही के पथ और तरीक़े बतलाए गए हैं, जिससे हम प्रकृति के पास लौट चलें। हमने नए मत का उपदेश नहीं किया है, परंतु सर्वदा आपसे यही आग्रह किया है कि हमारे साथ पुराने अच्छे उस पथ पर आ जाइए, जिसे छोड़कर हम लोग भूले हुए हैं।

हम इस बात को मानते हैं कि आजकल के पुरुष और स्त्रियों को प्राकृतिक जीवन स्वीकार कर लेना बहुत कठिन हो गया है, क्योंकि उनका संघ उन्हें विपरीत ही मार्ग ग्रहण करने के लिये प्रेरणा कर रहा है; परंतु प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन अपने लिये और अपनी जाति के लिये इस पथ पर अवश्य थोड़ा बहुत कुछ कर सकता है; और शनैः-शनैः उसकी पुरानी कृत्रिम आदतें सब एक-एक करके छूट जायँगी।

इस अंतिम अध्याय में हम आपके मन पर यह अंकित किया चाहते हैं कि मनुष्य भौतिक और आध्यात्मिक दोनों जीवन में आत्मा

का अनुगामी हो सकता है। मनुष्य आत्मा का पूरा भरोसा कर सकता है कि वह प्रतिदिन के जीवन तथा और टेढ़ेमेढ़े पेचीदा कामों में उसे सच्चे ही मार्ग पर ले जावेगा। यदि मनुष्य आत्मा का भरोसा करेगा, तो उसकी पुरानी कामनाएँ उससे झड़ पड़ेंगी—उसकी अस्वाभाविक रुचियाँ लुप्त हो जावेंगी—और उसका उस सादे जीवन में वह सुख और आनंद मालूम होगा कि जिससे जीवन प्रथम की अपेक्षा अब भिन्न ही वस्तु प्रतीत होने लगेगा।

मनुष्य को यह विश्वास कभी न त्यागना चाहिए कि आत्मा पार्थिव शरीर के कार्यों में भी अगुआ रहता है; क्योंकि आत्मा सर्वत्र व्यापक है और पार्थिव तथा उच्च मानसिक दशाओं दोनों में विकाश पाता है। मनुष्य जिस प्रकार आत्मा के साथ-साथ सोच-विचारकर सकता है, वैसे ही उसके साथ-साथ भोजन कर सकता है, पानी पी सकता है। इस बात से काम नहीं चलेगा कि अमुक आध्यात्मिक वस्तु है और अमुक वस्तु आध्यात्मिक नहीं है। क्योंकि उच्च भावना में सभी वस्तुएँ आध्यात्मिक हैं।

अब अंत में यह कहना है कि जो मनुष्य अपने भौतिक शरीर को उत्तम-से-उत्तम किया चाहता है—आत्मा के विकाश के लिये अच्छा-से-अच्छा औज़ार चाहता है—उसको अपने जीवन को सर्वदा आत्मा का भरोसा रखते हुए जीना चाहिए। उसको समझ लेना चाहिए कि उसके भीतर जो आत्मा है, वह परमात्मा की चिनगारी है—परमात्म-समुद्र का एक बिंदु है—परमात्म सूर्य की एक किरण है। उसे समझ लेना चाहिए कि उसकी सत्ता नित्य है, जो सर्वदा बढ़ रही, विकसित हो रही और प्रफुल्लित हो रही है; सर्वदा उस महत् लक्ष्य की ओर जा रही है, जिसके वास्तविक भाव को मनुष्य अपनी इस वर्तमान दशा में अपनी अपूर्ण मानसिक दृष्टि से ग्रहण करने के अयोग्य है, प्रेरणा सर्वदा आगे और ऊपर के लिये है।

हम सब लोग उस महत् जीवन के अंश हैं, जो अनंत रूपों और कायाओं में विकसित हो रहा है। हम सब लोग उसके अंश हैं। इसके अर्थ को यदि हम तनिक भी समझ जायँ, तो हमारा द्वार उस जीवन और जीवट के लिये खुल जाय कि हमारा शरीर बिलकुल ही नया हो जाय और पूरा-पूरा खिल उठे। आइए हम सब लोग पूर्ण शरीर का ध्यान करें और इस प्रकार की रहन रहने की चेष्टा करें कि उस पूर्ण शरीर के भौतिक रूप में मिल जाय—इस बात को हम लोग कर सकते हैं।

हमने भौतिक शरीर के नियमों को आप लोगों को बतलाया है कि आप लोग जहाँ तक हो सके, उनका अनुसरण करें; और उस महत् जीवन और महती शक्ति के प्रवाह में, जो सर्वदा हममें होकर बहने को उत्सुक है, जहाँ तक हो सके बाधा न पहुँचावें। हम लोगों को प्रकृति में लौट चलना चाहिए। हे मेरे प्यारे शिष्यो, इस महत् जीवन को अपने में होकर स्वच्छंदतापूर्वक प्रवाहित होने दो, तो सब कल्याण-ही-कल्याण होगा। कुल बातों को हम ही करें, ऐसा ख़्याल छोड़ दो—सब चीज़ें अपना काम अपने आप हमारे लिये करें। वे चाहती हैं कि हम उनका विश्वास करें और उनके कार्यों में बाधा न डालें—आइए हम लोग भी उन्हें अवसर दें। इति शम्।

सुंदर, भाव-पूर्ण, नयनाभिराम चित्रों तथा
विविध विषयों से विभूषित
हिंदी की सर्वोत्तम मासिक पत्रिका

सुधा

प्रधान संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय
वार्षिक मूल्य ६॥)

सुधा के ग्राहक बनकर सुंदर साहित्य, कमनीय कविता, ललित कला, सच्ची समालोचना, अद्भुत आविष्कार, विनोद-पूर्ण व्यंग्य पढ़कर अपनी मानसिक तथा नैतिक शक्ति का पूर्ण विकास कीजिए, और आनंद उठाइए।

हमारी गंगा-पुस्तकमाला के जो ३,००० से ऊपर प्रेमी स्थाई ग्राहक हैं, उनसे सानुरोध निवेदन है कि स्वयं तो ग्राहक बनें ही, साथ ही दो-दो नए ग्राहक भी बना दें। इस तरह हमारे इस नए उद्योग के आसानी से १०,००० ग्राहक हो जायँगे।
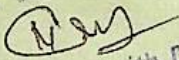
मिलने का पता—
सुधा-संचालक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ